BAPS(N)-321

सामाजिक एवं राजनीतिक विकास

Social and Political Development

राजनीति विज्ञान विभाग

समाज विज्ञान विद्याशाखा

उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी

Hello Haldwani हैलो हल्द्वानी

91.2 FM

उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय

तीनपानी बाईपास मार्ग

ट्रांसपोर्ट नगर के पीछे, हल्द्वानी 263139

नैनीताल, उत्तराखण्ड

Email: info@uou.ac.in; Website: http://uou.ac.in

BAPS(N)-321

सामाजिक एवं राजनीतिक विकास

Social and Political Development

राजनीति विज्ञान विभाग

समाज विज्ञान विद्या शाखा

उत्तराखंड मुक्त विश्वविद्यालय

पाठयक्रम समिति

प्रो. गिरिजा प्रसाद पाण्डे **निदेशक – समाज विज्ञान विद्या शाखा,**उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय हल्द्वानी नैनीताल	**प्रो0 एम0एम0 सेमवाल** राजनीति विज्ञान विभाग केन्द्रीय विश्वविद्यालय,गढवाल
प्रो0 दुर्गाकान्त चौधरी राजनीति विज्ञान विभाग श्रीदेव सुमन विश्वविद्यालय, ऋषिकेश परिसर, ऋषिकेश	**प्रो0 सतीश कुमार** राजनीति विज्ञान विभाग इन्दिरा गाँधी मुक्त विश्वविद्यालय, नई दिल्ली
डॉ0 सूर्य भान सिंह **(विशेष आमंत्रित सदस्य)** एसोसिएट प्रोफेसर राजनीति विज्ञान इलाहबाद विश्वविद्यालय	**डॉ घनश्याम जोशी** असिस्टेंट प्रोफेसर लोक प्रशासन उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय ,हल्द्वानी, नैनीताल
डॉ लता जोशी असिस्टेंट प्रोफेसर (एसी) राजनीति विज्ञान उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय ,हल्द्वानी, नैनीताल	**आरूशी** असिस्टेंट प्रोफेसर (एसी) राजनीति विज्ञान उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय ,हल्द्वानी, नैनीताल

पाठ्यक्रम संयोजन एवं सम्पादन

डॉ. लता जोशी असिस्टेंट प्रोफेसर (एसी) राजनीति विज्ञान उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय ,हल्द्वानी, नैनीताल

इकाई लेखक इकाई संख्या

डॉ. लता जोशी, असिस्टेंट प्रोफेसर (एसी) राजनीति विज्ञान ,उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय ,हल्द्वानी, नैनीताल	**4**
श्री हिमांशु पुनेठा,उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी, डॉ0 छाया कुंवर, हिमालयन एक्सन रिसर्च सेन्टर, देहरादून, उत्तराखण्ड	**14**
साभार -समाज कार्य विभाग (सामाजिक विकास एवं समाज कार्य **MSW**-10)	**1,2,3,5,6,7,8,9,10,11,12,13,**

आई.एस.बी.एन. -----------
कापीराइट @ उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय
प्रकाशन वर्ष -2025
Published by : उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय,हल्द्वानी, नैनीताल 263139
Printed at :------------------------------------
संस्करण :2025, सीमित वितरण हेतु पूर्व प्रकाशन की प्रति।
सर्वाधिकार सुरक्षित | इस प्रकाशन का कोई भी अंश उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय की लिखित अनुमति लिए विना मिमियोग्रफ अथवा किसी अन्य साधन से पुनः प्रस्तुत करने की अनुमति नहीं है

मुद्रित प्रतियां

अनुक्रम

सामाजिक एवं राजनीतिक विकास **BAPS(N)-321**

इकाई संख्या	इकाई का नाम	पृष्ठसंख्या
इकाई 1	सामाजिक विकास : अवधारणा, विशेषताएं, कारक एवं प्रकृति	1– 9
इकाई 2	विकास के विभिन्न सिद्धांत (आदम स्मिथ, रिकार्डो, थॉमस रोबर्ट माल्थस, कार्ल मार्क्स और शुम्पीटर के सिद्धांत)	10 – 18
इकाई 3	सहकारी आन्दोलन : सहकारी अधिनियम, रिज़र्व बैंक का सर्वेक्षण, सहकारी कर्मचारियों का प्रशिक्षण, ग्रामीण ऋण सर्वेक्षण समिति	19 –30
इकाई 4	सर्वोदय की अवधारणा और विशेषताएं , भूदान और ग्राम दान आन्दोलन	31 – 38
इकाई 5	भारत में सामाजिक परिवर्तन एवं विकास के विभिन्न क्षेत्र	39 – 50
इकाई 6	मानव विकास : अवधारणा, उद्देश्य और महत्व	51 – 65
इकाई 7	मानव विकास : नीतियां और कार्यक्रम	66 – 87
इकाई 8	पंचायती राज : अवधारणा और विकास	88 –130
इकाई 9	विकास: एक मानवाधिकार परिप्रेक्ष्य	131– 145
इकाई 10	ग्रामीण विकास : ग्रामीण विकास का गांधीवादी उपागम, ग्रामीण विकास से सम्बद्ध मुद्दे – पर्यावरण का क्षरण , अशिक्षा, निर्धनता, ऋणग्रस्तता एवं असमानताएं	146 -162

इकाई 11	नगरीय विकास : नगरीय सामाजिक समूहों के लिए कल्याण कार्यक्रम, नगरीय विकास से सम्बद्ध समस्याएं	163–173
इकाई 12	जनजातीय विकास : नीतियां, भारत में जनजातीय विकास हेतु संवैधानिक प्रयास , उत्तराखण्ड की जनजातियाँ	174–184
इकाई 13	विकास के परिवर्तन के करक एवं प्रभाव	185-196
इकाई 14	वैश्वीकरण और मानव विकास	196 -212

इकाई 1 सामाजिक विकास: अवधारणा, विशेषताएं, कारक एवं प्रकृति

इकाई की रूपरेखा

1.1 प्रस्तावना

1.2 उद्देश्य

1.3 सामाजिक विकास की अवधारणा

1.4 सामाजिक विकास की विशेषताएँ

1.5 सामाजिक विकास के कारक

1.6 विकास के सामाजिक ढाँचे का अध्ययन

1.7 सामाजिक विकास की प्रकृति

1.8 सार संक्षेप

1.9 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1.10 शब्दावली

1.11 संदर्भ ग्रन्थ सूची

1.12 निबंधात्मक प्रश्न

1.1 प्रस्तावना

सामाजिक विकास सामाजिक संरचना के उन विभिन्न पहलुओं और सामाजिक कारकों का अध्ययन है जो समाज के तीव्र विकास में बाधा उत्पन्न करते है। इसका उद्देश्य किसी समुदाय के समक्ष उस आदर्श प्रारूप को भी प्रस्तुत करना है जो उस समुदाय के लोगों को विकास की ओर अग्रसर कर सके।

जब से विभिन्न देशों में, विशेषतः तृतीय विश्व के देशों में, नियोजित आर्थिक परिवर्तन की प्रक्रिया प्रारम्भ की गई तब से यह आवश्यकता महसूस की गई कि इन परिवर्तनों के सामाजिक प्रभावों का मूल्यांकन किया जाए। समूह के आकार में वृद्धि, अर्थव्यवस्था में परिवर्तन, अस्थिर जीवन में स्थिर जीवन का प्रारम्भ, सामाजिक संरचना का रूपान्तरण, धार्मिक विश्वासों एवं क्रियाओं का महत्व, विज्ञान का विकास, नवीन दर्शन, कुछ ऐसे तत्व है जो इन परिवर्तनों से सम्बन्धित है।

प्राचीन से वर्तमान समय तक समाज के लगभग प्रत्येक पहलू में परिवर्तन हुए है। यह बात आदिम और आधुनिक दोनों ही समाजों के लिए समान रूप से साथ है। तृतीय विश्व के ऐसे देश जो पूँजीवादी औद्योगीकरण की संक्रमण प्रक्रिया से गुजर रहे है, के विश्लेषण हेतु सामाजिक सिद्धांतों का प्रयोग ही सामाजिक विकास है।

विभिन्न विचारकों का मत है कि 'विकास' अपनी अन्तर्निहित विशेषताओं के कारण किसी एक विपय की अध्ययन वस्तु न होकर सभी विषयों की अध्ययन वस्तु है-अध्ययन के दृष्टिकोणों में भले ही अन्तर हो।

1.2 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन से आप -

- सामाजिक विकास की अवधारणा को समझ सकेगें।
- सामाजिक विकास की विशेषताओं से अवगत हो सकेगें।
- सामाजिक विकास के कारकों को जान सकेगें।
- विकास के सामाजिक ढाँचे का अध्ययन कर सकगें।
- सामाजिक विकास की प्रकृति को जान सकेगें।

1.3 सामाजिक विकास की अवधारणा

विकास ऐसे परिवर्तनों को लक्षित करता है जो प्रगति की ओर उन्मुख रहते है। विकास एक सामाजिक प्रक्रिया है। इसका सम्बन्ध आर्थिक पहलू से अधिक है। लेकिन सामाजिक विकास केवल आर्थिक पहलू एक सामाजिक प्रक्रिया है। इसका सम्बन्ध आर्थिक पहलू से अधिक है। लेकिन सामाजिक विकास केवल आर्थिक पहलू से ही सम्बन्धित नहीं है अपितु सांस्कृतिक तत्वों तथा सामाजिक संस्थाओं से भी सम्बन्धित है।

'सामाजिक विकास' विकास के समाजशास्त्र का केन्द्र बिन्दु हैं अतः सामाजिक, विकास की विवेचना करना आवश्यक है-

जे.ए. पान्सीओ (J.A. Ponsioen) ने सामाजिक विकास को परिभापित करते हुए कहा है कि "विकास एक आंशिक अथवा शुद्ध प्रक्रिया है जो आर्थिक पहलू में परिवर्तन के कारण उत्पन्न होता है। आर्थिक जगत में विकास से तात्पर्य प्रति व्यक्ति आय में वृद्धि से लगाया जाता है। सामाजिक विकास से तात्पर्य जन सम्बन्धों तथा ढाँचे से है जो किसी समाज को इस योग्य बनाती है कि उसके सदस्यों की आवश्यकताओं को पूरा किया जा सके।"

बी.एस.डीसूजा (V.S. D'Souza) के अनुसार- "सामाजिक विकास वह प्रक्रिया है जिसके कारण अपेक्षाकृत सरल समाज एक विकसित समाज के रूप में परिवर्तित होता है।" सामाजिक विकास का विशेष रूप से कुछ अवधारणाओं से सम्बन्धित है, ये अवधारणाएँ निम्नलिखित है-

ऐसे साधन जो एक सरल समाज को जटिल समाज में परिवर्तित कर देते है।

ऐसे साधन जो सांस्कृतिक आवश्यकताओं को पूरा करते है।

ऐसे सम्बन्ध व ढाँचे जो किसी समाज को अधिकतम आवश्यकता पूर्ति के योग्य बनाते है।

1.4 सामाजिक विकास की विशेषताएँ

सामाजिक विकास की कुछ महत्वपूर्ण विशेषताएँ है जो निम्नलिखित है-

1. सामाजिक विकास सबसे महत्वपूर्ण विशेषता यह है कि इसके फलस्वरूप सरल सामाजिक अवस्था जटिल सामाजिक अवस्था में परिवर्तित हो जाती है।

2. सामाजिक विकास की एक दूसरी महत्वपूर्ण विशेषता सामाजिक गतिशीलता में वृद्धि।

3. धर्म के प्रभाव में डास, सामाजिक विकास की एक अन्य विशेषता है।

4. सामाजिक विकास में परिवर्तन प्रगति के अनुरूप होता रहता है।

5. सामाजिक विकास एक निष्चित दिशा का बोध करता है।

6. सामाजिक विकास में निरंतरता का विशेप गुण होता है।

7. सामाजिक विकास की एक प्रमुख विशेपता यह है कि इसकी अवधारणा सार्वभौमिक है।

8. सामाजिक विकास का विपय क्षेत्र अत्यन्त व्यापक है।

9. सामाजिक विकास का प्रमुख केन्द्र बिन्दु आर्थिक है जो प्रौद्योगिकीय विकास पर निर्भर है।

10. सामाजिक विकास की एक अन्य महत्वपूर्ण विशेषता यह भी है कि इसके अन्तर्गत सामाजिक सम्बन्धों का प्रसार होता है।

1.5 सामाजिक विकास के कारक

सामाजिक विकास के कारकों का अध्ययन करते समय यह ज्ञात होता है कि विभिन्न सामाजिक विचारकों जैसे मिरडल, डाबडाउस तथा आगबर्न आदि ने कुछ सामाजिक कारकों का उल्लेख किया है। इन विचारकों ने जिन प्रमुख सामाजिक कारकों का उल्लेख किया है. वे निम्नलिखित है-

1. सामंजस्य (Adjustment) सामाजिक विकास के लिए समाज के विभिन्न भागों में सामंजस्य होना अति आवप्यक है। यदि समाज के विभिन्न भागों में सामंजस्य नही है तो सामाजिक विकास की गति तीव्र नहीं होगी।

2. आविष्कार (Invention) प्रत्यक्ष रूप से आविष्कार उस समाज के व्यक्तियों की योग्यता, साधन तथा अन्य सांस्कृतिक कारकों से सम्बन्धित है। जैसे-जैसे तेजी से आविष्कार हो रहे है. वैसे-वैसे सामाजिक सम्बन्धों में परिवर्तन भी हो रहे है।

3. प्रसार (Diffusion) सामाजिक विकास की प्रक्रिया आविष्कारों के प्रसार पर निर्भर है। विभिन्न आविष्कारों के प्रसार के कारण ही सामाजिक सम्बन्धों में परिवर्तन तथा विकास हो रहा है।

4. ज्ञान भंडार (Knowledge Bank) पुराने ज्ञान के संचय के कारण नवीन आविष्कारों का जन्म हो रहा है, फलस्वरूप सामाजिक विकास में वृद्धि हो रही है।

5. औद्योगीकरण (Industrialisation) औद्योगीकरण सामाजिक विकास का एक महत्वपूर्ण साधन है। औद्योगीकरण के बिना सामाजिक विकास सम्भव नहीं है। विकसित समाजों में राष्ट्रीय आय में वृद्धि औद्योगीकरण के फलस्वरूप ही सम्भव हो पाई है अतः विकासशील देश भी औद्योगीकरण की ओर विशेष ध्यान दे रहे है। राष्ट्रसंघ के आर्थिक एवं सामाजिक विपय विभाग का विचार है कि-"अल्पविकसित क्षेत्रों की प्रचलित परिस्थितियों में रहन सहन के औसत स्तरों को उठाने का उद्देश्य समुदाय के बहुसंख्यकों की आयों में सुदृढ वृद्धियों के स्थान पर थोड़े से अल्पसंख्यकों की आय में अधिक वृद्धि करना है। अधिकांश कम विकसित देशों में यह बहुसंख्यकों विशाल और ग्रामीण होते है जो ऐसे कृषि कार्य करते है जिनकी न्यूनतम उत्पादन क्षमता बहुत की कम होती है। कुछ देशों में औसत उत्पादिता को बढ़ाना आर्थिक विकास का प्रधान कार्य है। प्रारम्भ में और अधिक सीमा तक यह स्वयं कृषि क्षेत्र में जितना चाहिए। अनेक देशों में अपूर्ण-नियुक्त ग्रामीण श्रम को अन्य व्यवसायों में लगाना विकास का अत्यन्त आवश्यक कार्य है। अधिक उन्नत देशों विकास द्वारा प्रारम्भ नए कार्यों की उत्पादिता कृपि की अपेक्षा कहीं अधिक होती है। ऐसी स्थिति में गौण उद्योग विकास का एक महत्वपूर्ण साधन बनता है। तथापि यह ध्यान में रखना चाहिए कि एक अल्पविकसित देश का सम्पूर्ण सामाजिक तथा आर्थिक संगठन कुछ समय में उत्पादन के कारकों की निम्न कार्य कुशलता के साथ समायोजित हो गया है। अतः औद्योगीकरण की प्रक्रिया को तेज करने का कोई भी प्रयास बहुमुखी होना चाहिए जो अधिक या कम मात्रा में, देप के सामाजिक एवं आर्थिक जीवन के प्रत्येक तत्व को. उसके प्रशासन को और अन्य देशों के साथ उसके सम्बन्धों को प्रभावित करे।

6. नगरीकरण (Urbanisation) प्रक्रिया का एक महत्वपूर्ण अंग है और गाँवों से कस्बों की ओर स्थानान्तरण, ग्रामीण तथा शहरी क्षेत्रों में रहन सहन के स्तर, विभिन्न आकार के कस्बों में आर्थिक एवं सामाजिक सेवाएँ प्रदान करने के लिए सापेक्ष व्यय, जनसंख्या के विभिन्न अंगों के लिए आवास की व्यवस्था, जलपूर्ति, सफाई परिवहन एवं शक्ति जैसी सेवाओं का प्रावधान, आर्थिक विकास का स्वरूप, उद्योगों का स्थान-निर्धारण एवं प्रतिरूप, नागरिक प्रशासन, वित्तीय प्रविधियाँ और भूमि उपयोग की नियोजन संबंधी नीतियाँ अपनाई जा रही है। विभिन्न देशों में यह देखा गया है कि इन अंगों का महत्व उन शहरी क्षेत्रों में जो बड़ी तेजी से विकसित हो रहे हैं, विशेष रूप से ज्यादा है। भारतवर्ष में, नगरीकरण की प्रक्रिया में निरंतर वृद्धि हो रही है, और यह सामाजिक विकास का एक महत्वपूर्ण पहलू है। नगरीकरण के कारण, सामाजिक परिवर्तन भी हो रहे हैं तथा रहन-सहन का स्तर भी ऊंचा हो रहा है जो सामाजिक विकास में सहायक है।

7. आर्थिक स्थिति (Economic Status) - आर्थिक विकास तथा सामाजिक विकास आपस में घनिष्ठ रूप से संबंधित है। आर्थिक वृद्धि सामाजिक विकास की ओर अग्रसर करती है। किसी विशेष व्यक्ति, आर्थिक विकास में सहायता करती है और उसे मजबूत बनाती है।

8. सामाजिक गतिशीलता (Social Mobility) - सामाजिक विकास के लिए यह आवश्यक है कि सामाजिक गतिशीलता में वृद्धि हो। सामाजिक गतिशीलता के माध्यम से ही सामाजिक परिवर्तनों में वृद्धि हो पाती है जो सामाजिक विकास के लिए आवश्यक है।

9. शिक्षा (Education) - यह सामाजिक विकास के लिए आवश्यक है, यह व्यक्ति के विकास का एक महत्त्वपूर्ण साधन है। शिक्षा सामाजिक-आर्थिक प्रगति की मुख्य एवं सहायक प्रमुख कार्य मनुष्य में नवीन कौशलों तथा नवीन बौद्धिक, सामाजिक, आर्थिक, सांस्कृतिक तथा अन्य क्षमताओं के विकास का मार्ग प्रशस्त कर सामाजिक विकास की प्रक्रिया के रूप में जाना जाता है। शिक्षा का विकास आधुनिक सामाजिक विकास में काफी सहायक रहा है।

10. राजनीतिक व्यवस्था (Political System) - राजनीतिक विकास तथा सामाजिक व्यवस्था का आपस में अटूट सम्बन्ध है। इस सम्बन्ध में विकास की कड़ी व्यवस्था को और भी मजबूत बनाती है जिससे सामाजिक विकास होता है। अधिशासन व्यवस्था प्रशासन के माध्यम से सामाजिक विकास में सहायता करती है जिसमें राजनीतिक व्यवस्था महत्त्वपूर्ण है। भारतीय राजनीतिक विकास के लिए यह आवश्यक भूमिका निभाती है। सामाजिक सुधार में तथा देश सामाजिक विकास की प्रक्रिया से गुजर रहा है। विकास की प्रक्रिया बहुत ही जटिल है तथा इसमें विभिन्न प्रकार के सामाजिक-आर्थिक विकास की गतिविधि में सुधार होते हैं, जैसे कि शिक्षा, स्वास्थ्य, परिवार नियोजन, ग्रामीण विकास, महिलाओं की भूमिका, बाल विकास, औद्योगिक विकास, सामुदायिक विकास आदि। इन सभी विकासों में सुधार लाने के लिए सरकारी एवं गैर सरकारी संस्थाएं काम करती हैं, जो समाज के प्रत्येक नागरिक एवं व्यक्ति के विकास का मार्ग प्रशस्त करती हैं। इसके लिए सरकार द्वारा अनेक योजनाएं, कार्यक्रम चलाए जाते हैं, जो समाज के गरीब और कमजोर वर्गों को सहायता प्रदान करते हैं ताकि वे भी सामाजिक-आर्थिक विकास में भाग ले सकें।

सामाजिक सुधार और विकास एक दूसरे से संबंधित हैं तथा सामाजिक विकास में सामाजिक सुधारों का विशेष योगदान होता है। देश-विदेश में विकास की प्रक्रिया प्रगति कर रही है और यह एक सतत प्रक्रिया है जिसमें समाज के हर वर्ग के विकास पर ध्यान केन्द्रित किया जाता है ताकि समाज के सभी लोगों को बेहतर जीवन मिल सके।

सामाजिक विकास इस मान्यता पर आधारित है कि समानता जितनी अधिक होगी, सामाजिक सम्बन्धों तथा सामाजिक व्यवस्था को उतना ही सामाजिक बनाया जा सकता है। एक दूसरा आधार आर्थिक विकास है। सैमुल्सन ने लिखा है कि "सामाजिक. परिवर्तन जो सामाजिक विकास से सम्बन्धित है वह आर्थिक वृद्धि से घनिष्ठ रूप से संलग्न है।" संयुक्त राष्ट्र की एक विज्ञप्ति में कहा गया है कि, 'विकास मानव की केवल भौतिक आवश्यकताओं से ही नहीं बल्कि उसके जीवन की सामाजिक दशाओं की उन्नति से भी सम्बन्धित होता है। विकास केवल आर्थिक वृद्धि या विकास नहीं है, बल्कि वह स्वयं में मानव की सामाजिक, सांस्कृतिक, संस्थागत तथा आर्थिक वृद्धि परिवर्तनों को भी सम्मिलित करता है।"

सामाजिक विकास के अन्तर्गत उन समाजों का भी अध्ययन किया जाता है जो परम्परागत स्तर से औद्योगिक विकास के स्तर की ओर उन्मुख है। इस स्तर पर मात्र आर्थिक प्रौद्योगिक परिवर्तन ही नही होते 'अपितु सामाजिक तथा

राजनीतिक परिवर्तन भी होते है। ई. हेगन ने लिखा है कि. "आर्थिक आधुनिकीकरण की प्रक्रिया किसी समाज को परम्परागत स्तर की अर्थव्यवस्था से औद्योगीकृत आर्थिक विकास के स्तर में पहुँचाने का संक्रमण है। यह संक्रमण धीरे-धीरे होता है और इसमें प्रौद्योगिकीय आर्थिक परिवर्तन के अतिरिक्त भी परिवर्तन सम्मिलित होता है। प्रमुख सामाजिक तथा राजनैतिक परिवर्तन भी इसमें आवश्यक होता है।"

सामाजिक परिवर्तन आधुनिकीकरण प्रक्रिया का उतना ही महत्वपूर्ण अंग है जितना कि आर्थिक परिवर्तन, सांस्कृतिक संचय, आविश्कार, अन्य संस्कृतियों से सम्पर्क, विसुंजयता, शिक्षा आदि परिवर्तन के स्रोत है। मूल्य, प्रौद्योगिकी, सामाजिक आन्दोलन और महान लोग सभी सामाजिक परिवर्तन के कारक है। प्रौद्योगिकी विभिन्न कारकों में अन्तक्रिया उत्पन्न कर सामाजिक परिवर्तन को जन्म देती है। प्रौद्योगिकी के बिना आर्थिक विकास के पाँचों स्तर कार्यान्वित नहीं हो सकते। इसी प्रकार आर्थिक विकास के बिना औद्योगीकरण असम्भव है। अतः यह वक्यव्य स्पष्ट करता है कि औद्योगीकरण और आर्थिक विकास दोनों ही सामाजिक विकास के लिए आवश्यक है। डोमर ने अपने उद्गार व्यक्त करते हुए लिखा है कि "आर्थिक वृद्धि जो सामाजिक विकास के लिए आवश्यक है वह समाज के मूलभूत ढाँचे से तय होता है। विकास के लिए पर्यावरण, राजनीतिक ढाँचा, प्राश्रय, शिक्षा का ढंग वैधानिक प्रारूप, विज्ञान तथा परिवर्तन सम्बन्धी मनोवृत्ति आदि की जानकारी आवश्यक है। अतः स्पष्ट है कि परिवर्तन को आवश्यक मान्यता प्रदान करें।

इस प्रकार विकास के समाजशास्त्र के अन्तर्गत उन तत्वों के अध्ययन का समावेश होगा जो सामाजिक विकास में सहायक अथवा बाधक है।

1.6 विकास के सामाजिक ढाँचे का अध्ययन

समाजशास्त्र की विषयवस्तु के अन्तर्गत जहाँ सरल से जटिल अवस्था को प्राप्त समाज का अध्ययन सम्मिलित है, वहीं पर इसके अन्तर्गत उस सामाजिक पृष्ठभूमि का भी अध्ययन होता है जो विकास के लिए अति आवश्यक है। सामाजिक पृष्ठभूमि को निम्नलिखित प्रकार से स्पष्ट करने का प्रयास किया गया है-

1. विचारात्मक

2. संस्थागत

3. संगठनात्मक

4. प्रेरणात्मक

1. विचारात्मक - मैरिन जे. लेवी ने लिखा है कि "इसके अन्तगत उन सामान्य झुकावों, मूल्यों, इच्छाओं को सम्मलित किया जाता है तो विकास के लिए आवश्यक है।" सामाजिक विकास की दशा को तय करने में वैचारिक पृष्ठभूमि की एक सुनिष्चित भूमिका है। स्पेंगलर ने इस संबंद्र में अपने उद्गार रखते हुए लिखा है कि, 'एक न्यूनतम मूल्य एकमतता सामाजिक व्यवस्थता के निर्माण के लिए आवश्यक है। किसी नियम के निर्धारण में महत्वपूर्ण मूल्य सम्बन्धी तत्व हैं-न्याय तथा समानता का पैमाना, धन की वितरण शक्ति और स्थिति तथा सांस्थानिक समन्वय।" आज सभी समाजों की एक सामान्य विशेपता आर्थिक लक्ष्य को प्राप्त करने का प्रयास है।

2. संस्थागत - संस्थाएं विशेष उद्देष्यों को कार्यरूप में परिणत करने के लिए साधन, तौर तरीके विधियाँ, कार्य प्रणालियों आदि उपयोंगों को व्यक्त करती है। संस्थाओं के निर्देशन में ही व्यक्ति अपने व्यवहार प्रतिमान निष्चित करता है। प्रायः सभी पहलुओं से सम्बंन्धित संस्थाएं हैं जैसे-पारिवारिक, आर्थिक, सामाजिक, धार्मिक तथा राजनीतिक आदि। अतः स्पष्ट है कि संस्थाओं के माध्यम से कार्य करने के व्यवस्थित तथा सुनिष्चित ढंग का ज्ञान होता है।

3. संगठनात्मक - नगरीकरण, नए पारिवारिक संगठन सत्ता, श्रमिकसंघ आदि आर्थिक पहलू में विकास के लिए अत्यन्त महत्वपूर्ण है। इन सभी तत्वों का अध्ययन विकास में समाजशास्त्र के अध्ध्येन विकास के समाजशास्त्र के अन्तर्गत होता है। एम.जे. लेवी के अनुसार "इसके अन्तर्गत उन तत्वों का अध्ययन सम्मिलित है जो समाज के निर्णायक है और जो साधारणतया मूर्त हैं।"

4. प्रेरणात्मक - विकास के समाजशास्त्र में उन तत्वों के अध्ययन की विशेष महत्ता है जो विकास के कार्य में प्रेरणात्मक है। विकास के समाजशास्त्र में उन तत्वों के अध्ययन की विशेष महत्ता है जो विकास के कार्य में प्रेरणात्मक है।

विकास के समाजशास्त्र के अन्र्तगत विकास प्रकियाओं के अध्ययन के साथ-साथ उन सांस्कृतिक तथा सांस्थानिक बाधाओं का भी अध्ययन होता है जो विकास में बाधक हैं।

1.7 सामाजिक विकास की प्रकृति

समाजिक विकास की प्रकृति वैज्ञानिक है। इसके अंतर्गत सामाजिक तथ्यों का अध्ययन वैज्ञानिक विधि द्वारा किया जाता है। वैज्ञानिक विधि उस विधि को कहते हैं जिसमें अध्ययन निम्नलिखित सुनिश्चित विधियों से होकर गुजरता है।

1. समस्या का निरूपण

2. अवलोकन

3. तथ्य संग्रह

4. वर्गीकरण तथा

5. सामान्यीकरण

उदाहरण के लिए यदि हम इस विकास प्रकिया में जनसहभागिता के महत्व का अध्ययन करना चाहते हैं और सामान्यीकरण के सिद्धान्त के रूप में यह स्वीकार करतें हैं कि विकास-प्रक्रिया में जनसहभागिता महत्त्वपूर्ण हैं तो इस तथ्य की सत्यता को हम उपरोक्त वर्णित चरणों के माध्यम से ही प्रणामित करेंगे।

अभ्यास प्रश्न

1. सामाजिक विकास का मुख्य उद्देश्य क्या माना जाता है?

A. केवल आर्थिक वृद्धि

B. समाज के हर वर्ग का समग्र कल्याण

C. तकनीकी प्रगति

D. औद्योगिकीकरण

2. निम्न में से कौन सामाजिक विकास का प्रमुख कारक नहीं है?

A. शिक्षा

B. स्वास्थ्य

C. सामजिक असमानता को बढ़ाना

D. रोजगार

3. सामाजिक विकास की प्रकृति किस पर आधारित होती है?

A. निरंतरता और परिवर्तनशीलता

B. केवल राजनीतिक निर्णयों पर

C. केवल धार्मिक परंपराओं पर

D. केवल भौगोलिक स्थिति पर

4. सामाजिक विकास की एक महत्वपूर्ण विशेषता क्या है?

A. यह केवल शहरी क्षेत्रों तक सीमित है

B. यह बहुआयामी प्रक्रिया है

C. यह स्थिर और अपरिवर्तनीय है

D. इसका सम्बन्ध केवल आर्थिक कारकों से है

1.8 सारांश

सामाजिक सम्बन्धों का अध्ययन वैज्ञानिक रूप से करने के लिए आवश्यक है कि ये अध्ययन वैज्ञानिक विधि के समस्त आवश्यक चरणों (जैसे समस्या का निरूपण या कल्पना का निर्माण, अवलोकन, तथ्य संग्रह, वर्गीकरण, सामान्यीकरण) से होकर गुजरे। सत्यापन का प्रयोग अनिवार्य रूप से किया जाए।

अतः एक नवीन शाखा के रूप में विकास का समाजशास्त्र सामाजिक विकास से सम्बन्धित है। इसकी प्रकृति वैज्ञानिक है। विकास के समाजशास्त्र के अन्तर्गत अध्ययन करते समय वैज्ञानिक विधि के प्रयोग पर विशेप जोर दिया जाता है।

1.9 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1.B , 2. C, 3. A, 4. B

1.10 शब्दावली

सामाजिक विकास – समाज के सभी वर्गों के जीवन स्तर, अवसरों और कल्याण में सुधार की प्रक्रिया।
समग्रता – विभिन्न क्षेत्रों (शिक्षा, स्वास्थ्य, रोजगार आदि) का मिलकर विकास होना।
कारक – वे तत्व जो विकास को आगे बढ़ाते हैं जैसे शिक्षा, स्वास्थ्य, जागरूकता, आर्थिक अवसर।
प्रकृति – सामाजिक विकास का स्वरूप, जैसे परिवर्तनशील, निरंतर, बहुआयामी।
अवसर-समानता- सभी व्यक्तियों को बराबर मौके मिलना।

1.11 निबंधात्मक प्रश्न

1. सामाजिक विकास की अवधारणा का उल्लेख कीजिये ?

2. सामाजिक विकास की विशेषताओं का वर्णन कीजिये ?

3. सामाजिक विकास के कारकों की व्याख्या कीजिये ?

4. विकास के सामाजिक ढाँचे का अध्ययन करके आपको क्या ज्ञान प्राप्त हुआ ?

5. सामाजिक विकास की प्रकृति क्या है ?

6. यह परिभाषा किसने लिखी है- "विकास एक आंशिक अथवा शुद्ध प्रक्रिया है जो आर्थिक पहलू में परिवर्तन के कारण उत्पन्न होता है। आर्थिक जगत में विकास से तात्पर्य प्रति व्यक्ति आय में वृद्धि से लगाया जाता है। सामाजिक विकास से तात्पर्य जन सम्बन्धों तथा ढाँचे से है जो किसी समाज को इस योग्य बनाती है कि उसके सदस्यों की आवश्यकताओं को पूरा किया जा सके।"

7. 'ऐसे सम्बन्ध व ढाँचे जो किसी समाज को अधिकतम आवश्यकता पूर्ति के योग्य बनाते है।' सामाजिक विकास की यह अवधारणा किस विद्वान द्वारा दी गयी है ?

1.12 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

- "Social development is the process by which a relatively simple society is transformed into a relatively advanced one". V.S.D. souza, Social Development, education and unemployment in India, /T.K.N. unitthan etc, p.337
- United nation deparment of economic and social affaris, Proceses and Problems of Industrialization in Under Developed countries', (New York, 1995, pp. 1-2.
- "social change is closely related to eqomonic growth"-P.A. Samuelson, Economics-an introductory analysis,p.6

इकाई -2 विकास के विभिन्न सिद्धांत

(आदम स्मिथ,रिकार्डो,थॉमस रोबर्ट माल्थस, कार्ल मार्क्स और शुम्पीटर के सिद्धान्त)

इकाई की रूपरेखा

2.1 परिचय

2.2 उद्देश्य

2.3 विकास के सिद्धान्त का अर्थ एवं परिभाषा

2.3.1 आदम स्मिथ का सिद्धान्त

2.3.2 रिकोर्डो का सिद्धन्त

2.3.3 थामस राबर्ट माल्थस का सिद्धान्त

2.3.4 कार्ल मार्क्स का सिद्धान्त

2.3.5 शुम्पीटर का सिद्धान्त

2.3.6 डब्लू० डब्लू० रोस्टो का सिद्धान्त

2.4 विकास के प्रारूप

2.5 सारांश

2.6 अभ्यास प्रश्न के उत्तर

2.7 पारिभाषिक शब्दावली

2.8 निबंधात्मक प्रश्न

2.9 संदर्भ ग्रन्थ सूची

2.1 प्रस्तावना

विकास का व्यक्ति, समूह और समाज पर प्रभाव पड़ता है और सामाजिक परिवर्तन का विकास से सह-सम्बन्ध है। विकास का प्रारूप आर्थिक हो अथवा सामाजिक, राजनैतिक हो अथवा संस्थागत, भौतिक हो अथवा अभौतिक जन-भावना की सन्तुष्टीकरण से सैद्धान्तिक रूप से जुड़ा है।

2.2 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात आप:-

- विकास के सिद्धान्त का अर्थ एवं परिभाषा को समझ सकेगे।
- आदम स्मिथ का सिद्धान्त की अवधारणा को समझ सकेगे।
- रिकोर्डो का सिद्धान्त को समझ सकेंगे।
- थामस राबर्ट माल्थस का सिद्धान्त समझ सकेगे।
- कार्ल मार्क्स का सिद्धान्त समझ सकेगे।
- शुम्पीटर का सिद्धान्त समझ सकेंगे।

2.3 विकास के सिद्धान्त का अर्थ एवं परिभाषा

विकास एक उर्ध्वगामी प्रक्रिया है जिसे नियोजित किया जाता है। विकास एक पक्षीय अवधारणा है। विकास की केवल एक ही गति है उर्ध्वगामी विकास। विकास एक मुल्यात्मक अवधारणा है जिसके साथ किसी न किसी रूप में मूल्य अवश्य जुड़ा होता है। मूल्य से तात्पर्य है वह अवधारणा जिसके साथ सामाजिक ता का समर्थन व्यापक रूप से विद्यमान होता है। विकास एक सचंतन प्रक्रिया है। विकास सम्बन्धी कार्य दूसरा विकास के परिणाम की स्थिति।

विकास से सिद्धान्त से तात्पर्य है विकास के वे नियम जिन्हें समाज समय-काल परिस्थिति के अनुसार अपनाया और जिनका प्रारूप विचारधारायें उद्देश्यों और लक्ष्यों के अनुरूप रही और जिनका गर समाज के लिए सामान्य परिणाम रहा अर्थात जिनका विश्वव्यापी उपयोग रहा और आधार वैज्ञानिक। विज्ञान के चरणों के आधार पर जो निष्कर्ष निकालते जाते हैं औजिन निष्कर्षो में तटस्थता, सत्य और सर्वव्यापक उपयोग का गुण होता है उन्हें सिद्धान्त की संज्ञा दी जाती है और जिनका सीधा सम्बन्ध विकास से होता है उन्हें विकास से सिद्धान्त कहते हैं। विकास से सिद्धान्तों को प्रमुखतया आर्थिक, संस्थागत, प्रतिक्रियात्मक, वैश्विक आदि उपबन्धों में विश्लेषित किया जा सकता है।

2.3.1 आदम स्मिथ का सिद्धान्त

अपनी पुस्तक 'ऐन इन्क्वायरी इन्दू दी नेचर एण्ड कॉजेज आफ दी वेल्थ ऑफ नेशन्स' जिसका प्रथम प्रकाशन 1776 में हुआ था और जो आर्थिक विकास के सदर्भ में प्रारम्भिक रूप से थी आदम स्मिथ का महत्वपूर्ण कार्य माना जा सकता है।

1. **प्राकृतिक नियम :** आदम स्मिथ का मानना है कि आर्थिक कारोबार प्राकृतिक नियम पर आधारित है। प्रत्येक व्यक्ति अपने हितों का निर्धारक एवं निर्णायक होता है और यदि उसे स्वतंत्र रूप से कार्य करने दिया जाये तो वह अपना भला तो करेगा ही सार्वजनिक हित में भी कार्य करेगा और अपने अर्थ साध्य का अधिकतक रूप प्राप्त करने में सफल होगा और अपना धन अधिक से अधिकतम बनाने में सफल होगा। इसीलिये वे लैसे फेयर (Laisserz-Faire) की नीति के समर्थक थे और सरकारी मध्यस्थता विशेषकर उद्योग और वाणिज्य के क्षेत्र में होने का विरोध करते रहे।

2. **श्रमविभाजन :** श्रमविभाजन से श्रमिक उत्पादन की वृद्धि में सुधार लाकर उत्पादन बढायेगा क्योंकि (1) कार्यकुशलता बढेगी (2) उत्पादन में श्रम-समय की बचत होगी और (3) श्रम बचाने वाले मशीनों का आविष्कार बढ़ेगा। परन्तु अंतिम परिणाम अर्थात मशीनों के अविष्कार और नये मशीनों का खोज हेतु पूजी की आवश्यकता होगी। नये तकनीक, नये बाजार श्रमविभाजन बढ़ायेगा। वाणिज्य और अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार में वृद्धि होगी।

3. **पूंजी विस्तार से आर्थिक प्रगति होगी**

4. **राष्ट्रीय बचत की स्थिति उत्पन्न होगी**

5. अंततः स्थिरता की स्थिति अर्थात् प्राकृतिक संसाधनों की कमी हो जायेगी, जनसंख्या वृद्धि, प्रतियोगिता, , लाभ सबकी स्थिति गतिहीन हो जायेगी।

2.3.2 रिकोर्डो का सिद्धान्त

डेविड रिकार्डो अपनी पुस्तक' दी प्रिंसिपल्स आफ पोलिटिकल इकानामिक एंड टैक्शेशन' जिसका प्रकाशन 1917 में हुआ था। जिसे अनेक अर्थशास्त्रियों ने आर्थिक विकास का आधार बनाया।

रिकार्डियन सिद्धान्त का आधार 'मारजिनल तथा सरप्लस सिद्धान्त राष्ट्रीय उत्पादन में खर्च के विवरण अर्थात 'शेयर आफ रेन्ट से सम्बन्धित विवरण प्रस्तुत करता है और 'सरप्लस सिद्धान्त बचे हुए भाग (शेयर) का वेतन और लाभ में विभाजन बताता है।

प्रमुख मान्यतायें जिन पर रिकार्डियन, सिद्धन्त आधारित है:-

(1) सभी भूमि अन्न उत्पादन में प्रयोग की जाती है और कृषि में लगी हुई

श्रमशक्ति से उद्योग में लगने वाली श्रमशक्ति का निर्धारण होता है।

(ii) कृषि से उत्पादन कम होने लगता है।

(iii) भूमि सीमित है।

(iv) अन्न की मांग कभी कम कभी अधिक होती है।

(v) श्रमिकों तथा पूंजी की प्राप्ति बदलती रहती है।

(vi) श्रमिकों को निर्वाह हेतु ही वेतन प्राप्त होता है।

(vii) पूर्ण प्रतियोगिता होती है

(viii) लाभ में पूंजी निर्मित होती है।

(ix) भूमि स्वामी, श्रमिक पूंजीपति तीन अर्थ व्यवस्था के आधार

पर स्तम्भ होतें है।

(x) पूंजी बचत एवं बचत की इच्छा से बढ़ती है।

(xi) रिकार्डो स्वतंत्र व्यापार के समर्थक हैं।

इनके सिद्धान्त में (1) तकनीकि के प्रभाव का प्रभाव नहीं दर्शाया गया है। (2) सिद्धान्त का आधार 'लैसे फेयरे' नीति पर आधारित है जो अव्यवाहिक है। (3) संस्थागत कारकों की अवहेलना की गयी है जबकि संस्थायें विकास का आधार स्तम्भ है। (4) यह वितरण का सिद्धान्त है न कि विकास का सिद्धान्त है। (5) भूमि खाद्यान्न के अतिरिक्त अन्य पदार्थ भी उत्पन्न करता है।

2.3.3 थामस राबर्ट माल्थस का सिद्धान्त

माल्थस की पुस्तक “Principles of Political Economy” का प्रकाशन 1820 में हुआ। इनका सिद्धान्त जनसंख्या का सिद्धान्त है। अपने इस सिद्धांत में माल्थस निम्नलिखित बिन्दुओं पर विचार करते हैं:

(i) माल्थस का मानना था कि आर्थिक विकास अपने आप नहीं होता बल्कि जनसाधारण के प्रयासों से ही सम्भव है।

(ii) जनसंख्या वृद्धि और आर्थिक विकास केवल जनसंख्या में वृद्धि से ही विकास नहीं होता। पूंजी विस्तार से श्रमिकों की मांग बढ़ती है।

(iii) उत्पादन एवं वितरण सही अनुपात में राष्ट्र को विकास के पथ पर ले जाते है।

(iv) भूमि, श्रम, पूंजी और संगठन पर राष्ट्रीय आधारित होता है।

इनका सिद्धान्त अनेक प्रकार से पिछडे देशों के लिये उपयोगी है। स्पेन, पुर्तगाल, हंगरी, टर्की, आयरलैण्ड तथा सम्पूर्ण एशिया, अफ्रीका और लैटिन अमेरिका के आर्थिक विकास के कारणों पर प्रकाश डाला है।

2.3.4 कार्ल मार्क्स का सिद्धान्त

मार्क्स और एजिल्स की 'कम्यूनिस्ट मैनीफेस्टो' कार्लमार्क्स की 'दास कैपिटल में साम्यवाद की सामाजिक एवं आर्थिक विकास की अन्तिम अवस्था की भविष्यवाणी का आधार उनका (1) इतिहास का भौतिकवादी विश्लेषण, (2) पूंजीवादी विकास की शक्तियों के प्रति अनादर का भाव, (3) आर्थिक विकास का सुनियोजित विकास में उनकी आस्था प्रमुख थी।

उनका विश्वास था कि इतिहास 'उत्पन्न सम्बन्धों के आधार पर उत्पन्न वर्ग संघर्ष से भरा पड़ा है। शुम्पीटर ने 'मार्क्सवाद' को धर्म माना। मार्क्स पूंजीपति और 'सर्वहारा समाज को दो वर्गों में देखा। और उत्पन्न सर्घष को 'सामाजिक क्रान्ति की संज्ञा दी।

वह लाभ जो कवेल पूंजीपति ही सहेजते हैं और जो श्रमिकों के श्रम की देन है को उन्होंने 'सरप्लस वैलू' माना जा अन्ततः वर्ग संघर्ष का कारण बनता है।

मार्क्स का सिद्धान्त पश्चिमी दुनिया में पूंजीवाद के विस्तार और सम्बन्धित समस्याओं से सम्बन्धित है।

2.3.5 शुम्पीटर का सिद्धान्त

जोसेफ अन्नायस शम्पीटर की पुस्तक 'थियरी आफ इकनामिक डेवलपमेन्ट जर्मन में 1911 में प्रकाशित हुई जिसका अंग्रजी रूपान्तर वर्ष 1934 में आया। इनकी 'विजिनेश सायकिल्स' 1939 में और 'कैपिटालिज्म, सोशलिज्म और डिमाक्रेसी 1942 में प्रकाशित हुई।

शुम्पीटर 'चक्रिय वहाब' को आर्थिक व्यवस्था का प्रारूप मानते हैं और 'नवीनता' पर बल देते हैं और मानते हैं कि नये साहसिक व्यक्ति, नये उत्पाद, नये बाजार, नये तकनीक, नये कच्चे माल से नये उत्पाद, नये बाजार, नये तकनीक, नये कच्चे माल से नये उत्पाद विकास के मार्ग को प्रशस्त कर सकते हैं। नयापन लाने वाले कर्ता को आदर्शपुरष मानते हैं। आर्थिक विकास चक्रिय बहाव का परिणाम है। बैकिंग व्यवस्था पर उन्होंने बल दिया और पूंजीवाद से समाजवाद की ओर समाज का झुकावा माना है।

2.3.6 डब्लू० डब्लू० रोस्टो का सिद्धान्त

प्रोफेसर रोस्टो की पुस्तक 'दी स्टेजेज आफ इकानामिक ग्रोथ, 1960 में 'दी प्रोसेस आफ इकनामिक ग्रोथ 1953 में आयी। रोस्टो आर्थिक विकास के पाँच स्तर स्पष्ट किये :

(i) परम्परागत समाज का स्तर, (ii) 'टेक आफ' से पूर्व का स्तर, (iii) 'टेक आफ' का स्तर (iv) परिपक्वता का स्तर

(v) उच्च प्रकार के उपभोक्ता की स्थिति का स्तर,

पहले स्तर को न्यूटोनियम विज्ञान से पूर्व की दशा का स्तर माना जिसमें तकनीक और विज्ञान और भौतिक संसार के प्रति रुझान तो कम न थी परन्तु ज्ञान का अभाव रहा तकनीक की कमी थी औजारों की कमी थी, कृषि आजीविका का प्रमुख साधन था। सामाजिक संरचना सोचानात्मक थी परिवार और वंशावली का बोलबाला था।

दूसरा स्तर 'टेक आफ' से पहले का था जिसमें चार शक्तियाँ-नया ज्ञान प्राप्ति जागरण की अवस्था, नये प्रकार का राजतंत्र, नया विश्व और नया धर्म अथवा सुधार की दशा की प्रमुख भुमिका रही। 'आस्था' और 'शक्ति' का स्थान 'तर्क और अविश्वास/संदेह' ने ले लिया। सामाजिक प्रवृत्ति प्रत्याशा, संरचना और मूल्यों में परिवर्तन आया और लगभग सभी क्षेत्रों में अनेक परिवर्तन हुए।

तीसरे 'टेक-आफ के स्तर पर आधुनिकता की शकित्यों का आगमन हुआ। आदतों और संस्थाओं में भारी परिवर्तन आया। ग्रेट ब्रिटेन में यह स्तर 178-1802 में, फ्रांस में 1830-1860 और जापान में 1878-1900 और भारत तथा चीन में 1952 में प्रारम्भ हो गया था।

चौथा स्तर 'परिकल्पना' का आधुनिक तकनीक लगभग सभी संसाधनों के उपयोग में छा गयी थी और विकास धारणीय स्तर पर पहुँच गया था। ग्रेट ब्रिटेन में 1850, युनाइटेड स्टेटस में 1900 जर्मनी में 1910, स्वेडेन में 1930, जापान में 1940, रूस में 1950 और कनाडा में भी 1950 में तकनीकी परिपक्वता का स्तर आ गया था। लोग नगरीय बोलबाना, आर्थिक और सामाजिक सुरक्षा का विकास होना प्रारम्भ हो गया था।

पांचवा अंतिम स्तर 'उच्च उपभोक्ता' के तैर्वजनिक प्रारूप का आया। नगरों की ओर प्रवास, स्वचालित, मशीनों, कारों, गृह सामग्रियों उपभोक्ता सामग्रियों का प्रचलन सामने आया। वितरण से मांग का स्तर उच्च होता गया।

2.4 विकास के प्रारूप

आर. एफ. हेराड, ई. डोमर, जे. आर. हिक्स और आर. सोलो जैसे विद्वानों के विचार केनेसियन मॉडल पर आधारित हैं। इसलिए केन्स के मॉडल का विश्लेषण आवश्यक हो जाता है।

(i) जोन मेनार्ड कीन्स का मॉडल

ए. सिसिल पिगू के सामान्य एकरूपता सिद्धांत पर आधारित जे. एम. कीन्स के मॉडल की प्रमुख विशेषताएं निम्नलिखित हैं —

1. धन ऐसे वातावरण में संचालित होता है, जिसमें उसके प्रभाव का त्वरित प्रसार होता है।
2. ब्याज दरों में वृद्धि या कमी के साथ विकसित पूंजीवादी अर्थव्यवस्था में निष्क्रिय पूंजी का उपयोग बढ़ जाता है।
3. अनुपयोगी संसाधनों, जैसे प्रशिक्षित श्रमिकों और उत्पादन मशीनों का भी पुनः उपयोग होने लगता है।
4. ऋण भुगतान, उपभोग से बचत, और आयात में वृद्धि देखी जाती है।
5. बाजार में अधिक धनराशि का प्रवाह होता है।
6. अनैच्छिक बेरोजगारी विकास में बाधा नहीं बनती।
7. निर्यात में वृद्धि और पूंजी निवेश विकास के प्रमुख कारक बन जाते हैं।

कीन्स का यह मॉडल विकसित देशों के लिए तो अत्यंत उपयोगी सिद्ध हुआ है, किंतु विकासशील देशों के संदर्भ में यह उतना प्रभावी नहीं माना जा सकता, क्योंकि इसका ढांचा मुख्यतः उन अर्थव्यवस्थाओं के लिए निर्मित था जो पहले से ही विकास की दिशा में अग्रसर थीं।

(ii) टैलकॉट पार्सन्स का एक्शन मॉडल

पार्सन्स के अनुसार, सामाजिक परिवर्तन दो प्रमुख आधारभूत प्रक्रियाओं के माध्यम से होता है —

1. कार्य करने की प्रक्रिया (Performance Process): इस प्रक्रिया के माध्यम से समाज में मौजूद बाधाओं को दूर किया जाता है। साथ ही, एकीकरण पर आधारित संरचनात्मक व्यवस्था को यथावत बनाए रखते हुए अनुकूलन की गति को तेज किया जाता है।
2. सीखने की प्रक्रिया (Learning Process): इस प्रक्रिया के माध्यम से व्यवस्था में आवश्यक संरचनात्मक परिवर्तन लाए जाते हैं, जिससे समाज नई परिस्थितियों के अनुरूप स्वयं को ढाल सके।

वेबर का मॉडल

मैक्स वेबर का मानना था कि प्रत्येक संस्कृति के लोग मशीन युग की आवश्यकताओं के अनुसार अपनी-अपनी सांस्कृतिक विशेषताओं के आधार पर सक्रिय रूप से अनुकूलन स्थापित करेंगे।
वे विवेकीकरण (Rationalization) के प्रबल समर्थक थे। उनके अनुसार, आधुनिकता और संस्थागत कार्यों का आधार विवेकपूर्ण सोच है, और इसी प्रक्रिया के माध्यम से कोई भी देश विकास के पथ पर अग्रसर होता है।

समाजवादी विकास के प्रारूप

सामाजवादी विकास का प्रारूप मूलतः उस नई प्रकार की विकास अवधारणा से जुड़ा है, जो समाज में समानता, न्याय और सहयोग पर आधारित व्यवस्था की मांग करता है। इसका उद्देश्य केवल आर्थिक वृद्धि नहीं, बल्कि सामाजिक, राजनीतिक और आर्थिक संरचनाओं का समग्र पुनर्गठन है। इस दृष्टिकोण का केंद्र बिंदु यह रहा है कि विकासशील और औद्योगिक दोनों प्रकार के देशों में विकास की प्रक्रिया को मानवीय मूल्यों, समान अवसरों और सामाजिक न्याय के सिद्धांतों पर पुनः परिभाषित किया जाए।

आचार्य नरेंद्र देव, जयप्रकाश नारायण, विनोबा भावे और महात्मा गांधी के वैकल्पिक मॉडल

आचार्य नरेंद्र देव, जयप्रकाश नारायण, विनोबा भावे और महात्मा गांधी—इन सभी ने समाजवाद के मानवीय और नैतिक पक्ष पर बल दिया।

जयप्रकाश नारायण का समाजवाद
जयप्रकाश नारायण के अनुसार, समाजवाद का अर्थ केवल आर्थिक समानता नहीं, बल्कि सामाजिक और राजनीतिक समानता भी है। उनका समाजवाद भेदभाव से मुक्त है—जहां जाति, धर्म, भाषा, क्षेत्र, लिंग या रंग के आधार पर किसी व्यक्ति के साथ कोई अंतर न किया जाए।

हर व्यक्ति को अपने अधिकारों और कर्तव्यों का निर्वाह करने का समान अवसर मिलना चाहिए। आर्थिक और सामाजिक न्याय का अधिकार सभी नागरिकों को प्राप्त होना चाहिए।
सरकार का दायित्व है कि वह आजीविका, शिक्षा और रोजगार के अवसर बिना किसी भेदभाव के प्रत्येक नागरिक को उपलब्ध कराए। यही कल्याणकारी राज्य की मूल भावना है, जो समानता और न्याय पर आधारित समाज की स्थापना का मार्ग प्रशस्त करती है।

अभ्यास प्रश्न :

1. एडम स्मिथ के अनुसार आर्थिक विकास का प्रमुख आधार क्या है?
(a) जनसंख्या वृद्धि
(b) श्रम का विभाजन (Division of Labour)
(c) तकनीकी नवाचार
(d) पूंजी संचय

2. डेविड रिकार्डो का सिद्धांत मुख्य रूप से किस पर आधारित है?
(a) तुलनात्मक लाभ (Comparative Advantage)
(b) तकनीकी परिवर्तन
(c) वर्ग संघर्ष
(d) नवाचार

3. थॉमस रॉबर्ट माल्थस के अनुसार आर्थिक विकास की सीमा किससे निर्धारित होती है?
(a) पूंजी निवेश
(b) जनसंख्या वृद्धि
(c) तकनीकी प्रगति
(d) राज्य की नीतियाँ

4. कार्ल मार्क्स के अनुसार आर्थिक विकास की प्रक्रिया में कौन-सी शक्ति परिवर्तन लाती है?
(a) पूंजी संचय
(b) वर्ग संघर्ष (Class Struggle)
(c) बाजार की मांग
(d) श्रम विभाजन

2.5 सारांश :

विकास के सिद्धान्तों के अन्तर्गत, आदम स्मिथ, रिकार्डो, माल्थस, मिल मार्क्स, शुम्पीटर, रोष्टो आदि अर्थशास्त्रियों के आर्थिक विकास के सिद्धान्तों से अवगत कराने का प्रयासस किया गया है। विकास के संस्थागत, प्रातिक्रियात्मक और वैश्विक सिद्धान्तों के अन्तर्गत जीन हर्स, मैक्सवेबर, टानीज, क्लूकहान् डैनियल लर्नर, मैक्लीलैण्ड आदि के विचारों का विकास से सम्बन्ध दर्शाने का प्रयास किया गया है। यूनाइटेड नेशंस की भूमिका से सम्बन्धित पर्यावरणीय दशाओं पर भी विचार व्यक्त किया गया है। टालकट पारसन्स, शिल्स, स्मेलशर, बैल्स के विचारों से भी सदों को जोड़ने का प्रयास किया गया है। सारांश में यह भी व्यक्त किया गया है कि है कि पिछडे देशों के सर्वमुखी विकास से ही संसार का विकास सम्भव है।

2.6 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर:

1. (b), 2. (a), 3. (b), 4. (b)

2.7 शब्दावली

अदृश्य हाथ (Invisible Hand) : बाज़ार खुद अपने-आप मांग और आपूर्ति के आधार पर संतुलन बना लेता है।

स्वार्थ प्रेरणा (Self-Interest): व्यक्ति अपनी भलाई के लिए काम करता है, इससे पूरी अर्थव्यवस्था का विकास होता है।

सापेक्ष लाभ (Comparative Advantage) प्रत्येक देश वही उत्पादन करे जिसमें उसे तुलनात्मक रूप से लाभ हो।

माल्थुसियन जाल (Malthusian Trap) जनसंख्या बढ़ने से संसाधन कम पड़ जाते हैं और जीवन स्तर नीचे गिर जाता है।

2.8 निबंधात्मक प्रश्न:

1. एडम स्मिथ के आर्थिक विकास सिद्धांत की प्रमुख विशेषताओं की व्याख्या कीजिए। उनके विचारों में "श्रम विभाजन" की क्या भूमिका है?

2. डेविड रिकार्डो के तुलनात्मक लाभ (Comparative Advantage) के सिद्धांत की व्याख्या कीजिए। यह सिद्धांत विकास और अंतरराष्ट्रीय व्यापार में किस प्रकार योगदान देता है?

3. थॉमस रॉबर्ट माल्थस के जनसंख्या सिद्धांत की समीक्षा कीजिए। आधुनिक संदर्भ में इसकी प्रासंगिकता पर चर्चा कीजिए।

4. कार्ल मार्क्स और जोसेफ शुम्पीटर के विकास सिद्धांतों की तुलनात्मक समीक्षा कीजिए। दोनों में नवाचार और सामाजिक परिवर्तन की भूमिका किस प्रकार भिन्न है?

2.9 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची:

1. एम०एल० झिंगरन ,"दी इवनामिक्स ऑफ डेवलपमेन्ट एण्ड पलानिंग", विकास पब्लिकेशंस (पी०) लिमिटेड, दिल्ली ,1997 ।

2. कुलबीर सिंह ,"भारत में सामाजिक परिवर्तन", अनु प्रकाशन, मेरठ 1976।

3. हंस बान गिंकेल (इडि०) "ह्यूमन डेवलपमेन्ट एण्ड दी इनवायरनमेन्ट (चैलेनजेज) फार दी यूनाइटेड नेशन्स",जयपुर एण्ड नयी दिल्ली 2003 ।

4. बी० बी० मिश्रा ,"दी इन्डियन मिडिल क्लाशेज़ देअर ग्रोथ इन मार्डन टाइम्स" लंदन, ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस 1961।

इकाई-3

सहकारी आन्दोलन : सहकारी अधिनियम, रिज़र्व बैंक का सर्वेक्षण, सहकारी कर्मचारियों का प्रशिक्षण, ग्रामीण ऋण सर्वेक्षण समिति

इकाई की रूपरेखा

3.1 प्रस्तावना

3.2 उद्देश्य

3.3 सहकारी आन्दोलन

3.3.1 सहकारी अधिनियम

3.3.2 रिजर्व बैंक का सर्वेक्षण

3.3.3 सहकारी कर्मचारियों का प्रशिक्षण

3.3.4 ग्रामीण ऋण सर्वेक्षण समिति

3.3.5 सहकारी आन्दोलन के स्तर

3.3.6 प्राथमिक समितियों

3.3.7 केन्द्रीय समितियों (Central Societies)

3.4 वैश्वीकरण व मानव विकास

3.5 सारांश

3.6 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

3.7 शब्दावली

3.8 निबंधात्मक प्रश्न

3.9 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

3.1 प्रस्तावना

गांधी जी का सम्पूर्ण दर्शन उनके नैतिक समाज की अवधारणा पर आधारित है। गांधी जी का मानना था कि जब तक स्वस्थ और व्यवस्थित समाज नहीं बनेगा, तब तक अच्छी राजनीतिक और आर्थिक व्यवस्थाएं विकसित नहीं हो सकता हैं। सामाजिक व्यवस्था, आर्थिक प्रगति और राजनीतिक स्थिरता तथा व्यवस्था परस्पर सम्बद्ध हैं और इन्हें

एक दूसरे से पृथक नहीं किया जा सकता। हमारा अतीत शनदार था और हमने दुनिया का मार्गदर्शन किया। यदि भारत को अपना खोया हुआ गौरव पुनः प्राप्त करना है तो समाज सुधारकों तथा समाज के अन्य नेताओं को आदर्श समाज बनाने के लिए सतत प्रयत्न करना होगा।

3.2 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात आप :-

सहकारी आन्दोलन की व्याख्या कर सकेगें।

सहकारी अधिनियम को जान सकेगें।

सहकारी कर्मचारियों का प्रशिक्षण को समझ सकेगें।

ग्रामीण ऋण सर्वेक्षण समिति की व्याख्या कर सकेगें।

सहकारी आन्दोलन के स्तर को जान सकेगें।

प्राथमिक समितियाँ क्या है जान सकेगें।

केन्द्रीय समितियाँ क्या है जान सकेगें।

भूदान की अवधारणा को समझ सकेगें।

ग्रामदान को समझ सकेगें।

3.3 सहकारी आन्दोलन

सहकारिता के विचार ने भारत में ठोस रूप सबसे पहले उस समय ग्रहण किया जब गाँवों में विद्यमान ऋण भार का सामना करने के लिए 1904 में सहकारी ऋण समितियां अधिनियम पारित हुआ। इस अधिनियम में केवल ऋण समितियों की रचना के लिए ही व्यवस्था की गयी थी इसलिए गैर ऋण समितियों की रचना के लिए 1912 में एक दूसरा अधिनियम पास किया गया। दूसरी प्रकार की समितियों का काम गाँव के उत्पादन, क्रय विक्रय बीमा तथा आवास आदि का व्यवस्था करना था। इसके पश्चात भारत सरकार द्वारा 1914 में नियुक्ति की गयी मैकलेगन समिति ने सहकारी आन्दोलन में अधिकाधिक गैर सरकारी सहयोग के लिए सिफारिश की।

3.3.1 सहकारी अधिनियम

1919 के अधिनियम के अनुसार यद्यपि सहकारिता को प्रान्तीय सरकार का विषय बना दिया गया तथापि भारत इस आन्दोलन के विकास में रूचि लेता रहा और 1935 में रिजर्व बैंक में एक 'कृषि ऋण विभाग' खोला गया। 1945 में भारत सरकार द्वारा सहकारी योजना समिति नियुक्त की गयी जिसने यह सिफारिश की कि प्राथमिक समितियों की बहुउद्देशीय समितियों में बदल दिया जाय। इसने एक सुझाव यह भी रखा कि रिजर्व बैंक सहकारी समितियों की अधिक सहायता दे।

3.3.2 रिजर्व बैंक का सर्वेक्षण

1951 में रिजर्व बैंक ने एक निर्देशन समिति नियुक्त की जिसने देश की ग्रामीण ऋण व्यवस्था का सविस्तार सर्वेक्षण किया और दिसम्बर 1945 में अपना प्रतिवेदन प्रकाशित कर दिया। सर्वेक्षण से पता चला कि ग्रामीण ऋण के क्षेत्र में 40 वर्षों के सहकारी प्रयास के बावजूद गाँवों में महाजनों और व्यापारियों का ही बोलबाला रहा। उन लोगों के लाभ के लिए जिनका सभी ओर से शोषण होता हो सामाजिक आर्थिक नीतियों के परिपालन के विषय में सहकारी आन्दोलन की सार्थकता स्वीकार करते हुए समिति इस निष्कर्ष पर पहुँची की अभी तक असफल होने के बावजूद सहकारी आन्दोलन सफल अवश्य होगा और इसकी सफलता के लिए अनुकूल परिस्थितियां पैदा की जानी चाहिए। इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए समिति ने ग्रामीण ऋण के सम्बन्ध में एक संगठित योजना सुझायी। इस योजना के सम्बन्ध में यह आवश्यक है कि सरकार सभी प्रकार की सहकारी संस्थाओं में भाग ले, ऋण सम्बन्धी तथा अन्य आर्थिक कार्यों के बीच पूर्ण समन्वय स्थापित किया जाये, प्राथमिक कृषि ऋण समितियों का विकास किया जाए, गोदामों आदि की सुविधाओं की व्यवस्था हो। समिति ने इम्पीरियल बैंक ने राष्ट्रीयकरण के लिए भी सिफारिश की जिससे वह अपनी शाखाओं के माध्यम से सहकारी तथा अन्य बैंकों को भुगतान आदि की अधिक सुविधाएँ दे सके। सहकारी विकास के विभिन्न कार्यक्रमों में समन्वय स्थापित करने तथा राज्य सरकारों की सहायता देने के उद्देश्य से समिति ने रिजर्व बैंक ऑफ इण्डिया अधिनियम में उपयुक्त संशोधन क्रने तथा केन्द्र में एक 'राष्ट्रीय सहकारी विकास एवं गोदाम मंडल' स्थापित करने का भी सुझाव दिया।

समिति की सिफारिसों के अनुसार 'रिजर्व बैंक ऑफ इण्डिया अधिनियम में गई 1955 में संशोधन कर दिया गया। एक सशोधन के अनुसार रिजर्व बैंक आफ इण्डिया को दो निधियाँ चालू करने का अधिकार दे दिया गया 1 राष्ट्रीय कृषि ऋण (दीर्घकालीन) निधि तथा 2. राष्ट्रीय कृषि ऋण (स्थिरीकरण) निधि।

पहली निधि फरवरी 1956 में 10 करोड रूपये के प्रारम्भिक विनियोग के साथ चालू कर दी गयी जिसमें 1955-56 तथा 1957-58 में 5.5 करोड़ रूपये और सम्मिलित कर दिए गये। इसी प्रकार दूसरी निधि भी 1 करोड़ के प्रारम्भिक विनियोग के साथ 1956-57 में स्थापित की गयी जिसमें 1956-57 में 1 करोड रूपये और सम्मिलित कर दिए गये।

भारत सरकार की ओर से 'कृषि उत्पादन (विकास एवं गोदाम) निगम अधिनियम' के अन्तर्गत 1 सितम्बर 1956 को एक 'राष्ट्रीय सहकारी विकास एवं गोदाम मंडल' स्थापित कर दिया गया। इसी अधिनियम के अन्तर्गत 2 मार्च 1967 को एक 'केन्द्रीय गोदाम निगम' भी स्थापित किया गया।

संसद के एक अधिनियम के अन्तर्गत इम्पीरियल बैंक पर सरकार द्वारा अधिकार कर दिये जाने के फलस्वरूप 1 जुलाई 1955 को भारत के सरकारी बैंक (स्टेट बैंक) की भी स्थापना हुई। इस बैंक का एक महत्वपूर्ण उद्देश्य अपनी शाखाओं का व्यापक रूप से विस्तार करना है। इसके अनुसार स्टेट बैंक ने दिसम्बर 1957 के अन्त तक देश में अपनी 157 शाखाएँ स्थापित कर ली।

3.3.3 सहकारी कर्मचारियों का प्रशिक्षण

इसी प्रकार सहकारी कर्मचारियों के प्रशिक्षण की योजनाओं का कार्य भी आरम्भ किया जा चुका है। केन्द्रीय सहकारी प्रशिक्षण समिति ने सभी प्रकार के सहकारी कर्मचारियों के प्रशिक्षण की एक सविस्तार योजना भी तैयार कर ली है।

इस योजना के अन्रतगत सहकारी विभागों के उच्च अधिकारियों के प्रशिक्षण के लिए पूना में एक अखिल भारतीय सहकारी प्रशिक्षण केन्द्र स्थापित किया जा चुका है। इसके अतिरिक्त अन्य कई प्रशिक्षण केन्द्र और भी है। 5 प्रादेशिक प्रशिक्षण केन्द्रों में सहकारी हाट व्यवस्था के विशेष पाठ्यक्रमों तथा इनमें से एक केन्द्र में भूमि के बन्धक रखे जाने से सम्बन्धित बैंकिंग के विशेष पाठ्यक्रम की व्यवस्था की गयी है।

3.3.4 ग्रामीण ऋण सर्वेक्षण समिति

ग्रामीण ऋण सर्वेक्षण समिति की सिफारिशों के अनुसार द्वितीय योजना काल में सहकारी विकास का एक संगठित कार्यंक्रम की रूपरेखा तैयार की जा चुकी है। द्वितीय पंचवर्षीय योजना में अल्पकालीन सहकारी ऋण के लिए 1.50 अरब रुपये, मध्यकालीन ऋण के लिए 50 करोड रूपये तथा दीर्घकालीन ऋण के लिए 25 करोड रूपये का लक्ष्य रखा गया है जो सहकारी समितियों द्वारा कृषकों को 1960-61 के अन्त तक प्राप्त हो चुकेंगे। योजना में 10400 बडी समितियों, 1800 प्राथमिक हाट व्यवस्था समितियों, 35 सहकारी चीनी कारखानों, 48 सहकारी कपास ओटाई मिलों तथा 118 अन्य सहकारी विधायन समितियों के संगठन के लिए भी व्यवस्था की है। केन्द्रीय तथा राज्यीय गोदाम निगमों समितियों के संगठन के लिए भी व्यवस्था की है। केन्द्रीय तथा राज्यीय गोदाम निगमों द्वारा 350 गोदामों, हाट व्यवस्था समितियों के लिए 11500 गोदामों तथा बडी प्राथमिक कृषि ऋण समितियों के लिए 4000 गोदामों के निर्माण की व्यवस्था की गयी है। सरकारी विकास के क्षेत्रों में रिजर्व बैंक ऑफ इण्डिया ने महत्वपूर्ण कार्य किया है। इसका एक महत्वपूर्ण कार्य सहकारी आन्दोलन के लिए वित्त की व्यवस्था करना है।

3.3.5 सहकारी आन्दोलन के स्तर

सहकारी आन्दोलन सामान्यतः 3 हिस्सों में बंटा हुआ है, जिसके अनुसार राज्य स्तर पर शीर्ष समितियाँ, जिला स्तर पर केन्द्रीय समितियों तथा ग्राम स्तर पर प्राथमिक समितियाँ स्थापित की जाती है। 5 व्यक्तियों से मिलकर बने एक औसत भारतीय परिवार को आधार मानकर साधारणतः यह अनुमान लगाया जा सकता है कि 1955-56 के अन्त तक 8.81 करोड व्यक्तियों अथवा 22.8 प्रतिशत भारतीय जनता को सहकारिता का लाभ मिलने लगा था।

1955-56 में देश में कुल 240395 सहकारी समितियों थी जिनके सदस्यों की संख्या 17621978 थी और जिनकी चालू पूँजी कुल मिला कर 4 अरब 68 करोड 81लाख 69 हजार रूपये की थी। 1955-56 में सहकारी समितियों को 626.95 लाख रूपये का लाभ हुआ जिसमें से राज्यीय तथा केन्द्रीय बैंक को 114.56 लाख रूपये का राज्यीय तथा केन्द्रीय गैर ऋण समितियों को 123.63 लाख रूपये का, प्राथमिक कृषि ऋण समितियों को 139.80 लाख रूपये का, अनाज बैंकों को 17.25 लाख रूपये का, प्राथमिक कृषि गैर ऋण समितियों को 2.80 लाख रूपये का, प्राथमिक गैर कृषि ऋण समितियों को 143.21 लाख रूपये का, प्राथमिक गैर कृषि ऋण समितियों को 71.59 लाख रूपये का तथा भूमि बन्धक बैंकों को 14.11 लाख रूपये का लाभ हुआ।

3.3.6 प्राथमिक समितियां

गाँव के स्तर पर संगठित तथा व्यक्तिगत सदस्यों वाली प्राथमिक समितियों सहकारिता के आधार का काम करती है। जून 1956 के अन्त में सभी प्रकार की 240395 सहकारी समितियों में से 236426 प्राथमिक समितियां थी। के अधिकांशतः (178443) ऋण सम्बन्धी कार्य ही करती थीं जिनमें से 168410 समितियों कृषि ऋण का तथा 10033

समितियों कृषि भिन्न ऋण का काम करती थी। शेष 30268 कृषि गैर ऋण समितियों की संख्या बढ़कर 3232400 हो गयी तथा इन प्राथमिक समितियों की सदस्य संख्या लगभग 52721 थी।

कृषि ऋण समितियों (Agricultural credit Societies)- ये समितियाँ बीज, खाद तथा मशीनी औजार जैसी वस्तुएँ खर्गीदने के कृषि सम्बन्धी कार्य करती है। 1955-56 में ऐसी समितियों में से क्रय तथा विक्रय, उत्पादन तथा विक्रय उत्पादन, समाज सेवा तथा आवास सम्बन्धी समितियों क्रमशः 2761, 15068, 6530, 5681 तथा 228 थी जिनके सदस्य क्रमशः 451070, 1348757, 389636, 195558 तथा 6805 थे।

गैर कृषि ऋण समितियों (Non-agricultural Credit societies) – इन समितियों में कर्मचारी ऋण समितियों तथा शहरी बैंक भी सम्मिलित रहते है। 1955-56 में इनके निक्षेप 53.54 करोड़ रूपये (चालू पूँजी का 62.44 प्रतिशत) के थे। इस वर्ष 2.42 करोड़ रूपये का सामान प्राप्त हुआ तथा 2.27 करोड़ रूपये की बिक्री हुई। जून 1967 के अन्त तक इन समितियों की संख्या 13616 थी और इनमें 194.03 करोड़ रूपये डिपाजिट थे।

गैर कृषि गैर ऋण समितियों (Other Non Agricultural Credit societies) - इन समितियों में से क्रय तथा विक्रय, उत्पादन तथा विक्रय, उत्पादन, समाज सेवा, आवास तथा बीमा सम्बन्धी समितियाँ क्रमशः 8177, 11524, 2557, 2728 तथा 30 थीं जिनके सदस्यों की संख्या क्रमशः 1630, 229, 932608, 154540, 150470, 171579 तथा 283021 थी।

प्राथमिक भूमि बन्धक बैंक (Primary Land Mortgage Banks)& 1955-56 के अन्त में देश में 302 प्राथमिक भूमि बन्धक बैंक थे जिनके सदस्यों की संख्या 313827 थी। इन बैंकों ने 1.74 करोड़ रूपये के ऋण दिए तथा इनकी चालू पूँजी 1.35 करोड़ रूपये की थी। ऋण लेने वालों से साढ़े 5 से 10 प्रतिशत ब्याज लिया गया।

3.3.7 केन्द्रीय समितियाँ (Central Societies)

ग्राम स्तर की प्राथमिक समितियों तथा राज्य स्तर की शीर्ष समितियों के बीच जिला स्तर की 3 प्रकार की केन्द्रीय समितियाँ होती है- 1. केन्द्रीय बैंक तथा बैंक संघ, 2. केन्द्रीय गैर ऋण समितियाँ तथा 3. केन्द्रीय भूमि बन्धक बैंक।

केन्द्रीय बैंक तथा बैंक संघ (Central banks and federations)- केन्द्रीय सहकारी बैंकों का मुख्य कार्य उससे सम्बद्ध बैंकों के बीच सन्तुलन स्थापित करना तथा प्राथमिक समितियों के लिए धन उपलब्ध कराना है। 1955-56 में देश में 478 केन्द्रीय बैंक संघ थे जिनके सदस्यों की संख्या 299555 थी, जिन्होंने 79 करोड़ 83 लाख 43 हजार रूपये के ऋण दिए तथा जिनकी चालू पूँजी 92 करोड़ 66 लाख 65 हजार रूपये की थी। 1955-56 के अन्त तक केन्द्रीय सहकारी बैंकों ने 23.28 करोड रूपये का विनियोग कर रखा था जिसमें से 13.06 करोड़ रुपये सरकारी तथा अन्य न्यासी सिक्योरिटियों में लगे हुए थे। 1966-67 में इन बैंकों की संख्या 346 तथा सदस्य संख्या 352365 थी तथा 49935 लाख रूपये ऋण में दिए गये थे।

केन्द्रीय गैर ऋण समितियों (Central non-credit societies)- इन समितियों में से हाट व्यवस्था, थोक तथा उपलब्धि, औद्योगिक, दुग्ध तथा अन्य प्रकार के संघ क्रमशः 2354, 114, 113, 67, तथा 116 थे जिनके सदस्यों में व्यक्ति तथा समितियाँ क्रमशः 1803369, तथा 45365, 9443 तथा 12275 तथा 10164 तथा 3534, 9086 तथा 1276 और 12479 तथा 4469 थी।

केन्द्रीय भूमि बन्धक बैंक (Central land mortgage banks)- केन्द्रीय भूमि बन्धक बैंक अपनी निधियों की पूर्ति मुख्यतः ऋणपत्र जारी करके करते है जो राज्य सरकार द्वारा प्रत्याभूत होते है। 1955-56 के अन्त में 14.94 करोड रूपये के ऋणपत्र जारी थे और देश में ऐसे 9 बैंक थे जिनके सदस्यों की संख्या 90786 थी।

शीर्ष समितियाँ: राज्य स्तर पर कार्य करने वाली शीर्ष समितियों अपने से सम्बद्ध जिला स्तर की समितियों के संतुलन केन्द्रों के रूप में कार्य करती है। ये समितियों दो प्रकार की होती है- 1. सरकारी बैंक तथा 2. सरकारी गैर ऋण समितियाँ।

1955-56 में कृषि सम्बन्धी ऋण समितियों अनाज बैंक, गैर ऋण समितियों तथा प्राथमिक भूमि बन्धक बैंक और कृषि भिन्न ऋण समितियों गैर ऋण समितियों तथा बीमा समितियों क्रमशः 159939, 8169, 30268 तथा 308 और 10003, 27745 तथा 30 थी। इनके सदस्य क्रमशः 7790850, 730428, 2391826 तथा 313827 और 3072600, 3322447, 286521 थे।

सरकारी सहकारी बैंक (Government Cooperative banks)- 1955-56 में देश में 24 सरकारी सहकारी बैंक थे जिनके सदस्य 36394 तथा जिनकी चालू पूँजी 63 करोड 33 लाख 93 हजार रूपये की थी।

सरकारी गैर ऋण समितियों Government non Credit Societies)- 1955-56 में इनमें से हाट व्यवस्था थोक तथा उपलब्धि, औद्योगिक, आवास तथा अन्य प्रकार के संघ क्रमशः 1995245 तथा 25 थे जिनके सदस्यों में व्यक्ति तथा समितियाँ क्रमशः 4014 तथा 3535, 1839 तथा 827, 1693 तथा 4579, 512 तथा 534 और 4295 तथा 1066 थी।

अन्य संस्थाएँ

निरीक्षण संघ (Supervision federation) 1955-56 में देश में 582 निरीक्षण संघ थे जिनसे 39254 समितियों सम्बन्द थी। इन समितियों की सदस्य संख्या 3285936 तथा इनकी चालू पूँजी 5424 करोड़ रूपये की थी। 1966-67 में निरीक्षण संघ 788 हो गये और इनसे 45510 समितियाँ सम्बद्ध थी।

सहकारी संघ तथा सहकारी सस्थाएँ Cooperative federation and Cooperative institutions)- जून 1956 के अन्त में देश में ऐसे 30 संघ थे जिनसे 41267 प्राथमिकजून 1956 के अन्त में देश में ऐसे 30 संघ थे जिनसे 41267 प्राथमिक तथा 713 केन्द्रीय समितियाँ सम्बद्ध थी। और इनके व्यक्तिगत सदस्य 1120 थे। इनको 3955 लाख रूपये की कुल आय हुई तथा इन्होंने कुल 45.32 लाख रूपये व्यय किये।

बीमा समितियों (Insurance societies)- जून 1956 के अन्त में देश में 24 सहकारी जीवन बीमा समितियों थी जिनके सदस्य 278543 थे और जिन्होंने 5.25 करोड रूपये की बीमा राशि के लिए 39503 बीमा पत्र जारी किये। इनके अतिरिक्त 4 अग्नि तथा सहकारी सामान्य बीमा समितियों भी थी। 2 सहकारी मोटर बीमा समितियों ने 1955-56 में 2165 बीमापत्र जारी किये। 1955-56 के आरम्भ में 13616 सहकारी समितियों भंग की जा रही थी तथा इस वर्ष 2335 नयी समितियों पंजीकृत की गयी।

3.4 वैश्वीकरण व मानव विकास

विश्व की विभिन्न अर्थव्यवस्थाओं, को वस्तुओं तथा सेवाओं, प्रौद्योगिकी, पूँजी तथा यहां तक कि श्रम अथवा मानव पूंजी के बेरोकटोक प्रवाह के साथ एकीकृत करने की प्रक्रिया ही वैश्वीकरण है। इस प्रकार, वैश्वीकरण के चार प्रतिमान है.-

i. राष्ट्र राज्यों के मध्य वस्तुओं व सेवाओं के सुगम प्रवाह को सुनिश्चित करने के लिए व्यापार अवरोधकों में कमी।

ii. ऐसे वातावरण का निर्माण करना जिसमें राष्ट्र राज्यों के मध्य पूंजी के निवेश हेतु निरन्तर प्रवाह हो सके।

iii. प्रौद्योगिकी के प्रवाह को अनुमति देने वाले वातावरण का निर्माण करना।

iv. विकासशील देशों के दृष्टिकोण के अनुसार ऐसे वातावरण का निर्माण करना, जिसमें विश्व के विभिन्न देशों के मध्य मानव शक्ति व श्रम का आदान-प्रदान सुगमतापूर्वक हो सके।

वैश्वीकरण के इस दौर में पूरी दुनिया में बडा उथल-पुथल हो रहा है। एन्थोनी गिडेनस ने अपनी पुस्तक दि कान्सीक्वेन्सेज ऑफ मॉडर्निटी (The Consequences of Moderity, 1990) में वैश्वीकरण की व्याख्या विस्तार पूर्वक की है। उनका कहना है विभिन्न लोगों और दुनिया के विभिन्न क्षेत्रों के बीच बढ़ती हुई अन्योन्याश्रिता या पारस्परिकता ही वैश्वीकरण है। यह पारस्परिकता सामाजिक और आर्थिक संबंधों में होती है। इसमें समय और स्थान सिमट जाते हैं। इसी संदर्भ में गांधी जी के इस वक्तव्य को भी देखना होगा। वे लिखते हैं "मैं नहीं चाहता कि मेरा मकान चारों ओर दीवारों से घिरा हो और मेरी खिड़कियां बन्द हों। मैं तो चाहता हूँ कि सभी देशों की सांस्कृतियों की हवाएं मेरे घर में जितनी भी आजादी से बह सके बहे। लेकिन मैं यह नहीं चाहता कि उनमें से कोई भी हवा मुझे मेरी जड़ों से ही उखाड़ दे।"

हम दूसरे देशों में जाते रहे हैं और दूसरे देशों के लोग हमारे यहाँ आते रहे हैं। व्यापारिक लेन-देन और सांस्कृतिक अदान-प्रदान भी हम हमेशा करते रहे हैं। इन प्रक्रिया में भी शेष देश से कभी कटे नहीं बल्कि पहले से भी ज्यादा जुड़ते रहे हैं। अतः यह हमारे लिए कोई नई बात नहीं है। किन्तु भारत में वैश्वीकरण समता, न्याय और विश्व-बन्धुत्व के आधार पर होना चाहिए। वैश्वीकरण के संबंध में यह आम धारणा है कि समाजवाद समाप्त हो गया है और पूँजीवाद विश्व-विजेता बन गया है। अतः भारत को भी अब समाजवाद का स्वप्न देखना बंद कर देना चाहिए और पूँजीवाद को ही अपनी नियति मान लेना चाहिए। इस धारणा का प्रचार यह कहते हुए किया जा रहा है कि पूँजीवाद की गति के नियमों के अनुसार सम्पूर्ण विश्व की अर्थव्यवस्था एक हो गई है। अतः भारतीय अर्थव्यवस्था को वैश्विक, पूँजीवाद से जोड़ना तथा घरेलू आर्थिक नीतियों को पूँजीवादी का सिद्धान्त बनाकर चलना अनिवार्य हो गया है।

प्रसिद्ध अर्थशास्त्री दिलीप एस० स्वामी ने अपनी पुस्तक 'विश्व बैंक और भारतीय अर्थव्यवस्था का वैश्वीकरण' में विश्व बैंक, अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष और नियमों से भारत की नई आर्थिक नीति का संबंध स्पष्ट करने वाले बहुत से अन्य और आँकडे देकर यह सिद्ध किया गया है कि भारत में वैश्वीकरण की जो प्रक्रिया 1991 में शुरू हुई है वह स्वाधीनता के समय से चली आ रही है। इसका उद्देश्य न तो गरीबी और न बेरोजगारी को कम करना है और न लोगों की बुनियादी जरूरतें पूरी करता है। इसका मुख्य जोर आर्थिक गतिविधियों में राज्य के हस्तक्षेप को न्यूनतम करना और

बाजार की अदृश्य शक्तियों को तथा कीमतों की प्रक्रिया को छूट देता है कि वे राष्ट्रीय संसाधनों को जहाँ चाहे वहाँ लगायें। भारत ने उन वैश्विक बाजार, शक्तियों के आगे घुटने टेक दिये हैं जिन पर बहुराष्ट्रीय निगमों का अधिपत्य हैं।

मानव विकास रिपोर्ट: 2000: संयुक्त राष्ट्र संघ विकास कार्यक्रम (UNDP) के अन्तर्गत प्रकाशित मानव विकास रिपोर्ट में कहा गया है कि आधुनिक युग वस्तुतः वैश्वीकरण का युग है। यह रिपोर्ट कहती है कि वैश्वीकरण दुनिया के लिये नया नहीं है। इसका प्रारंभ

इसका प्रारंभ 16वीं शताब्दी से हैं। लेकिन आज का वैश्वीकरण अतीत के वैश्वीकरण से भिन्न है। इस रिपोर्ट ने वैश्वीकरण को चार विशेषताओं द्वारा परिभाषित किया है:-

(1) नये बाजार (New Market): विदेशी विनिमय और पूँजी बाजार वैश्वीय स्तर पर जुड़े हुए हैं और ये बाजार चौबीसों घंटे काम करते हैं। इनके लिए भौतिक दूरियां कोई अर्थ नहीं रखतीं।

(2) नये उपकरण (New Tools): आज के विश्व में लोगों के लिए कई नये उपकरण आ गये हैं। इनमें इंटरनेट लिंक्स, सेल्यूलर फोन्स और मीडिया तंत्र सम्मिलित हैं।

(3) नये एक्टर या कर्ता वैश्वीकरण की प्रक्रिया ऐसी हैं जिसमें कार्यों का संपादन करने के लिए कई कर्ता हैं। इन कर्ताओं में विश्व व्यापार संगठन, गैर सरकारी संगठन, रेडक्रास आदि सम्मिलित हैं।

(4) नये नियम : अब सारे काम संविदा के माध्यम से होते हैं। बहुराष्ट्रीय कंपनियां दुनिया भर के राष्ट्र राज्यों के साथ सीधा व्यपार समझौता करती हैं। ये कतिपय नये नियम हैं जो वैश्वीकरण के आर्थिक और सांस्कृतिक कार्यक्रमों को लागू करने में सहायता देते हैं।

यह रिपोर्ट बताती है कि अपने नये अवतार में वैश्वीकरण अधिक शक्तिशाली बन गया है। इसे अधिक स्पष्ट करते हुए रिपोर्ट कहती है:- "वैश्वीय बाजार, वैश्वीय तकनीकी तंत्र, वैश्वीय विचार और वैश्वीय सुदृढता, यह आशा की जा सकती है, संसार भर के लोगों को समृद्धि देगें। लोगों के बीच पारस्परिकता और आत्मनिर्भरता में आशा की जाती है कि लोग साझा मूल्यों में विश्वास स्थापित करेंगे और दुनिया भर के लोगों का विकास होगा।

मानव विकास पर वैश्वीकरण का सकारात्मक प्रभाव :-

1) संयुक्त राष्ट्र, IMF, विश्व बैंक, OECD तथा विश्व व्यापार संगठन जैसे कई अन्तर्राष्ट्रीय संस्थाओं ने वैश्वीकरण के विचार को अपनाते हुए माना है कि विभिन्न राष्ट्रों के बीच व्यापार में वृद्धि होने के कारण प्रत्येक व्यक्ति की आमदनी में बढ़ोत्तरी हुई हैं।

2) राष्ट्रों के मध्य अधिक मात्रा में आयात-निर्यात होने के कारण विश्व की समृद्धि बढ़ी है और यह इसलिए संभव हुआ क्योंकि संपूर्ण विश्व में सभी व्यक्तियों के लिए समान नियम बनाये गये हैं जिनका पालन करना उनके लिए आवश्यक हैं।

3) अन्तर्राष्ट्रीय संगठनों के मतानुसार वैश्वीकरण के माध्यम से सयुक्त राष्ट्र तथा अन्य व्यापारिक समुदायों के मध्य श्रम, मानव अधिकार, पर्यावरण इत्यादि से संबंधित मानकों से जुड़े हुए मूल्यों को स्थापित किया गया है तथा इसकी

उन्नति के लिए निरंतर प्रयास किये जा रहे हैं।वैश्वीकरण के समर्थक यह कहते हैं कि इस बात के बहुत से साक्ष्य मिल जायेंगे।

4) वैश्वीकरण के समर्थक यह कहते हैं कि इस बात के बहुत से साक्ष्य मिल जायेंगे कि विभिन्न गरीब देशों में से जिन देशों में दूसरे देशों के साथ व्यापार स्थापित किया है उनमें से अधिकांश की आय में वृद्धि तथा जिसने अन्य देशों के साथ व्यापार स्थापित नहीं किया उनकी गरीबी में वृद्धि देखी गयी हैं।

5) ऐसे कुछ देश जिन्होंने सीमा संबंधी करों एवं नियमों में भारी कमी की है, उनहोंने रोजगार व राष्ट्रीय आय में वृद्धि कुछ हद तक कर प्राप्त कर ली है, क्योंकि वैश्वीकरण के माध्यम से श्रम व पूँजी का मात्र आयात ही नहीं किया जा रहा है बल्कि एक बृहद् स्तर पर इसका निर्यात होने पर बहुत अधिक लाभ मिल रहा है।

6) यह कहा जाता है कि कोई देश जितना अधिक अन्य देशों से व्यापार करता है, वहां के नागरिकों का जीवन स्तर उतना ही सुधरता है।

7) बहुत से विकासशील देशों, मैक्सिको, तुर्की, थाईलैण्ड आदि ने अपनी अर्थव्यवस्था में उन्नति का अनुभव करते हुए वैश्वीकरण के पक्ष में आवाज उठायी है।

8) आस्ट्रेलिया के भूतपूर्व विदेश मंत्री ने कहा था कि वैश्वीकरण ने आस्ट्रेलिया में सकल घेरलू उत्पाद, रोजगार, पारिवारिक आय व जीवन स्तर को बढ़ाने में बहुत अहम भूमिका निभाई है।

9) वैश्वीकरण का एक महत्वपूर्ण योगदान यह है कि इसके कारण श्रम- सबंधी कार्यो व आर्थिक संरचना में महिलाओं की भागेदारी आश्चर्यजनक रूप से बढ़ी है।

10) वैश्वीकरण के कारण बाजार की संरचना में वृद्धि हुई है। जिसके कारण स्थानीय समुदाय से लोगों का सम्पर्क छूटता जा रहा है इसका सकारात्मक पहलू यह है कि बाजार से संबंधित संबंधों में प्राथमिक लगाव की भावना कम हो गयी है जिससे व्यक्ति भावनात्मक सहारा प्राप्त करने हेतु अपने परिवार पर अधिक निर्भर हो गया है।

मानव विकास पर वैश्वीकरण का नकारात्मक प्रभाव :-

मानव विकास रिपोर्ट (UNDP 2001) ने वैश्वीकरण के दुष्परिणामों को निम्न

बिन्दुओं में रखा है-

(1) वैश्वीकरण ने मानव सुरक्षा को एक अजीब तरह की धमकी दी है। एक ओर तो धनी और समृद्ध देश हैं जिनमें पूरी राजनीतिक स्वतंत्रता है, स्थायित्व है और दूसरी तरफ गरीब देश है, जिनमें विपन्नता है और नागरिक नाम मात्र को भी नहीं है। अमेरिका जैसे धनाढ्य देश में आधी रात को आदमी सिर ऊँचा उठा के चहलकदमी कर सकता है उसकी पूरी सुरक्षा है। दूसरी ओर स्वतंत्रता से अपने दैनिक काम-काज चला पाना नागरिकों के लिए दूभर हो जाता है। कब, किस समय गाज गिर पड़े, इसकी कोई सुरक्षा नहीं।

(2) यह सही है कि नई सूचना और संचार तकनीकी ने वैश्वीकरण की प्रक्रिया द्वारा लोगों को एक सूत्र में बांध दिया है पर इसका एक यह भी परिणाम निकलता है कि दुनिया के कुछ लोग अपने आप को पृथक समझते हैं। इस विभाजन के कारण भी वैश्वीकरण का विरोध होने लगा है।

(3) वैश्वीकरण के दौरान यह स्थिति है कि धनाढ्य देश ज्ञान पर अपना नियंत्रण रखने लगे हैं। इसके परिणामस्वरूप गरीब देश हाशिये पर आ गये हैं। वे अपने आपको असुरक्षित समझने लगे हैं। उदाहरण के लिए थाइलैण्ड जैसे देश में अफ्रीका की तुलना में अधिक सेल्यूलर फोन हैं। दक्षिण एशिया जहां दुनिया के 23 प्रतिशत लोग रहते हैं, एक प्रतिशत से कम लोगों के पास टेलीफोन हैं।

(4) लगभग 80 प्रतिशत वेबसाइट में अग्रेजी भाषा चलती है, जबकि बोलने वालों में दस व्यक्तियों में एक व्यक्ति हैं।

अभ्यास प्रश्न

1. सहकारी समितियों पर पहला कानूनी ढांचा किसने प्रदान किया?
a. RBI
b. सहकारी अधिनियम
c. किसान आयोग
d. राज्य सरकार

2. ग्रामीण ऋण सर्वेक्षण समिति का मुख्य उद्देश्य क्या था?
a. PACS का विस्तार
b. ग्रामीण क्षेत्रों में ऋण की स्थिति का अध्ययन
c. कृषि उत्पादन बढ़ाना
d. सहकारी बैंकिंग का निजीकरण

3. सहकारी कर्मचारियों के प्रशिक्षण का प्रमुख लाभ क्या है?
a. समिति का निजीकरण
b. अनौपचारिक ऋण बढ़ना
c. पारदर्शिता और प्रबंधन सुधार
d. सदस्यता कम होना

4. RBI सर्वेक्षण मुख्यतः किससे संबंधित होते हैं?
a. ग्रामीण मनोरंजन
b. ग्रामीण ऋण और उधारी
c. कृषि मूल्य समर्थन
d. शिक्षा नीति

3.5 सारांश

सहकारी आन्दोलन की जड़ें इस विचार में हैं कि लोग अपनी आर्थिक जरूरतें आपसी सहयोग से बेहतर तरीके से पूरी कर सकते हैं। भारत में इस आन्दोलन को कानूनी आधार **सहकारी अधिनियम** से मिला, जिसने सहकारी समितियों के गठन, पंजीकरण, संचालन और नियंत्रण की रूपरेखा तय की। इसी ढांचे ने किसानों, कारीगरों और ग्रामीण समुदायों को औपचारिक संस्थागत सहयोग पाने का रास्ता दिया।

आर्थिक स्थिति को समझने और सुधारने के लिए **रिज़र्व बैंक ऑफ इंडिया (RBI)** ने समय-समय पर सर्वेक्षण किए। इन सर्वेक्षणों ने ग्रामीण ऋण संरचना, किसानों की क्रेडिट ज़रूरतों और सहकारी संस्थाओं की वास्तविक स्थिति पर ठोस आंकड़े दिए। RBI की रिपोर्टों ने साफ बताया कि सहकारी संस्थाएं ग्रामीण अर्थव्यवस्था की रीढ़ बन सकती हैं, अगर उन्हें पर्याप्त संसाधन और पेशेवर प्रबंधन मिले।

यहीं से आता है **सहकारी कर्मचारियों के प्रशिक्षण** का महत्व। प्रशिक्षित कर्मचारी समितियों को पारदर्शी, जवाबदेह और कुशल तरीके से चलाने में अहम भूमिका निभाते हैं। लेखांकन, ऋण प्रबंधन, सदस्य सेवा और नेतृत्व क्षमता जैसे पहलुओं पर प्रशिक्षण ने सहकारी संस्थाओं की कार्यकुशलता में लगातार सुधार किया है।

इन सभी प्रयासों को दिशा देने में **ग्रामीण ऋण सर्वेक्षण समिति** की रिपोर्टें भी निर्णायक रहीं। समिति ने ग्रामीण क्षेत्रों में उधारी के स्रोत, ब्याज दरों की स्थिति, साहूकारों की भूमिका, और संस्थागत ऋण की कमी जैसे मुद्दों की गहराई से जांच की। इसकी सिफारिशों के बाद ही सहकारी बैंकों और समाजों को ग्रामीण क्रेडिट सिस्टम में केंद्रीय स्थान मिला।

संक्षेप में, सहकारी अधिनियम ने कानूनी आधार दिया, RBI सर्वेक्षणों ने दिशा दिखाई, प्रशिक्षण ने प्रबंधन सुधारा और ग्रामीण ऋण समिति ने ग्रामीण अर्थव्यवस्था की जरूरतों को समझकर नीतिगत सुधारों की नींव रखी। इन सभी ने मिलकर भारत में सहकारी आन्दोलन को मजबूत किया।

3.6 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1. b, 2. b, 3. C, 4. b

3.7 शब्दावली

1. **सहकारी आन्दोलन** – आर्थिक और सामाजिक उद्देश्यों की पूर्ति के लिए सहयोग आधारित संगठित प्रयास.
2. **सहकारी अधिनियम** – सहकारी समितियों के गठन, पंजीकरण और संचालन को नियंत्रित करने वाला कानून.
3. **सहकारी समिति** – सदस्यों द्वारा संचालित एक स्वैच्छिक संगठन जो सेवा-भाव से चलता है.
4. **सहकारी बैंक** – कृषि और ग्रामीण क्षेत्रों को ऋण उपलब्ध कराने वाली सहकारी आधारित वित्तीय संस्था.
5. **प्राथमिक कृषि ऋण समिति (PACS)** – गाँव स्तर पर ऋण और अन्य सेवाएँ देने वाली मूल इकाई.

6. **रिज़र्व बैंक सर्वेक्षण** – ग्रामीण ऋण, उधारी स्रोतों और सहकारी संस्थाओं की स्थिति पर RBI द्वारा किया गया अध्ययन.

3.8 निबंधात्मक प्रश्न

1. सहकारी अधिनियम और RBI सर्वेक्षणों ने भारत में सहकारी आन्दोलन को किस तरह मजबूत बनाया, विस्तार से समझाएँ.

2. ग्रामीण ऋण व्यवस्था में सुधार के लिए ग्रामीण ऋण सर्वेक्षण समिति की सिफारिशों पर चर्चा करें.

3. सहकारी समितियों के प्रभावी संचालन में कर्मचारियों के प्रशिक्षण की भूमिका स्पष्ट करें.

4. ग्रामीण अर्थव्यवस्था में सहकारी समितियों की आवश्यकता और उपयोगिता का विवेचन करें.

3.9 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

दत्त, रुड्डर एवं सुन्दरम. भारतीय अर्थव्यवस्था. नई दिल्ली: एस. चाँद एंड कम्पनी.

गोयल, ओ.पी. भारतीय सहकारी आन्दोलन. दिल्ली: अटलांटिक पब्लिशर्स.

मिश्र, एस.के. एवं पुराणिक, वी.के. अर्थशास्त्र के सिद्धांत. लक्ष्मी नारायण पब्लिशर्स.

चतुर्वेदी, डी.एन. सहकारी प्रबंधन. नई दिल्ली: हिमालय पब्लिशिंग हाउस.

त्रिपाठी, सी.बी. भारतीय ग्रामीण अर्थव्यवस्था एवं सहकारिता. प्रयाग: साहित्य भवन.

भारतीय रिज़र्व बैंक. ग्रामीण ऋण सर्वेक्षण रिपोर्ट (1951–54).

भारत सरकार. सहकारी समितियाँ अधिनियम (विभिन्न संशोधन).

राष्ट्रीय सहकारी विकास निगम (NCDC). भारत में सहकारी आन्दोलन: विकास और चुनौतियाँ.

योजना आयोग. ग्रामीण ऋण एवं कृषि वित्त पर रिपोर्ट्स. नई दिल्ली.

इकाई-4 सर्वोदय की अवधारणा और विशेषता, भूदान और ग्रामदान आन्दोलन

4.1 प्रस्तावना

4.2 उद्देश्य

4.3 सर्वोदय की अवधारणा : अर्थ, उद्भव और विकास

4.4 सर्वोदय की प्रमुख विशेषता

4.5 भूदान आन्दोलन, उत्पत्ति और विस्तार

4.6 ग्रामदान आन्दोलन : सामूहिक स्वामित्व और ग्राम स्वराज

4.7 सर्वोदय भूदान और ग्रामदान का भारतीय लोकतंत्र पर प्रभाव

4.8 सारांश

4.9 शब्दावली

4.10 अभ्यास प्रश्न के उत्तर

4.11 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

4.12 निबंधात्मक प्रश्न

4.1 प्रस्तावना

भारतीय सामाजिक-राजनीतिक चिंतन में सर्वोदय, भूदान और ग्रामदान आन्दोलन ऐसी विलक्षण अवधारणाएँ हैं जिनकी जड़ें भारतीय सभ्यता, अध्यात्म, नैतिकता और सामुदायिक जीवन की परंपराओं में निहित हैं। बीसवीं शताब्दी के सामाजिक व राजनीतिक परिवर्तन के दौर में जब औपनिवेशिक शासन ने भारत को आर्थिक, सामाजिक और नैतिक रूप से विभाजित कर दिया था, तब स्वतंत्रता संग्राम के नेता केवल राजनीतिक स्वतंत्रता तक सीमित नहीं रहे। उन्होंने ऐसे वैकल्पिक समाज मॉडल पर विचार किया जो हिंसारहित, श्रम-सम्मान आधारित, समानतापूर्ण और न्यायपूर्ण हो। इसी वैचारिक पृष्ठभूमि में महात्मा गांधी के दर्शन से प्रेरित होकर 'सर्वोदय' और विनोबा भावे द्वारा संचालित 'भूदान' तथा 'ग्रामदान' जैसे रचनात्मक सामाजिक आन्दोलन उभरकर सामने आए।

स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद भारत के सामने दो प्रमुख चुनौतियाँ थीं—

1. गरीबी, अशिक्षा, विस्थापन और असमानता का उन्मूलन,
2. एक ऐसे समाज का निर्माण जिसमें सभी वर्गों, जातियों, धर्मों और समुदायों के लोगों को सम्मान, सहभागिता और विकास के समान अवसर प्राप्त हों।

समाजवादी, मार्क्सवादी और उदारवादी मॉडल के बीच, गांधीवादी रास्ता किसी भी औद्योगिक पूँजीवादी या हिंसात्मक क्रांति के स्थान पर रचनात्मक कार्यक्रमों और नैतिक प्रेरणा को आधार देता है। सर्वोदय इसी वैकल्पिक व्यवस्था का प्रतिनिधि है, जो "सबका उदय , सबका भला" की संकल्पना पर आधारित है।

सर्वोदय के दो प्रमुख स्तंभ हैं—

- गांधी का 'अन्त्योदय' दर्शन, यानी समाज के सबसे अंतिम व्यक्ति के उत्थान से समूचे समाज की उन्नति।
- विनोबा भावे का 'भू दान-आन्दोलन', जिसके माध्यम से बिना किसी कानून, दंड या बल प्रयोग के सामाजिक न्याय लाने का प्रयास किया गया।

भूदान आन्दोलन ने भारत में पहली बार यह उदाहरण प्रस्तुत किया कि भूमि जैसे आर्थिक संसाधन का सहज पुनर्वितरण भी व्यक्तिगत नैतिक जागरण और सामुदायिक उत्तरदायित्व की भावना से संभव है। इसी की परिणति आगे चलकर ग्रामदान, जमीन-साझेदारी, सर्वोदय समाज, और समाज सरकार (लोकनीति) जैसी अवधारणाओं में हुई।

इस इकाई में हम सर्वोदय की अवधारणा को समझने के साथ साथ इसकी विशेषताओं पर भी चर्चा करेंगे। 20 वीं शताब्दी में उभरे भूदान व ग्रामदान आन्दोलन को भी समझने का प्रयास करेंगे। इस इकाई में सर्वोदय की वैचारिक पृष्ठभूमि, इसकी विशेषताएँ, भूदान और ग्रामदान आंदोलनों का क्रमिक विकास, उनके सामाजिक-राजनीतिक प्रभाव तथा भारतीय लोकतंत्र और ग्रामीण विकास में उनकी भूमिका का विस्तृत अध्ययन करेंगे।

4.2 उद्देश्य

इस अध्याय के अध्ययन के उपरांत शिक्षार्थी निम्नलिखित बिंदुओं को स्पष्ट रूप से समझने में सक्षम होंगे—

1. सर्वोदय की अवधारणा एवं उसकी वैचारिक पृष्ठभूमि को समझ सकेंगे।
2. सर्वोदय की प्रमुख विशेषताओं का विश्लेषण कर सकेंगे। (जैसे अहिंसा, सत्य, ट्रस्टीशिप, श्रम की प्रतिष्ठा, विकेन्द्रीकरण, ग्रामस्वराज्य, नैतिक शक्ति आदि।)
3. भूदान आन्दोलन के उद्भव, विकास और प्रभाव का अध्ययन कर समझ विकसित कर सकेंगे।
4. ग्रामदान आन्दोलन के स्वरूप और उसके व्यापक सामाजिक लक्ष्य को समझ सकेंगे।
5. इन आंदोलनों से जुड़े प्रमुख व्यक्तित्वों, विचारकों और संगठनों की भूमिका का मूल्यांकन कर सकेंगे।
6. सर्वोदय और भूदान आंदोलनों की वर्तमान प्रासंगिकता पर विचार कर सकेंगे।

4.3 सर्वोदय की अवधारणा : अर्थ, उद्भव और विकास

सर्वोदय भारतीय सामाजिक-राजनीतिक चिंतन में एक व्यापक और सुसंगठित वैचारिक प्रतिमान के रूप में विकसित हुआ है, जिसकी जड़ें भारतीय सांस्कृतिक परंपरा, गांधीवादी दर्शन और वैश्विक मानवीय-नैतिक मूल्यों में गहराई से

निहित हैं। 'सर्वोदय' शब्द का अर्थ है सभी का उदय या सभी का कल्याण, किंतु इसका व्यावहारिक अर्थ इससे कहीं अधिक व्यापक है। सर्वोदय एक ऐसी समन्वित जीवन-पद्धति का संकेत देता है जिसमें मनुष्य का आध्यात्मिक, नैतिक, आर्थिक और सामाजिक विकास एक साथ होता है और समाज में किसी भी प्रकार के शोषण, असमानता, हिंसा, वर्चस्व या संकीर्णता के लिए स्थान नहीं होता। गांधी ने सर्वोदय को एक समग्र, समावेशी एवं मानव-केन्द्रित विश्वदृष्टि के रूप में प्रस्तुत किया, जहाँ समाज का उत्थान अंत्योदय के सिद्धांत यानी सबसे अंतिम और सबसे कमजोर व्यक्ति के कल्याण से आरंभ होता है।

सर्वोदय की वैचारिक उत्पत्ति का एक महत्वपूर्ण स्रोत जॉन रस्किन की प्रसिद्ध कृति Unto This Last है, जिसे गाँधी की आत्मकथा के अनुसार, गांधी ने 1904 में दक्षिण अफ्रीका में जोहान्सबर्ग से डरबन कि 24 घंटे कि ट्रेन यात्रा के दौरान पढ़ा। इस किताब ने गांधी की आर्थिक, नैतिक और सामाजिक चिंतन पर गहरा प्रभाव डाला। गांधी ने 1908 में इसका गुजराती अनुवाद 'सर्वोदय' शीर्षक से किया और इस प्रकार यह शब्द भारतीय बौद्धिक परंपरा में स्थापित हो गया। रस्किन के विचारों में तीन प्रमुख तत्व थे पहला, समाज का कल्याण तभी संभव है जब सभी व्यक्तियों का कल्याण समान रूप से सुनिश्चित हो, दूसरा, श्रम का मूल्य चाहे वह शारीरिक हो या मानसिक मूल्यांकन में समान दर्जा रखता है और कोई भी श्रम हीन या श्रेष्ठ नहीं माना जा सकता, और तीसरा, सरल, नैतिक और आत्मनिर्भर जीवन ही मनुष्य के लिए सर्वोत्तम जीवन है। गांधी ने इन सिद्धांतों को भारतीय परिस्थितियों और अपनी व्यक्तिगत नैतिक चेतना के अनुसार ढाला तथा सर्वोदय को जीवन और समाज का एक दर्शन बनाया। इस दर्शन के भी तीन आधारभूत तत्व थे –

1. सबके हित में ही व्यक्ति का हित निहित है।
2. सभी का कार्य सामान महत्व का है।
3. श्रम हर व्यक्ति के लिए जरुरी है।

   गाँधी जी ने इन तीन बिदुओं के आधार पर ही अपनी सर्वोदय कि विचार धरा को जन्म दिया। सर्वोदय के सिद्धांत में गाँधी ने बेन्थम और मिल के उपयोगितावाद के सिद्धांत अधिकतम लोगों का अधिकतम सुख की जगह हर व्यक्ति के सुख के विचार को महत्व दिया। गाँधी ने उन लोगों के विचारों का खंडन किया जो भारतीय समाज को एक औद्ध्योगिक समाज में बदलना चाहते थे ।

सर्वोदय का विकास केवल एक दार्शनिक अवधारणा के रूप में नहीं हुआ, बल्कि यह भारतीय स्वतंत्रता संघर्ष की धरातलीय प्रयोगशाला में निरंतर विकसित होता रहा। गांधी के रचनात्मक कार्यक्रम जैसे चरखा, खादी, ग्राम स्वराज्य, अस्पृश्यता-उन्मूलन, सत्याग्रह और सामुदायिक सहयोग सर्वोदय के प्राथमिक स्तंभ हैं। गांधी का विश्वास था कि राजनीतिक स्वतंत्रता तभी सार्थक है जब समाज नैतिक और आर्थिक रूप से भी स्वतंत्र हो। इसलिए सर्वोदय का विस्तार एक ऐसे समाज तक है जो अहिंसक, न्यायपूर्ण, समानतामूलक, सहकारी और विकेन्द्रीकृत हो। गांधी ने सत्ता और शासन के केंद्रीकरण को सामाजिक बुराइयों की जड़ माना और गाँव-आधारित स्वशासन की स्थापना को भारतीय लोकतंत्र का वास्तविक आधार बताया।

4.4 सर्वोदय की प्रमुख विशेषताएँ

- **अहिंसा**

सर्वोदय की विशेषताएँ मूलतः उस नैतिक-दार्शनिक संरचना को व्यक्त करती हैं जिसके माध्यम से गांधी और विनोबा एक ऐसे समाज की कल्पना करते हैं जहाँ मनुष्य की गरिमा सर्वोपरि है। सर्वोदय में अहिंसा केवल राजनीतिक संघर्ष का माध्यम नहीं, बल्कि व्यक्ति और समाज के स्तर पर एक व्यापक नैतिक अनुशासन है। यह अहिंसा मनुष्य, प्रकृति, अर्थव्यवस्था और सत्ता—सभी के प्रति मनुष्योचित व्यवहार की अपेक्षा करती है। सर्वोदय के अनुसार कोई भी आर्थिक या सामाजिक व्यवस्था यदि हिंसा, शोषण या वर्चस्व को जन्म देती है तो वह टिकाऊ नहीं हो सकती। इस संदर्भ में गांधी का सत्याग्रह एक नैतिक शक्ति-केन्द्र बनकर उभरता है, जिसमें सत्ता या कानून का भय नहीं, बल्कि मानवीय अंतःकरण और सामाजिक उत्तरदायित्व का दबाव परिवर्तन का माध्यम बनता है।

- **ट्रस्टीशिप**

ट्रस्टीशिप सर्वोदय की दूसरी महत्वपूर्ण विशेषता है, जिसके अंतर्गत संसाधनों का अधिकार व्यक्तिगत रहते हुए भी उनका उपयोग समाज के हित में होना चाहिए। गांधी के अनुसार संपत्ति का स्वामित्व नहीं, बल्कि संपत्ति का प्रबंधन मनुष्य के हाथ में होना चाहिए और वह प्रबंधन समाज के प्रति नैतिक उत्तरदायित्व से संचालित होना चाहिए। इससे न केवल संपत्ति-संचय पर नैतिक नियंत्रण संभव होता है, बल्कि सामाजिक न्याय और आर्थिक समानता भी स्वाभाविक रूप से विकसित होती है। मार्क्सवाद जहाँ आर्थिक समानता को वर्ग-संघर्ष और क्रांति से प्राप्त करना चाहता है, वहीं सर्वोदय इसे नैतिक जागरण और सहयोग से प्राप्त करता है।

- **श्रम का सम्मान**

सर्वोदय में श्रम की प्रतिष्ठा एक आवश्यक घटक है। गांधी मानते थे कि बौद्धिक और शारीरिक श्रम के बीच कृत्रिम भेद भारतीय समाज में असमानता और जातिगत विभाजन को बढ़ता है । सर्वोदय श्रम के सम्मान को पुनर्स्थापित करता है और यह प्रतिपादित करता है कि कोई भी श्रम छोटा या बड़ा नहीं होता। इसी से सहयोग आधारित ग्रामीण अर्थव्यवस्था, हस्तशिल्प, कृषि-आधारित उत्पादन और विकेन्द्रीकृत उद्योगों को प्रोत्साहन मिलता है।

- **विकेन्द्रीकरण**

विकेन्द्रीकरण सर्वोदय के राजनीतिक ढाँचे का केंद्रबिंदु है। सर्वोदय समाज में सत्ता का सर्वोच्च केंद्र गाँव और ग्रामसभा होते हैं। गांधी का ग्रामस्वराज्य जहाँ गाँव स्वशासित, आत्मनिर्भर और नैतिक अनुशासनयुक्त हो सर्वोदय की राजनीतिक आकांक्षा का मूर्त रूप है। यह व्यवस्था न केवल राजनीतिक भागीदारी को बढ़ाती है, बल्कि सामाजिक एकता, पारदर्शिता और नैतिकता को भी सुदृढ़ करती है। विकेन्द्रीकरण का यह सिद्धांत बाद में भारतीय पंचायती राज संविधान संशोधनों और ग्रामीण विकास योजनाओं का महत्वपूर्ण आधार बना।

- **आर्थिक समानता और सामाजिक न्याय**

सर्वोदय की एक और महत्वपूर्ण विशेषता आर्थिक समानता और सामाजिक न्याय की स्थापना है। सर्वोदय समानता को केवल आय और संपत्ति के वितरण तक सीमित नहीं करता, बल्कि सामाजिक संबंधों में सम्मान, सहभागिता और अवसर-समानता को मूलाधार मानता है। इस प्रकार, सर्वोदय एक ऐसी सामाजिक व्यवस्था की कल्पना करता है जिसमें सहयोग, साझेदारी और सामुदायिक नैतिकता आर्थिक निर्धारण के मूल कारक हों।

4.5 भूदान आन्दोलन : उत्पत्ति, विस्तार

भूदान आन्दोलन का उद्भव स्वतंत्रता के बाद के उस ऐतिहासिक संदर्भ में हुआ जब भारतीय ग्रामीण समाज भूमि असमानता, गरीबी, जमींदारी प्रथाओं और सामंती संरचना से जूझ रहा था। भूमि ही ग्रामीण भारत में जीविका, सामाजिक प्रतिष्ठा और राजनीतिक शक्ति का स्रोत थी। जिस समाज में कुछ वर्गों के पास विशाल भूमि-क्षेत्र था और बड़ी संख्या भूमि-विहीन श्रमिकों की थी, वहाँ सामाजिक समरसता और आर्थिक न्याय का स्थापित होना कठिन था। सरकारी भूमि सुधारों के अनेक प्रयास होने के बावजूद, उनका क्रियान्वयन धीमा था। इसी वास्तविकता में नैतिक-समाजवादी और अहिंसक दृष्टिकोण से भूमि समस्याओं का समाधान खोजने का प्रयास भूदान आन्दोलन के रूप में सामने आया।

1951 में विनोबा भावे की पोचमपल्ली (तेलंगाना) यात्रा के दौरान हुई एक घटना ने इस आन्दोलन को जन्म दिया। भूमिहीन हरिजनों ने जब विनोबा से भूमि प्राप्ति की विनती की, तब स्थानीय जमींदार रामचंद्र रेड्डी ने सौ एकड़ भूमि दान में दे दी। इस नैतिक पहल से विनोबा को विश्वास हुआ कि सामुदायिक चेतना और नैतिक कर्तव्य-बोध के माध्यम से भूमि का न्यायपूर्ण वितरण संभव है, और एक आंदोलन की शुरुआत हुई।

विनोबा भावे ने निरंतर अनेक वर्षों तक भारत के गाँवों और कस्बों की पदयात्रा की। इस यात्रा में उन्होंने लोगों से आग्रह किया कि वे भूमिहीनों के लिए स्वेच्छा से अपनी भूमि दान करें। यह आंदोलन केवल भूमि-संस्थान प्राप्त करने का प्रयास नहीं था, बल्कि यह ग्रामीण भारत के नैतिक पुनर्जागरण, सामुदायिक जागरूकता और सामाजिक भागीदारी की प्रक्रिया का निर्माण भी था। विनोबा की व्यक्तित्व-शक्ति, नैतिक प्रभाव और गांधीवादी विचारों ने इस आंदोलन को अभूतपूर्व जन-समर्थन दिलाया।

भूदान आन्दोलन की सबसे बड़ी सफलता यह रही कि दस वर्षों के भीतर लगभग पैंतालीस लाख एकड़ भूमि दान में मिली, जो विश्व इतिहास में भूमि-सुधार का एक अनूठा उदाहरण है। हालाँकि इस भूमि का एक बड़ा हिस्सा अनुपजाऊ या विवादित था, फिर भी भूदान ने ग्रामीण समाज में नैतिक चेतना बढ़ाने, सामाजिक तनावों को कम करने और भूमि सुधार की बहस को मुख्यधारा में लाने का काम किया। अनेक स्थानों पर भूदान के माध्यम से जातिगत संघर्ष कम हुए और सामाजिक समरसता मजबूत हुई।

यद्यपि इन उपलब्धियों के साथ आलोचनाएँ भी समानांतर रूप से सामने आईं। कुछ विद्वानों का मत है कि भूदान आन्दोलन ने भूमि-सुधार की संरचनात्मक समस्या को केवल नैतिक आग्रह से हल करने का प्रयास किया, जिससे उसकी दीर्घकालिक प्रभावशीलता सीमित रही। कुछ दान-पत्र कागज पर ही रह गए और भूमि का वास्तविक हस्तांतरण नहीं हुआ। कई जमींदारों ने कर-छूट या राजनीतिक लाभ के लिए भूमि दान की। इसके अतिरिक्त, यह भी आलोचना हुई कि भूदान ने सरकारी भूमि-सुधार कार्यक्रमों को कमजोर किया क्योंकि सरकारें इस नैतिक आंदोलन पर निर्भर हो गईं।

फिर भी भूदान भारतीय सामाजिक-राजनीतिक इतिहास में एक अनूठी घटना है, जिसने यह सिद्ध किया कि सामाजिक चेतना और नैतिक जिम्मेदारी के माध्यम से आर्थिक संसाधनों का पुनर्वितरण संभव है।

4.6 ग्रामदान आन्दोलन: सामूहिक स्वामित्व और ग्राम-स्वराज्य का प्रयोग

भूदान आन्दोलन की सफलता ने विनोबा भावे को ग्रामदान जैसे व्यापक और अधिक संरचनात्मक कार्यक्रम की ओर प्रेरित किया। ग्रामदान का विचार केवल भूमि-दान तक सीमित नहीं था, यह एक पूरे गाँव की सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक पुनर्रचना का कार्यक्रम था। ग्रामदान के अनुसार गाँव की सम्पूर्ण भूमि सामुदायिक स्वामित्व के अंतर्गत लाई जाती, जबकि भूमि उपयोग का अधिकार उन किसानों के पास रहता जो उसे जोतते-बोते थे। ग्रामसभा को गाँव की सर्वोच्च संस्था माना जाता था, जो निर्णय-प्रक्रिया, विवाद-समाधान और विकास-कार्य का संचालन करती थी।

ग्रामदान आन्दोलन का मुख्य उद्देश्य एक ऐसे ग्राम-समाज की स्थापना करना था जहाँ व्यक्तिगत स्वार्थ के स्थान पर सामुदायिक कल्याण प्राथमिकता हो। यह न केवल भूमि वितरण का कार्यक्रम था, बल्कि सामाजिक पुनर्गठन का भी प्रयास था। ग्रामदान की प्रक्रिया गाँव की सहमति, सामूहिक दान, ग्रामसभा की स्थापना और सामुदायिक कोष निर्माण जैसे चरणों से गुजरती थी। विनोबा भावे का विश्वास था कि ग्रामदान के माध्यम से भारत में एक नया सामाजिक अनुबंध (Social Contract) स्थापित होगा, जिसमें राज्य और ग्राम समाज के बीच की दूरी कम होगी और ग्राम-स्वराज्य का आदर्श साकार होगा।

ग्रामदान आन्दोलन के अंतर्गत हजारों गाँवों ने स्वयं को ग्रामदान घोषित किया और सामुदायिक स्वामित्व पर आधारित अनेक प्रयोग आरंभ हुए। कई स्थानों पर सामूहिक कृषि, पंचायत-आधारित विवाद निपटान, सामुदायिक निधि, सहकारी उत्पादन इकाइयों और शिक्षा के क्षेत्र में उल्लेखनीय पहल हुई। ग्रामदान ने सत्ता के विकेन्द्रीकरण, स्थानीय लोकतंत्र और सामुदायिक विकास की बहस को नए आयाम दिए।

हालाँकि आलोचनाओं के स्तर पर यह कहा गया कि ग्रामदान की कानूनी और प्रशासनिक संरचना पर्याप्त रूप से विकसित नहीं की जा सकी। कई ग्रामसभा निष्क्रिय हो गईं और सामुदायिक स्वामित्व की अवधारणा आधुनिक आर्थिक अपेक्षाओं और निजी स्वामित्व के अधिकार के साथ टकराती रही। राज्य सरकारों ने ग्रामदान को प्रोत्साहित करने में पर्याप्त रुचि नहीं दिखाई। इसके बावजूद ग्रामदान भारतीय सामाजिक-राजनीतिक प्रयोगों में एक विशिष्ट अध्याय है, जिसने सहभागितामूलक लोकतंत्र और नैतिक शासन व्यवस्था की दिशा में महत्त्वपूर्ण कदम उठाया।

4.7 सर्वोदय, भूदान और ग्रामदान का भारतीय लोकतंत्र तथा ग्रामीण विकास पर प्रभाव

सर्वोदय, भूदान और ग्रामदान आंदोलनों ने भारतीय लोकतंत्र और ग्रामीण विकास को गहराई से प्रभावित किया है। सर्वोदय ने नैतिक राजनीति, विकेन्द्रीकरण और सहभागितामूलक शासन के आधार पर भारतीय लोकतंत्र को वैचारिक दिशा दी। पंचायत राज, ग्रामसभा की भूमिका, सहकारी संस्थाओं का विस्तार और स्व-सहायता समूहों का उभार सर्वोदय की अवधारणाओं से प्रेरित है। भूदान और ग्रामदान ने भूमि सुधार की आवश्यकता और ग्रामीण समाज में समानता तथा न्याय की स्थापना को राष्ट्रीय बहस का हिस्सा बनाया।

इन आंदोलनों ने यह भी स्पष्ट किया कि सामाजिक परिवर्तन केवल सरकारी योजनाओं या कानूनी दंड से संभव नहीं, बल्कि नैतिक प्रेरणा और सामुदायिक सहभागिता की आवश्यकता होती है। सर्वोदय का नैतिक मानक भारतीय लोकतंत्र के लिए एक वैकल्पिक मानवीय आधार प्रदान करता है, जो सत्ता के केंद्रीकरण के स्थान पर नागरिकों की सक्रिय भागीदारी को प्राथमिकता देता है। भूदान और ग्रामदान ने जहाँ भूमि और संसाधनों के बोलबाले को चुनौती दी, वहीं उन्होंने भारतीय लोकतंत्र को अधिक समावेशी, न्यायपूर्ण और सामाजिक-सहानुभूतिपूर्ण बनाने में भी योगदान दिया।

आज के समय में सतत विकास, सामाजिक न्याय, सहकारी अर्थव्यवस्था, पर्यावरण-संरक्षण और स्थानीय शासन की प्रभावशीलता जैसे विषय सर्वोदय के मूल सिद्धांतों से गहराई से जुड़े हैं। इसलिए इन आंदोलनों की ऐतिहासिक भूमिका के साथ-साथ उनकी समकालीन प्रासंगिकता भी अत्यधिक महत्वपूर्ण है।

अभ्यास प्रश्न –

1. सर्वोदय शब्द का अर्थ क्या है?
2. 'Unto This Last' के लेखक कौन थे?
3. भूदान आन्दोलन किसने शुरू किया?
4. भूदान आन्दोलन की शुरुआत किस राज्य से हुई?
5. किसने कहा— "अन्त्योदय ही सर्वोदय का आधार है"?
6. ग्रामदान के अंतर्गत सर्वोच्च संस्था कौन है?

4.8 सारांश

सर्वोदय दर्शन भारतीय समाज के नैतिक, आध्यात्मिक और सामुदायिक मूल्यों पर आधारित एक व्यापक समाज-रचना का मॉडल है, जिसका लक्ष्य है सबका कल्याण, सबकी उन्नति और सबका उदय। इसकी वैचारिक प्रेरणा गांधी, जॉन रस्किन और भारतीय परंपराओं से मिलती है। सर्वोदय की मुख्य विशेषताओं में अहिंसा, सत्य, ट्रस्टीशिप, श्रम की प्रतिष्ठा, आर्थिक समानता और विकेन्द्रीकरण जैसे मूल तत्व हैं।

स्वतंत्रता के बाद भूमि असमानता और ग्रामीण गरीबी की समस्या के समाधान के लिए विनोबा भावे ने भूदान आन्दोलन शुरू किया, जिसने लाखों भूमिहीनों को जमीन दिलाई और भूमि के नैतिक पुनर्वितरण का अनूठा उदाहरण प्रस्तुत किया। भूदान से आगे बढ़कर ग्रामदान आन्दोलन ने सामुदायिक स्वामित्व, ग्राम-स्वराज्य और सहभागितामूलक विकास की दिशा में कार्य किया।

हालाँकि इन आंदोलनों को कई व्यावहारिक चुनौतियों का सामना करना पड़ा, फिर भी इनका भारतीय ग्रामीण विकास, भूमि सुधार, पंचायत राज और सामाजिक न्याय की नीतियों पर गहरा प्रभाव पड़ा। आज के समय में भी

सर्वोदय, भूदान और ग्रामदान का दर्शन—समानता, सहकारिता, सतत विकास और शान्तिपूर्ण सामाजिक परिवर्तन के लिए महत्वपूर्ण प्रेरणा स्रोत हैं।

4.9 शब्दावली

ट्रस्टीशिप- किसी अन्य के लाभ के लिए संपत्ति या जिम्मेदारी को संभालना

अन्त्योदय- 'समाज के अंतिम व्यक्ति का उत्थान'

विकेन्द्रीकरण- केंद्र से हटाना।

4.10 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1. सबका उदय 2. जॉन रस्किन 3. विनोबा भावे 4. पोचमपल्ली (तेलंगाना) 5. महात्मा गाँधी 6.ग्राम सभा .

4.11 संदर्भ ग्रंथ सूची

1. गांधी, महात्मा , हिन्द स्वराज्य, राजपाल एंड संस , दिल्ली , 2009 .
2. गांधी, महात्मा , सर्वोदय (जॉन रस्किन के ग्रंथ का अनुवाद), साहित्य सरोवर , 2019
3. राम गोपाल शर्मा, आचार्य विनोबा भावे प्रभात प्रकाशन, 2020
4. डॉ. रेखा कुमारी गुप्ता और डॉ. किसलय सिन्हा, सर्वोदय (महात्मा गाँधी, वीनोबा भावे, जयप्रकाश नारायण) पी. के. पब्लिसर, 2021.
5. रामचन्द्र गुहा , भारत गाँधी के बाद , पेंग्विन पब्लिकेशन, 2012

4.12 निबंधात्मक प्रश्न

1. सर्वोदय की अवधारणा की ऐतिहासिक एवं वैचारिक पृष्ठभूमि का वर्णन कीजिए।
2. सर्वोदय की प्रमुख विशेषताओं का विस्तृत विश्लेषण करते हुए बताइए कि यह आधुनिक समाज के लिए क्यों आवश्यक है।
3. भूदान आन्दोलन की उत्पत्ति, विकास, उपलब्धियाँ और सीमाओं का विस्तृत विवेचन कीजिए।
4. ग्रामदान आन्दोलन की प्रक्रिया, उसके सिद्धांतों और भारतीय ग्रामीण विकास पर उसके प्रभाव का विश्लेषण कीजिए।
5. सर्वोदय, भूदान और ग्रामदान आंदोलनों का भारतीय लोकतंत्र और भूमि सुधार नीतियों पर प्रभाव स्पष्ट कीजिए।

इकाई – 5 भारत में सामाजिक परिवर्तन एवं विकास के विभिन्न क्षेत्र

इकाई की रूपरेखा

5.1 परिचय

5.2 उद्देश्य

5.3 साामजिक परिवर्तन की अवधारणा

5.4 सामाजिक परिवर्तन की विशेषताएं

5.5 आधुनिकीकरण एवं विकास

5,6 सामाजिक एवं आर्थिक विकास

5.7 आर्थिक विकास के अवरोध

5.8 सार संक्षेप

5.9 अभ्यास प्रश्न

5.10 संदर्भ ग्रन्थ सूची

5.1 परिचय

सामाजिक परिवर्तन एक तटस्थ शब्द है जो समाज में आने वाले बदलाव को विभन्न कालों के सन्दर्भ में सूचित करता है। जब हम यह कहते हैं कि समाज में परिवर्तन रहा है तो इससे परिवर्तन कि दिशा, नियम सिद्वान्त या निरन्तरता प्रकट नहीं होती है। मैकाइवर एवं पेज, हरबर्ट स्पेन्सर, हाब हाउस एवं सोरोकिन आदि ने सामाजिक परिवर्त की विभिन्न प्रक्रियाओं एवं ढंगों का उल्लेख किया है और विभिन्न समाजशास्त्रीय अवधारणाओं को जन्म दिया है।

5.2 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात आप :-

1.साामजिक परिवर्तन की अवधारणा को समझ सकेगें।

2. सामाजिक परिवर्तन की विशेषताएं को लिख सकेगें।

3.आधुनिकीकरण एवं विकास को जान सकेगें।

4.सामाजिक एवं आर्थिक विकास की व्याख्या कर सकेगें।

5.आर्थिक विकास के अवरोधो की व्याख्या कर सकेगें।

5.3 साामजिक परिवर्तन की अवधारणा

सामान्यतः सामाजिक परिवर्तन का तात्पर्य समाज में घटित होने वाले परिवर्तनों से है।

मैकाइवर एवं पेज के अनुसार, "समाजशास्त्री होने के नाते हमारी विशेष रूचि प्रत्यख रूप से सामाजिक सम्बन्धों में है। केवल इन सामाजिक सम्बन्धों में होने वाले परिवर्तनों को हम सामाजिक परिवर्तन कहते है।" (मैकाइवर एवं पेज, सोसाइटी पृ० 511)

इस प्रकार मैकाइवर एवं पेज सामाजिक परिवर्तन की व्याख्या शुद्ध दृष्टिकोण से करते हैं और सामाजिक सम्बन्धों में होने वाले परिवर्तनों को सामाजिक परिवर्तन की संज्ञा देते हैं. क्योकि समाज का ताना-बाना सामाजिक सम्बन्धों से ही तो बुना हुआ है।

किंग्सले डेविस ने भी सामाजिक परिवर्तन की व्याख्या पूर्णतः समाजशास्त्रीय ढंग से की है। वे लिखते हैं "सामाजिक परिवर्तन से हम केवल उन्हीं परिवर्तनों को समझते हैं जो सामाजिक संगठन अर्थात समाज के ढांचे और प्रकार्यों में घटित होते है।" (किंग्सले डेविस, ह्यूमन सोसायटी पृ० 622) जॉनसन के अनुसार" अपने मूल अर्थ में सामाजिक परिवर्तन का अर्थ सामाजिक ढांचे में परिवर्तन है।" (जॉनसन, समाजशास्त्री, पृ० 796)

जॉनसन ने सामाजिक परिवर्तन को और अधिक स्पष्ट करते हुए सामाजिक मूल्यों, संस्थाओं और पुरस्कारों, व्यक्तियों तथा उनकी अभिवृत्तियों एवं योग्यताओं में हाने वाले परिवर्तन को भी सामाजिक परिवर्तन कहा गया है।

समाजशास्त्री जान्स ने सामाजिक परिवर्तन के और अधिक स्पष्ट करते हुए लिखा है "सामाजिक परिवर्तन वह शब्द है जो सामाजिक प्रक्रियाओं, सामाजिक प्रतिमानों, सामाजिक अन्तःक्रियाओं अथवा सामाजिक संगठन के किसी भाग में घटित होने वाले हेर-फेर या संशोधन के लिए प्रयुक्त किया जाता है।" (जोन्स, बेसिक सोशियोलाजिकल प्रिंसिपल्स, पृ० 26)

मैरिल और एलिड्रज का मत है कि "जब मानव व्यवहार बदलाव की प्रक्रिया में होता है तब हम उसी के दूसरे रूप में इस प्रकार कहते हैं कि सामाजिक परिवर्तन हो रहा है।" (मैरिल एवं एल्ड्रिज, कल्चर सोसायटी पृ० 512-513)

अतः स्पष्ट है कि सामाजिक परिवर्तन उन परिवर्तनों को कहते है जो मानवीय सम्बन्धों, व्यवहारों, संस्थओं, प्रथाओं, परिस्थितियों, कार्य विधियों, मूल्यों, सामाजिक संरचनाओं एवं प्रकार्यों में होते हैं।

5.4 सामाजिक परिवर्तन की विशेषताएं

समाजिक परिवर्तन यद्यपि एक सर्वव्यापी नियम है लेकिन स्थिर और गतिशील समाजों में इसकी विशेषतायें कुछ भिन्न-भिन्न रूपों में देखने को मिलती है स्थिर समाज में अनेक पीढ़ियों तक पद और कार्यों में अधिक परिवर्तन नहीं होता, जबकि गतिशील समाजों में व्यक्ति के पदों, मनोवृत्तियों व्यवसाय शिक्षा, सांस्कृतिक नियमों और व्यवहारों में सदैव परिवर्तन होता रहता है। इस जटिलता के मध्य प्रस्तुत विवेचन में हम सामाजिक परिवर्तन की प्रकृति से सम्बन्धित कुछ विशेषताओं का उल्लेख करेंगे-

सामाजिक परिवर्तन की प्रकृति सामाजिक होती है। क्योंकि सामाजिक परिवर्तन का सम्बन्ध किसी व्यक्ति या विशेष समूह, विशेष संस्था, जाति एवं प्रजाति तथा समिति में होने वाले परिवर्तन से नहीं है अपितु सम्पूर्ण समुदाय एवं समाज में होने वाले परिवर्तनों में होने वाले परिवर्तन से नहीं है अपितु सम्पूर्ण समुदाय एवं समाज में होने वाले परिवर्तनों से है।

सामाजिक परिवर्तन एक सार्वभौमिक घटना है, क्योंकि यह सभी समाजों एवं सभी कालों में रहता है परिवर्तन की सार्वभौमिकता को प्रकट करते हुए बीरस्टीड कहते है, "कोई भी दो समाज पूर्णतः समान नहीं हैं उनके इतिहास एवं संस्कृति में इतनी भिन्नता पायी जाती है कि किसी को भी दूसरे का प्रतिरूप नहीं कह सकते।" (बीरस्टीड, दि सोशल आर्डर, पृ० 597) में भी परिवर्तन होना निश्चित हो जाता है। मानव बदली हुई परिस्थिति में अनुकूल करने के लिए कभी-कभी तो परिवर्तन का इंतजार तक करता है।

सामाजिक परिवर्तन की गति असमान तथा तुलनात्मक है। उदहरणार्थ आदिम एवं पूर्वी देशों के समाजों की तुलना में आधुनिक एवं पश्चिमी समाजों में परिवर्तन तीव्र गति से होता है। यही नहीं बल्कि एक ही समाज के विभिन्न अंगों में भी परिवर्तन की गति में असमानता पायी जाती है। भारत में ग्रामीण समाजों की तुलना में नगरों में परिवर्तन शीघ्र होते है।

सामाजिक परिवर्तन एक जटिल तथ्य है क्योंकि सामाजिक परिवर्तन का सम्बन्ध गुणात्मक परिवर्तनों से हैं जिनकी माप-तौल सम्भव नहीं हे जैसे हम किसी भौतिक वस्तु अथवा भौतिक संस्कृति में होने वाले परिवर्तनों को मीटर, गज या किलोग्राम की भाषा में नहीं माप सकते। अतः सरलता से ऐसे परिवर्तन का रूप भी समझ में नहीं आता।

सामाजिक परिवर्तन की भविष्यवाणी नहीं की जा सकती, क्योंकि इसके बारे में निश्चित रूप् से पूर्वानुमान लगाना कठिन होता है। यह कहना कठिन है कि औद्योगिकरण और नगरीकरण से भारत में जाति प्राथा, संयुक्त परिवार प्रणाली एवं विवाह में कौन-कौन से परिवर्तन आयेंगे। यह बताना भी कठिन है कि आगे चलकर लोगों के विचारों, विश्वासों मूल्यों आदर्शी आदि में किस प्रकार के परिवर्तन आयेंगे। अतः इसके बारे में निश्चितता से कुछ भी नहीं कहा जा सकता।

5.5 आधुनिकीकरण एवं विकास

आधुनिकीकरण की प्रक्रिया का अनुसरण सामान्यतः आर्थिक विकास के सन्दर्भ में किया जाता है। आर्थिक विकास की दृष्टि से आज संसार विकसित एवं अल्प विकसित देशों में बंटा हुआ है। यद्यपि इन राष्ट्रों में विकास के स्तर की दृष्टि से परस्पर बहुत अधिक अन्तर पाये जाते हैं। संयुक्त राज्य अमेरिका जापान, ब्रिटेन, कनाडा, रूस आदि कुछ ऐसे राष्ट्र है जिन्हें विकसित राष्ट्रों की श्रेणी में रखा जाता है और जिनमें प्रति व्यक्ति आय का स्तर काफी ऊँचा है और इस स्तर को ऊंचा रखने में आधुनिकीकरण की भूमिका उल्लेखनीय है। लेकिन आर्थिक विकास आधुनिकीकरण का

परिणाम नहीं है। आधुनिकीकरण की प्रक्रिया के फलस्वरूप समाज एवं संस्कृति, राजनीति एवं प्रशासन जैसे महत्वपूर्ण क्षेत्रों में भी विभिन्न प्रकार के परिवर्तन/विकास हुये हैं जिनका उल्लेख निम्न प्रकार से है।

- **आधुनिकीकरण एवं प्रोद्योगिकी विकास**

आधुनिकीकरण का सर्वप्रथम परिणाम प्रोद्योगिक विकास के रूप में देखने को मिलता है। जहाँ तक भारत का प्रश्न है यह सच है कि प्रोद्योगिक विकास की प्रकिया ब्रिटिश शासनके दौरान ही आरम्भ हो गयी थी लेकिन स्वतन्त्रा के बाद आर्थिक नियोजन के द्वारा इसमें बहुत अधिक वृद्धि हुई। आज भारत में सूती कपडों, रासायनिक खादों, सीमेंट, जूट, भारी मशीनों बिजली के उपकरणों, दवाइयों तथा पेट्रोलियम पदार्थों के उत्पादन के बड़े-बड़े कारखाने स्थापित हो चुके हैं। अणु शक्ति के क्षेत्र में भी भारत एक आत्मनिर्भर देश बन चुका है। प्रोद्योगिकी विकास के साथ विभिन्न प्रकार कि व्यवसायों में भी इतनी वृद्धि हुई है कि हमारे समाज में अनेक संरचनात्मक परिवर्तन होने लगे। औद्योगिक विकास ने नगरीकरण की प्रकिया में भी वृद्धि की। आधुनिकीकरण का एक अन्य प्रभाव गतिशीलता में वृद्धि होना भी है। इसी के फलस्वरूप नगरीय जनसंख्या के प्रतिशत में लगातार वृद्धि हो रही है।

- **आधुनिकीकरण एवं जीवन स्तर में विकास**

भारत में सुधारों तथा विभिन्न विकास कार्यक्रमों के फलस्वरूप जीवन के सभी पक्षों में आधुनिकीकरण को प्रोत्साहन मिला। ग्रामीण क्षेत्रों में कृषि उत्पादन बढ़ने से प्रति व्यक्ति आय में वृद्धि हुई। नगरीय क्षेत्रों में नई प्रौद्योगिकी पर आधारित वस्तुओं का अधिकाधिक प्रयोग किया जाने लगा। कुछ समय पहले तक समाज के जो दुर्बल वर्ग जीवन की अनिवार्य सुविधायें पाने से भी वंचित थे, उनमें भी चीनी और स्टील के बर्तनों का उपयोग बढ़ने लगा है। उसकी वेशभूषा तथा खान-पान के स्तर में व्यापक सुधार हुआ।

मोटर साइकिल, टेलीविजन, घडी, ट्रांजिस्टर प्रेशर कुकर, गैस के चूल्हों और सौन्दर्य प्रसाधनों का उपयोग समाज के दुर्बल वर्गों में सामान्य होता जा रहा है। ग्रामों में भी विवाह और दूसरे आयोजनों के समय साज-सज्जा को विशेष महत्व मिलने लगा है। जीवन स्तर में होने वाला यह सुधार उन मनोवृत्तियों का परिणाम है जो आधुनिकता की उपज है।

- **आधुनिकीकरण एवं कृषि में विकास**

आधुनिकीकरण का एक स्पष्ट प्रभाव गांवों में कृषि की नई प्रविधियों का बढ़ता हुआ उपयोग है। अब अधिकांश ग्रामीण ट्रैक्टर, काल्टीवेटर, पम्पिंग सेटों, थ्रेशरो तथा स्प्रेयर आदि का प्रयोग करके कृषि उत्पादन को बढ़ाने में लगे

हुये हैं। अधिकांश किसानों द्वारा उन्नत बीजों, कीटनाशक दवाओं और रासायनिक खादों का प्रयोग किया जाता है। खेती के साथ पशुओं की नस्ल को सुधारने में भी ग्रामीणों की जागरूकता तेजी से बढ़ रही है। ग्रामीण, कृषकजन अधिकारियों से सम्पर्क करके ऐसी सभी जानकारियों लेने का प्रयत्न करते हैं, जिनकी सहायता से कृषि उत्पादन में वृद्धि हो सके तथा उन्हें अपनी उपज का अच्छा मूल्य प्राप्त हो सके। कृषि के आधुनिकीकरण से गाँव और नगर के लोगों की दूरी कम हुई है तथा ग्रामीणों का विस्तृत जगत से सम्बन्ध बढने लगा।

- **आधुनिकीकरण एवं समाज सुधार सम्बन्धी विकास**

आधुनिकीकरण का सामाजिक संरचना पर सबसे स्पष्ट प्रभाव समाज सुधार की प्रकिया के रूप में देखने को मिलता है। आधुनिकीकरण से उत्पन्न होने वाली नई मनोवृत्तियों के परिणामस्वरूप उन अन्धविश्वासों और कुरीतियों का प्रभाव तेजी से कम होने लगा जो सैकड़ों वर्षों से भारतीय सामाजिक जीवन को विघटित कर रही थी। समाज में जैसे-जैसे पश्चिमी मूल्यों और शिक्षा का प्रभाव बढ़ा, वैसे वैसे बाल विवाह, अस्पृश्यता, दास प्रथा, विधवाओं का शोषण, बहुपत्नी विवाह, पर्दा प्रथा, स्त्री पुरुषों की असमानता तथा दहेज प्रथा का विरोध बढ़ने लगता है। आज अन्तर्जातीय विवाहों में होने वाली वृद्धि आधुनिकीकरण का ही परिणाम है। सच तो यह है कि आधुनिकता के प्रभाव से भारत में एक ऐसी सामाजिकता चेतना उत्पन्न हुई जो समानता, सामाजिक न्याय और स्वतन्त्रा के मूल्यों पर आधारित है।

- **आधुनिकीकरण एवं अन्तर्जातीय सम्बन्धों में विकास**

भारत में एक लम्बे समय तक विभिन्न जातियों एक दूसरे से अलग थलग रहीं जिसके फलस्वरूप समाज में उपयोगी विकास कार्य / परिवर्तन नहीं हो सके। स्वतन्त्रा के बाद आधुनिकीकरण में वृद्धि होने से जाति के नियम तेजी से कमजोर पडने लगे। परिवहन के साधनों का विकास होने से सभी जातियों और क्षेत्रों के लोगों को एक दूसरे के सम्पर्क में आने का अवसर मिला। प्रोद्योगिकी विकास ने सभी जातियों और क्षेत्रों के लोगों को व्यवस्था के नये अवसर प्रदान किये। शिक्षा से उत्पन्न होने वाली चेतना ने यह स्पष्ट कर दिया कि जन्म के आधार पर कोई भी व्यक्ति ऊँचा अथवा नीचा नहीं होता। इसी का परिणाम है कि आज व्यवसाय का चुनाव करते समय व्यक्ति जाति के नियमों को ध्यान में न रखकर अपनी कुशलता और सामाजिक प्रतिष्ठा को ध्यान में रखता है। गांवों में जजमानी व्यवस्था से सम्बन्धित अधिकांश जातियां अब अपने परम्परागत पेशों को छोड रही है। नाई, धोबी, धानुक, कुम्हार तथा माली जैसी जातियां नगरों में अपने व्यवसाय को आधुनिक रूप् देकर अपने सामाजिक स्तर में सुधार लाना अच्छा समझने लगी है। विभिन्न जातियों के बीच खानपान की दूरी लगभग पूरी तरह समाप्त हो चुकी है। विभिन्न जातियों के बीच पारस्परिक सम्पर्क तथा सामाजिक आदान प्रदान में वृद्धि हो रही है। ये सभी परिवर्तन, भारतीय सामाजिक व्यवस्था की अधिसंरचना में होने वाले परिवर्तनों को स्पष्ट करते हैं।

- **आधुनिकीकरण एवं शिक्षा के क्षेत्र में विकास**

आधुनिकीकरण के माध्यम से शिक्षा के क्षेत्र में भी विकास सम्बन्धी अनेक परिवर्तन हुये है। आज अधिकांश माता-पिता आर्थिक कठिनाईयों के बाद भी अपने बच्चों को अच्छी से अच्छी शिक्षा दिलाने के पक्ष में हैं। इसी के फलस्वरूप शिक्षित लोगों के प्रतिशत तथा शिक्षा के स्तर में व्यापक सुधार हो सका। आज भारत में एक ऐसी शिक्षा का प्रसार हो रहा है। जिसका उददेश्य कार्यालयों के लिए क्लर्क पैदा करना नहीं बल्कि ज्ञान और विज्ञान के विभिन्न क्षेत्रों में नई पीढी की योग्यता और प्रतिभा में अधिकाधिक वृद्धि करना है। ग्रामीण और जनजातीय समुदायों में भी आज अधिकांश व्यक्ति अपने बच्चों को शिक्षा दिलाने के पक्ष में हैं। सायंकालीन प्रौढ शिक्षा में ग्रामीणों का सहभाग लगातार बढता जा रहा है। वास्तविकता यह है कि शिक्षा आधुनिकीकरण का न केवल परिणाम है, बल्कि इससे स्वयं आधुनिकता में गुणात्मक रूप से वृद्धि हो रही है।

- **आधुनिकीकरण एवं आर्थिक विकास**

आधुनिकीकरण की प्रकिया सामान्य रूप से आर्थिक विकास के अर्थ में समझी जाती हैं. आर्थिक विकास और आधुनिकीकरण की अवधारणायें परस्पर सम्बद्व है। उदाहरण के लिये एक सजग जन समुदाय शिक्षा को अच्छे जीवन हेतु आवश्यक मान सकता है किन्तु स्कूलों, पुस्तकों एवं अध्यापकों के लिये धन की आवश्यकता है। अतः हमें भोजन या फैक्ट्रियों में साधन स्रोतों को इस ओर मोडना होगा। इसी प्रकार सामाजिक न्याय के लिये भूमि सुधार या जोत की सीमाबन्दी आवश्यक हो सकती है, किन्तु इसकी सफलता तभी सम्भव है जबकि नई पूंजी, विकसित तकनीकें, परिवर्तित विपणन प्रक्रियायें व - स्वतन्त्र किसानों को उपलब्ध करायी जायें। इसलिये यह उचित हैं कि आधुनिकीकरण को आर्थिक उन्नति के रूप में समझा जाता है। यह आर्थिक उन्नति मुख्यतः औद्योगीकरण के द्वारा होती है। औद्योगीकरण में संगठन, यातायात, संचार आदि के माध्यम से उत्पादन में वृद्धि के प्रयास शामिल है।

आधुनिकीकरण की अवधारणा मुख्य रूप से जिस तीसरी दुनिया के लिये प्रयुक्त की जाती है, वहाँ के लोग आर्थिक अभाव और परेशानी का जीवन व्यापत करते हैं। तीसरी दुनिया के अधिकांश लोग रोटी और स्वतन्त्रता के लिये संघर्षरत हैं। पाश्चात्य अध्ययन-कर्ताओं ने तीसरी दुनिया में अभाव की स्थिति का वर्णन करते हुए लिखा है कि भारत में गरीब, अछूत लोग स्वयं और अपने परिवार के खाने के लिये गाय के गोबर में से अनपचे अन्न के दाने निकालते हैं। इसी प्रकार लैटिन अमेरिकी बच्चे हजारों की संख्या में पानी के बिना मर जाते हैं। भारत के अनेक गांवों में भी लोग पीने के पानी के लिये तरसते हैं। विशेषतः राजस्थान के रेगिस्तानी भागों के लोग पीने के पानी के लिये अपनी इज्जत और ईमान तक दांव पर लगा देते हैं। इस प्रकार दुनिया के करोडों लोग प्रतिपल भूख और बीमारी से त्रस्त हैं। विकसित और विकासशील देशों के विभिन्न तुलनात्मक अध्ययन जो आंकडें प्रस्तुत करते हैं वे चौंकाने वाले तथा भयानक हैं। इन असमानताओं के कारण विश्व के लोग उस परिवर्तन के लिये अभिप्रेरित हो रहे हैं, जिसे आधुनिकीकरण कहा जाता है। इसका अर्थ यह नहीं है कि दुनिया के लोग अमेरिकी प्रकार की या पश्चिमी ढंग की समाज व्यवस्था अथवा आर्थिक संरचना के अभिलाषी हैं। उनकी खोज तो मुख्यतः रोटी और स्वतन्त्रा की खोज है।

स्पष्ट है कि आधुनिकीकरण के कलेवर में समाहित मुख्य विषय आर्थिक विकास है जिसे आज औद्योगिकरण के रूप में जाना जाता है।'

5.6 सामाजिक एवं आर्थिक विकास

सामाजिक परिवर्तन से तात्पर्य सामाजिक सम्बन्धों संस्थाओं जनरीतियों, दशाओं में होने वाले परिवर्तन से है। सामाजिक परिवर्तन स्वाभाविक और अवश्यम्भावी है समाज की आधारभूत इकाई व्यक्ति होता है जिसका स्वभाव परिवर्तनशील होता है। वह नयापन चाहता है। बोझिल जीवन से पार पाने हेतु भी उसे परिवर्तन का सहारा लेना पड़ता। समरूपता में विविधता की ओर उसका झुकाव होता है। इसीलिये उसे सामन्जस्य स्थापना की आवश्यकता पड़ती है। ग्रीन ने इसीलिये कहा था "परिवर्तन से सामंजस्य स्थापित करना ही हमारे जीवन का एक तरीका बन चुका है। परिवर्तन की गति तीव्र हो या धीमी बिना परिवर्तन के न विकास सम्भव है और न वृद्धि। लुम्ले ने कहा था कई कारणों से परिवर्तन अवश्यम्भावी रहा है और यह है भी । सामाजिक परिवर्तन परिवर्तन का भाग है और सभी प्रकार के परिवर्तनों को सामाजिक परिवर्तन के अन्तर्गत नहीं आता परन्तु व्यक्ति, समाज समूह, राष्ट्र भावना पर उनसे पड़ने वाले प्रभाव, संस्थाओं पर आने वाले परिवर्तन का प्रभाव मानवजीवन, पर्यावरण और सम्बन्धों पर पड़ने वाले प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष प्रभाव सामाजिक परिवर्तन अवश्य कहलायेगा। गिलिन और गिलि के अनुसार "सामाजिक परिवर्तन जीवन पद्धतियों एवं स्वीकृत तरीकों में होने वाले वैभिन्य को कहते

हैं। जो भले ही भौगोलिक दशाओं में परिवर्तन से हों अथवा सांस्कृतिक उपकरणों का जनसंख्या की संरचना एवं मनोधारणाओं में परिवर्तन के कारणों से हो या प्रसार से हो उस समूह में लाये गये है अथवा उसी समूह ने उन्हें आविष्कृत किया हो।"

- **सामाजिक परिर्वतन की विशेषताएं**

परिवर्तन की प्रकृति सामाजिक होती है न कि वैयत्कि/अर्थात् एक ईकाई में होने वाले परिवर्तन को सम्पूर्ण समाज में होने वाला परिवर्तन नहीं माना जा सकता है। सामाजिक परिवर्तन सार्वभौमिक होता है अर्थात् यह सर्वत्र व्यापक होता है। सामाजिक परिवर्तन अवश्यमभावी एवं स्वाभाविक हैं अर्थात् इसकी प्रकृति अनिवार्यता की है।

सामाजिक परिवर्तन की गति प्रत्येक सामाज में समान प्रकार की नहीं होती। अर्थात् विकसित एवं अविकसित देशों में सामाजिक परिवर्तन की गति समान प्रकार की नहीं होती है। सामाजिक परिवर्तन के विषय में भविष्यवाणी करना सम्भव नहीं है। अनुमान अवश्य लगाया जा सकता है जो सही या गलत हो सकता है। सामाजिक परिवर्तन अमूर्त है क्योंकि समाज और सामाजिक सम्बन्ध दोनों अमूर्त हैं। सामाजिक परिवर्तन तुलनात्मक एवं सापेक्ष होता हैं। क्योंकि सामाजिक अवधारणायें अन्तिम नहीं हो सकती हैं केवल सापेक्ष एवं तुलनात्मक ही हो सकती है। सामाजिक परिवर्तन के अनेक प्रतिमान होते हैं जैसे एक रेखीय चक्रिय आदि।

- **सामाजिक परिवर्तन एवं आर्थिक विकास के कार्यकारण**

देश में नियोजित सामाजिक परिवर्तन को राजाराम मोहन राय द्वारा स्थापित ब्रहम समाज' के समय से ले सकते है। राजाराम मोहन राय ने सर्वप्रथम सतीप्रथा एवं अन्य सामाजिक कुरीतियों के खिलाफ नियोजित व्यवस्थित एवं संगठित परिवर्तन लाने का प्रयास किया। 50 वर्षों बाद बम्बई में महादेव गोविन्द रानाडे ने प्रार्थना समाज की स्थापना की। राजाराम मोहन राय ने तत्कालीन अंग्रेजी सरकार पर प्रभाव डालकर हिन्दू कुरीतियों से विरूद्ध कई कानून पास कराये जिनमें से 'सती निरोध अधिनियम' प्रमुख रहा। 1875 में स्वामी दयानन्द सरस्वती ने 'आर्य समाज' की स्थापना की। बेमेल विवाह, बाल-विवाह, दहेज प्रथा पर श्री स्वामी जी ने तीक्ष्ण प्रहार किये। सती प्रथा समाप्त कराने एवं विधवाओं के पुनः विवाह कराने हेतु महर्षि के प्रयत्न सफल रहे। स्वभाषा', 'स्वराष्ट्र' एवं स्वदेशी' की धारणायें देकर उन्होंने अनेकों पाखण्ड एवं धर्म परिवर्तन को रोका। शुद्धि आन्दोलन चलाया परिवर्तित धर्म वालों को पुनः धर्म में लौट आने का अवसर प्रदान किया। 1998 में विवेकानन्द ने ‘राम कृष्ण मिशन' की स्थापना की और तत्पश्चात् आये महात्मागाँधी जिन्होंने सामाजिक-राजनैतिक धरातल अपना छाप छोड़कर देश को 15 अगस्त 1957 में स्वतंत्रता दिलायी। गांधी के ही अहिंसात्मक एवं रामराज्य तथा सर्वोदय के सिद्धान्त को आधार मान कर चले सर्वोदयी नेता आचार्य विनोबाभावे जिन्होंने भूमिहीन किसानों श्रमिकों में हजारों एकड़ भूमि बँटवाकर भूमिदान एवं ग्रामदान के आदर्श को आगे बढ़ाया। दूसरे सर्वोदयी नेता श्री जय प्रकाश नारायण ने सैकड़ों डाकुओं को सामूहिक आत्म समर्पण करवाया और उस समस्या का हल ढूंढा जिससे कई राज्य सरकारें बीसों वर्षों से कराह रही थीं और हल नहीं ढूंढ पा रही थीं।

वर्ष 1950 में राष्ट्रीय स्तर पर एक योजना आयोग का गठन हुआ और 1952 में प्रथम पंचवर्षीय योजना के रूप में विकास का एक नियोजित कार्यक्रम लोकसभा के सम्मुख प्रस्तुत किया गया जो आगे के वर्षों में देश की आर्थिक, राजनैतिक, धार्मिक सामाजिक एवं जनसंख्या सम्बन्धी समस्याओं के निराकरण एंव देश के आर्थिक विकास को प्रशस्त करने में लग गया। भारत में पंचवर्षीय योजनाओं के माध्यम से जो नियोजित परिवर्तन लक्षित किया गया उसके प्रमुख उद्देश्य हैः

1. तीव्र आर्थिक एवं भौतिक विकास,

2. लोगों के रहन-सहन के स्तर को उठाना,

3. निम्नवर्गों अनुसूचित जातियों, जनजातियों अन्य पिछड़े वर्गों, अल्पसंख्यकों, महिलाओं, शिशुओं, आदि के लिये उत्थान के विशेष अवसर उपलब्ध कराना,

4. गरीबी रेखा से नीचे के आर्थिक रूप से कमजोर आय वर्गों के लोगों, बेरोजगार युवकों के लिए आय के स्रोत उत्पन्न करना, बेरोजगारी दूर करना आदि।

5. सामाजिक संरचना में आधारभूत परिवर्तन लाना।

6. वित्तीय नीति एवं मूल्यनीति का निर्धारण।

5.7 आर्थिक विकास के अवरोध

- निर्धनता, बेरोजगारी एवं कृषि पर आधारित अर्थ व्यवस्था :

देश की निर्धनता अत्यधिक कष्टकारी। प्रतिव्यक्ति आय निम्नतम, अशिक्षित जनसंख्या का आर्थिक स्तर न्यूनतम, बेरोजगारी दिनप्रतिदिन बढ़ती जा रही है कृषि पर आधारित अर्थ व्यवस्था का स्तर शोचनीय है।

- स्पष्ट वैचारिकी का अभाव :

कभी देश की अर्थव्यवस्था का आधार, समाजवादी प्रतिमान, कभी मिश्रित अर्थव्यवस्था, कभी उदारवादी और वैश्वीकरण की नीति का समर्थन। अतः आज आवश्यकता है स्पष्ट वैचारिकी का जिसके माध्यम देश का समुचित आर्थिक विकास सम्भव हो सके।

- जनसंख्या विस्फोट पर नियंत्रण का अभाव :

आज भारत की जनसंख्या विस्फोटक स्तर पर पहुँच चुकी है। जनसंख्याओं के सामान्य आवश्यकताओं की पूर्ति हेतु उपलब्ध संसाधन एवं संरचना सक्षम नहीं दिखाई देती है। जन जागरण ही जनसंख्या विस्फोट को नियंत्रित करने में सक्षम है।

- जन-सहभागिता. का अभाव :

विकास कार्यक्रमों में उनकी सहभागिता आवश्यक है जिनका विकास लक्ष्य है। विकास कार्यक्रमों के क्रियान्वयन में जन-सहभागिता सुनिश्चित कराना नितान्त आवश्यक है। जन-सामान्य की समस्यायें प्रशासन उनके सहयोग से ही हल करने में सफल हो सकेगी।

- अशिक्षा की वृद्धि

चिन्तक अशिक्षा को अनेक गम्भीर सामाजिक समस्याओं की जननी माना जाता है। अशिक्षा से पार पाये बिना देश के विकास की ओर अग्रसर होने में देश सफल होना तो दूर की बात है अपने कार्यक्रमों को उन्हें बोधगम्य कराने तक में भी सफल नहीं हो सकेगी।

- राष्ट्रीय एकीकरण की भावना की गिरावट का स्तर :

राष्ट्रीय एकीकरण की भावना का विकास किये बिना देश क्षेत्रियता के दोषों पर नियंत्रण रखने में सक्षम नहीं हो सकेगा। अतः आवश्यकता है कि सम्पूर्ण देशवासियों में राष्ट्र के प्रति अपने दायित्वों के प्रति और अधिक सक्रिय बनाया जाये और उनमें राष्ट्रीय प्रेम की ज्योति जलायी जाये।

- क्षेत्रीय असमानता की स्थिति :

सम्पूर्ण देश क्षेत्रीय असमानता से तड़प रहा है किसी क्षेत्र में राजनैतिक कारणों से विकास चरम सीमा पर है तो किसी क्षेत्र में विकास पहुंचा ही नहीं के बराबर। भौगोलिक परिस्थितियों के नाते भी कई क्षेत्र अत्यन्त पिछड़े हुए हैं जो कई क्षेत्र औद्योगिक रूप से पिछड़े हुए है और कई क्षेत्रों में पूंजी की कमी है और कई क्षेत्रों में पूंजीनिवेशकों की। किसी क्षेत्र में कच्ची सामग्री और प्राकृतिक सम्पदा की भारमार तो है परन्तु संसाधनों के अभाव में उनका दोहन सम्भव नहीं हो पाता।

- जातिवाद, भाषावाद, प्रान्तवाद, धर्म के आधार जनसंख्या का विभाजित होना :

विकास के मार्ग में विशेषकर आर्थिक विकास के मार्ग में जातिवाद, धर्म, भाषा प्रान्त आदि तत्व चट्टान सरीखे बाधक बन कर देश के विकास और विशेषकर आर्थिक विकास के मार्ग में अवरोध उत्पन्न करने में समय समय पर अप्रत्यासित भूमिकायें उपस्थित कर देते है जिनसे पार पाना तो दूर अन्य गुणित बाधायें उत्पन्न हो जाती है। उदाहरण के लिए सम्बन्धित तत्वों द्वारा समय-समय पर आन्दोलनों के दौरान भारी राष्ट्रीय सम्पत्ति को नष्ट करना आर्थिक विकास में अवरोध नहीं है तो और क्या है?

- भ्रष्टाचार का असीमित रूप :

देश के इस प्रकार के आचरण का आने वाली भावी पीढियों पर क्या प्रभाव होगा पर विचार मात्र से ग्लानि ही हो सकती है। सरकार, प्रशासन की अक्षमता को दर्शाने वाली आये दिन की घटनायें भ्रष्टाचार के असीमित रूप को प्रकट करती रही है। आये दिन के घोटाले, राजनैतिक, उठापटक, क्षेत्रीय असंतोष की विभिषिका, धार्मिक उन्माद, जातिय संरक्षण, हिंसा, घोर अपराध, बैंक डकैतिया, रोड होल्डपास की घटनायें, क्षेत्रीय तनाव की दशायें राष्ट्रीय क्षति को बढ़ाती है और देश का स्थान अन्य देशों से सहभागिता निभाने में पिछड़े सहायक हो रही है। आवश्यकता है आज देश को नैतिक और राष्ट्रीय मूल्यों को उजागर करने की ताकि देश का विकास सम्भव हो सके।

नवीन सूचना तकनीकी का दुरूपयोग नवीन सूचना तकनीकि का उपयोग संचार साधनों को और अधिक प्रभावी बनाने के लिए था जैसा अन्य विकसित देशों में होता है परन्तु भारत के बड़े नगरों में लेकर छोटे नगरों तथा अन्य प्रतिष्ठानों में नवीन सूचना तकनीकि का दुरूपयोग यह बताता है कि देश में ऐसे तत्वों की कमी नहीं है जो साइबर कैफे, कम्प्यूटर, इमेल, फैक्स टेलीफोन और मोबाइल का दुरूपयोग समाजविरोधी अपराधी गतिविधियों के लिए अधिक करते है और अनैतिक कार्यों की वृद्धि तथा अपराध में बढ़ावा दे रहे है। यदि उनका अर्थिक विकास हेतु उपयोग होता तो श्रेयस्कर विकास कार्य के क्रियान्वयन में बढावा मिलता।

- प्राकृतिक आपदायें:

आर्थिक विकास में बाधा के रूप में प्राकृतिक आपदायें जैसे बाढ़, सूखा, महामारी भूचाल, समुद्री तुफान, भूस्खलन आदि महत्वपूर्ण भूमिकायें निभाती है। जिससे आर्थिक विकास का मार्ग अवरूद्ध हो जाता है। उत्पादन कम हो जाता है। कभी-कभी भारी जानमाल का नुकसान हो जाता है। स्वास्थ्य सम्बन्धी समस्यायें उत्पन्न हो जाती है। सुनामी की लहरों के ताण्डव लाखों जानें ली, लाखों को घर/आवास से महरूम कर दिया, लाखों बच्चों को अनाथ और

अभिभावकों को अपनों से छीन लिया और असहाय बना दिया। जंगलों में आग लगने से भी पर्यावरणीय और आर्थिक विकास को क्षति पहुँचती है।

- दुर्घटनायें:

रेल, रोड, जैसे सिलेण्डर, वायुयान, शार्ट सर्किटिंग से आग लगने की घटनायें आर्थिक विकास के मार्ग में बाधक होती है और करोडों की धनराशि की हानि होती है। खदानों की दुर्घटनायें, अनेक निर्माण कार्यों का त्वरित ध्वस्त हो जाना तथा आतंकवाद और आक्रामक शक्तियों द्वारा विद्धवंशक सामग्रियां का प्रयोग भी समय-समय पर आर्थिक विकास में वाधा बनी है। विदेशी आक्रमणों को भी दुर्घटना की ही संज्ञा दी जा सकती है जिससे भारी मात्रा में जान-माल की हानि से देश को आर्थिक हानि उठानी पड़ी है।

अभ्यास प्रश्न

1. आधुनिकीकरण से तात्पर्य है:

2. 'सर्वेंट्स ऑफ इंडिया सोसाइटी' की स्थापना (1905) का मुख्य उद्देश्य क्या था?

3. शिक्षा के आधुनिकीकरण के लिए हंटर आयोग (1882) का गठन किसके शासनकाल में हुआ था?

4. आधुनिकीकरण की प्रक्रिया में समाज में परिवर्तन के प्रमुख क्षेत्र कौन से हैं?

5.8 सारांश

परिवर्तन प्रकृति का एक शाश्वत एवं अटल नियम हैं मानव समाज भी उसी प्रकृति का अंग होने के कारण परिवर्तनशील है। समाज की इस परिवर्तनशील प्रकृति को स्वीकार करते हुए मैकाइवर लिखते हैं "बहुत समय पूर्व ग्रीक विद्वान हेरेक्लिटिस ने भी कहा था सभी वस्तुए परिवर्तन के बहाव में हैं।" परिवर्तन क्यों और कैसे होता है, ये प्रश्न आज भी पूरी तरह हल नहीं हो पाये हैं। अंग्रेज कवि लार्ड टेनिसन का मत है कि "प्राचीन क्रम में नये को स्थान देने के लिए परिवर्तन होता है।" प्रो० ग्रीन लिखते है सामाजिक परिवर्तन इसलिए होता है क्योंकि प्रत्येक समाज संतुलन के निरन्तर दौर से गुजर रहा है, कुछ व्यक्ति एक सम्पूर्ण संतुलन की इच्छा रख सकते हैं तथा कुछ इसके लिए भी प्रयास करते हैं।" (ए.डब्ल्यू, ग्रीन सोशियोलॉजी, पृ० 615)

5.9 शब्दावली

अभिवृतियों - वह मानसिक एवं भावनात्मक वस्तु है जो किसी व्यक्ति की विशेषताएँ या अभिलाक्षणिक निर्धारित करती है।

प्रौद्योगिकी (Technology) - वैज्ञानिक ज्ञान का व्यावहारिक उद्देश्यों के लिए उपयोग करना.

5.10 अभ्यास प्रश्न के उत्तर

1.पारंपरिक से आधुनिक, धर्मनिरपेक्ष और औद्योगिक समाज की ओर परिवर्तन 2. केवल औद्योगिक विकास

3. लॉर्ड रिपन 4. सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक और सांस्कृतिक सभी

5.11 संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. कुलबीर सिंह, भारत में सामाजिक परिवर्तन, अनु प्रकाशन, मेरठ, 1976

2. फैक्वास पोराकस ए न्यू कान्सेप्ट आफ डेवलपमेन्ट बेसिक टेनेटस यूरेस्को, पेरिस 1983

3. रत्ना दत्ता वैलूज इन माडेल्स आफ मार्डर्नाइजेशन, विकास पब्लिकेशंस, दिल्ली, बाम्बे, बंग्लोर, कानपुर, लंदन, 1971

4. एन० जे० स्मेल्सर, सोश्खल चेन्ज इन दी इन्डस्ट्रियल रिवाल्यूशन, शिकागो : यूनिवर्सिटी आफ शिकागो प्रेस, 1959

5. डैविड सी० मैक्लीलैण्डः दी अचीमिंग सोशायटी (प्रिंस्टन न्यू जेरेशी: डी बान नास्टैण्ड कम्पनी, इन्क 1961

6. डैनियल लर्नर : दी पासिंग आफ ट्रेडिशनल सोशायिटी (न्यू यार्क दी फ्री प्रेस 1959,

5.12 निबंधात्मक प्रश्न

1. सामजिक परिवर्तन की अवधारणा को समझाइये।

2. सामाजिक परिवर्तन की विशेषताओ को लिखिये।

3. आधुनिकीकरण एवं विकास को समझाइये।

4. सामाजिक एवं आर्थिक विकास की व्याख्या कीजिये।

5. आर्थिक विकास के अवरोधो की व्याख्या कीजिये।

इकाई 6: मानव विकास : अवधारणा, उद्देश्य और महत्व

इकाई की रूपरेखा

6.1 प्रस्तवाना

6.2 उद्देश्य

6.3 मानव विकास : उद्देश्य

6.4 मानव विकास का महत्व

6.5 मानव विकास के सूचक

6.6 मानव विकास के सिद्धान्त

6.7 अभ्यास प्रश्न

6.8 सार संक्षेप

6.9 परिभाषित शब्दावली

6.10 संदर्भ ग्रन्थ सूची

6.1 प्रस्तावना

किसी देश के सामाजिक, आर्थिक तथा सांस्कृतिक उत्थान में, उस देश में उपलब्ध मानव संसाधन अथवा आर्थिक रूप से क्रियाशील जनसंख्या की महत्वपूर्ण भूमिका होती है। मानव शक्ति का आकार तथा उसका गुणात्मक स्वरूप देश के विकास की दिशा, एवं विकास के पथ को निर्धारित करती है। मानव ही उत्पादन का साधन बन कर आर्थिक विकास को गति प्रदान करता है। 1990 में सर्वप्रथम प्रकाशित मानव विकास प्रतिवेदन ने मानव विकास को, लोगों के सामने, विकल्प के विस्तार की प्रक्रिया के रूप में परिभाषित किया है। इनमें सर्वाधिक महत्वपूर्ण हैं विस्तृत और स्वस्थ जीवन, शिक्षा प्राप्ति और अच्छा जीवन स्तर को पाना। अन्य विकल्प है, राजनीतिक स्वतंत्रता, मानवाधिकारों का आश्वासन और आत्म-सम्मान के विविध तत्व। ये सभी जरूरी विकल्प हैं जिनके अभाव में दूसरों अवसरों में बाधा पड़ती है। अतः मानव विकास, लोगों के विकल्पों में विस्तार के साथ-साथ प्राप्त होने वाले कल्याण के स्तर को ऊँचा करने की प्रक्रिया है। पॉल स्ट्रीटन ने ठीक ही लिखा है कि मानव विकास की संकल्पना, मानव को कई दशकों के अतंराल के बाद पुनः केन्द्रीय मंच पर प्रस्थापित करती है। इन बीते दशकों में तकनीकी संकल्पनाओं की भूल भुलैया में यह बुनियादी दृष्टि अस्पष्ट बनी है।

प्रसिद्ध अर्थशास्त्री महबूब उल हक, जिनके निर्देशन में सर्वप्रथम मानव विकास सूचकांक का निर्माण किया गया था, के अनुसार, "मानव विकास में सभी मानवीय विकल्पों का विस्तार आ जाता है। ये विकल्प चाहे आर्थिक, सामाजिक, सांस्कृतिक अथवा राजनीतिक हों।" यह कभी-कभी कहा जाता है कि आय में वृद्धि से अन्य सभी

विकल्पों का विस्तार होता है, किन्तु यह सत्य नहीं है। मानव के सामने अनेक विकल्प है, जो आर्थिक कल्याण से कहीं आगे जाते हैं। ज्ञान, स्वास्थ्य, स्वच्छ भौतिक पर्यावरण, राजनीतिक स्वतंत्रता और जीवन के सरल आनन्द आय पर निर्भर नहीं है।अतः संकुचित अर्थो में मानव विकास का अर्थ है, मानव की शिक्षा तथा प्रशिक्षण पर व्यय करना जबकि विस्तृत अर्थ में, स्वास्थ्य, शिक्षा तथा समस्त सेवाओं पर किये जाने वाले व्यय से लगाया जाता है।

6.2 उद्देश्य

इस इकाई का पढ़ने के बाद आपः-

- मानव विकास की अवधारणा के बारे में जान सकेंगें।
- मानव विकास के उद्देश्यों को जानकर लिख सकेंगे।
- मानव विकास के महत्व को समझ सकेंगे।
- मानव विकास के सूचकों को जान सकेंगें।
- मानव विकास के सिद्धान्तों को लिख सकेंगे।

6.3 मानव विकास के उद्देश्य

मानव विकास के महत्वपूर्ण उददेश्य अग्रलिखित है:-

1. सामाजिक नीति, कार्यक्रम व सेवाओं को बेहतर बनाने के लिए एक एकीकृत उपागम को अपनाना व क्रियान्वित करना,

2. मानव विकास व सामाजिक विकास में उन्नति के लिए राष्ट्रीय स्तर की क्षमताओं का निर्माण करना

3. मानव विकास से सम्बन्धित विभिन्न प्रकार के नेटवर्क व साझेदारियों को विकसित करना व सशक्त बनाना,

4. सामाजिक व मानव विकास से संबंधित कार्यक्रमों व सेवाओं को बेहतर बनाना व उनमें सामन्जस्य स्थापित करना,

5. बेहतर मानव विकास के लिए ज्ञान व उपागमों को सुदृढ बनाना,

6. प्राथमिक, माध्यमिक व उच्च स्तर पर शिक्षा की उपयुक्त व्यवस्था करना,

7. प्रौढ़ शिक्षा को बढ़ावा देना तथा उसकी समुचित व्यवस्था करना,

8. कार्य-प्रशिक्षण को बढ़ावा देना, तथा

9. ऐसी स्वास्थ्य सुविधाओं की व्यवस्था करना जो लोगों की जीवन-प्रत्याशा शक्ति, उत्साह तथा कार्यक्षमता में वृद्धि कर सकें।

6.4 मानव विकास का महत्व

किसी देश का आर्थिक विकास उस देश में उपलब्ध मानव पूँजी के स्टॉक तथा संचय की दर पर निर्भर करता है। विकासशील देशों में नियोजित आर्थिक विकास की प्रक्रिया में मानव के विकास पर समुचित ध्यान नहीं दिया जाता। यही कारण है कि इन देशों में विकास के वांछित लक्ष्य नहीं प्राप्त हो पाते हैं तथा वहाँ विकास की दर निम्न रहती है। आज अधिकांश विकासवादी अर्थशास्त्री इस बात के पक्षधर है कि मानव-पूँजी में अधिक से अधिक विनियोग किया जाना चाहिए ताकि आर्थिक विकास के सर्वाधिक महत्वपूर्ण घटक मानव संसाधन का समुचित विकास किया जा सके।

किसी भी देश की जनसंख्या का जितना अधिक हिस्सा शिक्षित, कुशल एवं प्रशिक्षित, होकर रोजगार में लगा हुआ है, वह देश उतना ही तेजी से विकास करेगा। आर्थिक विकास की दृष्टि से भौतिक पूँजी की अपेक्षा मानव पूँजी को कहीं अधिक महत्वपूर्ण समझा जाता है क्योंकि मानवीय साधनों की कुशलता एवं दक्षता पर ही आर्थिक विकास का ढांचा खड़ा किया जा सकता है। प्रसिद्ध अर्थशास्त्री मार्शल का भी विचार था कि "सबसे मूल्यवान पूँजी वह है जो मानव-मात्र में विनियोजित की जाये।"

पॉल स्ट्रीटन के अनुसार मानव विकास निम्नलिखित कारणों से महत्वपूर्ण है:-

- मानव विकास ऊँची उत्पादकता का साधन है। भली प्रकार से पोषित, स्वस्थ, शिक्षित, कुशल और सतर्क श्रम शक्ति सर्वाधिक महत्वपूर्ण उत्पादक परिसंपत्ति है। अतः पोषण, स्वास्थ्य सेवा, शिक्षा में निवेश उत्पादकता के आधार पर उचित है।
- यह मानव पुनरूत्पादन को धीमा करके परिवार के आकार को छोटा करने में सहायता पहुँचाता है। यह सभी विकसित देशों का अनुभव है कि शिक्षा के स्तर में सुधार, अच्छी स्वास्थ्य सुविधाओं की उपलब्धता और बाल मृत्यु दर में कमी से जन्म दर में गिरावट आती है। शिक्षा में सुधार से लोगों में छोटे परिवार के प्रति चेतना पैदा होती है और स्वास्थ्य में सुधार व बाल मृत्यु दर में कमी से लोग ज्यादा बच्चों की जरूरत महसूस नहीं करते।
- भौतिक पर्यावरण की दृष्टि से भी मानव विकास अच्छा है। गरीबी में वनों के विनाश, रेगिस्तान के विस्तार और क्षरण में कमी आती है।
- गरीबी में कमी से एक स्वस्थ समाज के गठन, लोकतंत्र के निर्माण और सामाजिक स्थिरता में सहायता मिलती है।
- मानव विकास से सामाजिक उपद्रवों को कम करने में सहायता मिलती है और इससे राजनीतिक स्थिरता बढ़ती है।

6.5 मानव विकास के सूचक

विकास एक वृहद् अवधारणा है जिसके अन्तर्गत विभिन्न सामाजिक-आर्थिक व राजनीतिक तत्व आते हैं। किन्तु UNDP ने मानव विकास के मुख्यतः तीन सूचक बतायें हैं जो निम्नलिखित है:-

- जीवन प्रत्याशा अर्थात् एक विस्तृत और स्वस्थ जीवन। जिस देश के नागरिकों की औसत आयु जितनी अधिक होगी वह देश उतना ही अधिक विकसित समझा जायेगा।
- ज्ञान अर्थात् एक देश में विभिन्न शिक्षण संस्थानों में नामांकन कराने वाले लोगों की संख्या। किसी देश में बालिग साक्षरता दर और समग्र प्राथमिक, माध्यमिक और उच्च नामांकन के अनुपात के द्वारा इसको मापा जाता है।
- आर्थिक विकास अर्थात् प्रति व्यक्ति आय। लोगों का आर्थिक विकास मानव विकास का एक अन्य सूचक है जो लोगों का अच्छा जीवन स्तर दर्शाता है। एक देश में लोगों की प्रति व्यक्ति आय जितनी अधिक होगी उस देश में मानव-विकास उतना ही अधिक होगा।

6.6 मानव विकास के सिद्धान्त

6.6.1 सिंगमण्ड फ्रायड व्यक्तित्व का मनोविश्लेषणात्मक सिद्धान्त

फ्रायड ने करीब 40 साल के अपने नैदानिक अनुभवों के बाद व्यक्तित्व के मनोविश्लेषणात्मक सिद्धान्त का प्रतिपादन किया। इस सिद्धान्त की व्याख्या निम्नांकित तीन मुख्य भागों में बांट कर की जाती है-

(क) व्यक्तित्व की संरचना।

(ख) व्यक्तित्व की गतिकी।

(ग) व्यक्तित्व का विकास।

(क) व्यक्तित्व की संरचना फ्रायड ने व्यक्तित्व की संरचना का वर्णन करने के लिए निम्नांकित दो प्रारूपों का निर्माण किया है-

(अ) आकारात्मक प्रारूप - मन के आकारात्मक पारूप से तात्पर्य पहलू से होता है जहाँ संघर्षमय परिस्थिति की गत्यात्मकता उत्पन्न होती है। फ्रायड ने इसे तीन स्तरों में बांटा है- चेतन, अर्द्धचेतन, तथा अचेतन।

(ब) गत्यात्मक या संरचनात्मक प्रारूप - इससे तात्पर्य उन साधनों से होता है जिनके द्वारा मूल प्रवृत्तियों से उत्पन्न मानसिक संघर्षों का समाधान होता है। ऐसे साधन या प्रतिनिधि तीन है:-

उपाहं- यह व्यक्तित्व का जैविक तत्व है जिनमें प्रवृत्तियों की भरमार होती है जो जन्मजात होती है तथा जो असंगठित, कामुक, आक्रामकतापूर्ण तथा नियम आदि को मानने वाली नहीं होती है। उपाहं की प्रवृत्तियां "आनन्द सिद्धान्त द्वारा निर्धारित होती हैं।

अहं- अहं मन का वह हिस्सा है जिसका संबंध वास्तविकता से होता है तथा जो बचपन में उपाहं की प्रवृत्तियों से ही जन्म लेता है। अहं वास्तविकता सिद्धान्त द्वारा नियंत्रित होता है तथा वातावरण की वास्तविकता के साथ इसका संबंध सीधा होता है।

पराहं - पराहं को व्यक्तित्व की नैतिक शाखा में माना गया है जो व्यक्ति को यह बतलाता है कि कौन कार्य अनैतिक हैं। यह आदर्शवादी सिद्धान्त द्वारा निर्देशित एवं नियंत्रित होता है।

(ख) व्यक्तित्व की गतिकी - फ्रायड के अनुसार मानव जीव एक जटिल तंत्र है जिसमें शारीरिक ऊर्जा तथा मानसिक ऊर्जा दोनों ही होते हैं। शारीरिक ऊर्जा से व्यक्ति शारीरिक क्रियायें जैसे दौड़ना, साँस लेना, लिखना आदि क्रियायें करता है तथा मानसिक ऊर्जा से व्यक्ति मानसिक कार्य जैसे स्मरण, प्रत्यक्ष चिन्तन आदि करता है। फायड के अनुसार इन दोनों तरह की ऊर्जाओं का स्पर्श बिन्दू उपाह होता है। फ्रायड ने इन ऊर्जाओं से सम्बन्धित कुछ ऐसे संप्रत्यय का विकास किया है जिनसे व्यक्तित्व के गत्यात्मक पहलुओं जैसे मूलप्रवृत्ति, चिन्ता तथा मनोरचनाओं का वर्णन होता है।

(ग) व्यक्तित्व का विकास - फ्रायड ने व्यक्तित्व के विकास की व्याख्या दो दृष्टिकोण से की है। पहला दृष्टिकोण इस बात पर बल डालता है कि वयस्क व्यक्तित्व बाल्यावस्था के भिन्न-2 तरह की अनुभूतियों द्वारा नियंत्रित होती है तथा दूसरे दृष्टिकोण के अनुसार जन्म के समय लैंगिक ऊर्जा बच्चों में मौजूद होती है जो विभिन्न मनोलैंगिक अवस्थाओं से होकर विकसित होती है। फ्रायड के इस दूसरे दृष्टिकोण को मनोलैंगिक विकास का सिद्धान्त कहा जाता है। इस सिद्धान्त की 5 अवस्थाए क्रम में निम्नांकित हैं -

1. मुखावस्था

2. गुदावस्था

3. लिंग प्रधानावस्था

4. अव्यक्तावस्था

5. जननेन्द्रियावस्था

मनोलैंगिक अवस्थाओं से होकर व्यक्ति की लैंगिक ऊर्जा का धीरे-धीरे विकास होता जाता है जिससे व्यक्ति बाल्यावस्था के निष्क्रियता को त्याग कर वयस्कावस्था में सामाजिक रूप से उपयोगी एवं सुखमय जीवन जीता है।

5.6.2 एडलर का वैयक्तिक मनोविज्ञान का सिद्धान्त

एडलर का मत है कि प्रत्येक व्यक्ति मुख्य रूप से एक सामाजिक न कि जैविक प्राणी होता है। व्यक्तित्व का निर्धारण वैयक्तिक सामाजिक वातावरण तथा उनक अन्तः क्रियाओं द्वारा न कि जैविक आवश्यकताओं द्वारा निर्धारित होता है। यौन को एडलर ने व्यक्तित्व निर्धारिण का उतना महत्वपूर्ण कारक नहीं माना जितना कि फ्रायड ने माना था।

एडलर के सिद्धान्त का का एक महत्वपूर्ण पूर्वकल्पना यह है कि सभी मनोवैज्ञानिक घटनाएँ व्यक्ति के भीतर आत्म-संगत ढंग से एकीकृत होती है। इस पूर्वकल्पना के तहत उनके सिद्धान्त में व्यक्तित्व के मौलिक एकता पर पर्याप्त बल डाला गया है। इसी तरह से विभिन्नताएं एवं विषमता एक आत्म-संगत संपूर्णता में संगठित हो जाती हैं। एडलर ने अपने सिद्धान्त में यह बतलाया कि मन तथा शरीर, चेतन तथा अचेतन एवं तर्क तथा संवेग में कोई स्पष्ट अतंर करना संभव नहीं हैं।

एडलर का मत था कि व्यक्ति का व्यवहार व्यक्तिगत अनुभूतियों द्वारा नहीं बल्कि कल्पना या भविष्य प्रत्याशाओं द्वारा प्रेरित होता है।

एडलर के सिद्धान्त में जीवन शैली को एक महत्वपूर्ण भाग माना गया है। जीवन शैली में सिर्फ व्यक्ति का जीवन लक्ष्य ही नहीं बल्कि उसक आत्म-संप्रत्यय, दूसरों के प्रति भाव तथा पर्यावरण के अन्य वस्तुओं के प्रति मनोवृत्ति आदि भी सम्मिलित होता है। व्यक्ति की जीवन शैली, पर्यावरण, आनुवांषिकता, सफलता के लक्ष्य, सामाजिक अभिरूचि तथा सृजनात्मक शक्ति आदि का प्रतिफल होता है। जीवन शैली को एक प्रमुख नियंत्रण बल एडलर ने माना है।

6.6.3 सुल्लीवान का व्यक्तित्व सिद्धान्त

सुल्लीवान का मत था कि व्यक्ति जन्म से ही वातावरण के विभिन्न वस्तुओं एवं व्यक्तियों के साथ अन्तः क्रिया करता है और उस अन्तः क्रिया से उसके व्यवहार का निर्धारण होता है। व्यक्ति का विकास इन्ही अन्तर वैयक्तिक व्यवहार के संदर्भ में होता है।

इनके अनुसार मानव एक ऐसा ऊर्जा तंत्र है जो आवश्यकताओं द्वारा उत्पन्न तनावों को हमेशा कम करने की कोशिश करता है। उन्होंने तनाव को दो भागों में बांटा है। आवश्यकताओं द्वारा उत्पन्न तनाव तथा चिन्ता द्वारा उत्पन्न तनाव जब व्यक्ति अपनी आवश्यकताओं को संतुष्ट नहीं कर पाता है जो उससे एक विशेष अवस्था उत्पन्न होती है. जिससे भावशून्यता विकसित होती है।

सुल्लीवान ने व्यक्तित्व विकास की सात अवस्थाओं का वर्णन किया है। इनका मत है कि व्यक्तित्व में परिवर्तन विकास के किसी भी अवस्था में हो सकता है, परन्तु ऐसे परिवर्तन एक अवस्था से दूसरी अवस्था के अतरण में सर्वाधिक होता है। एक बच्चा दूसरों का किस तरह से प्रत्यक्षण करता है और वह दूसरों के प्रति किस तरह की प्रतिक्रिया करता है, पर व्यक्तित्व का विकास निर्भर करता है जो व्यक्तित्व विकास के विभिन्न अवस्थाओं को एक सूत्र में बांधता है। उनके द्वारा बतलाये गए व्यक्तित्व का विकास की सात अवस्थाएं निम्नांकित है -

1. शैशवास्था

2. बाल्यावस्था

3. तरूणावस्था

4. प्राक किशोरावस्था

5. आरम्भिक किशोरावस्था

6. उत्तर किशोरावस्था

7. परिपक्वता

सुल्लीवान ने व्यक्तित्य विकास में सामाजिक एवं सांस्कृतिक कारकों पर बल ढाल कर यह स्पष्ट कर दिया कि ये कारक व्यक्तित्व के एक प्रमुख निर्धारक हैं। सुल्लीवान पहले ऐसे नव-फ्रायडवादी हैं जिन्होंने व्यक्तित्व के विकास की व्याख्या में जन्म से लेकर परिपक्वता तक की अवधि का एक चरणबद्ध वर्णन किया है।

6.6.4 इरिक इरिक्सन - व्यक्तित्व का मनोसामाजिक सिद्धान्त

इरिक्सन के सिद्धान्त का केन्द्रीय बिन्दु यह है कि मानव का विकास कई पूर्वनिश्चित अवस्थाएं जी सर्वजनीन होती है. से होकर होता है। जिस प्रक्रिया द्वारा वे अवस्थाएं विकसित होती है। यह विशेष नियम द्वारा नियंत्रित होती है। इस नियम को पश्चजात नियम कहा जाता है। अपनी प्रसिद्ध पुस्तक चाइल्डहुड एण्ड सोसाइटी में इरिक्सन ने मनोसामाजिक अहं विकास के आठ अवस्थाएं बतलायी है, और पश्चजात् नियम के अनुसार विकास की प्रत्येक अवस्था होने का एक आदर्श समय होता है और प्रत्येक अवस्था एक क्रम में एक के बाद एक आती है और उनमें व्यक्तित्व का विकास जैविक परिपक्वता तथा सामाजिक एवं ऐतिहासिक बलों के अन्त क्रिया के फलस्वरूप होता है। इनके सिद्धान्त को निम्नांकित बिन्दुओं के माध्यम से समझा जा सकता है-

1. प्रत्येक मनोसामाजिक अवस्था में एक संक्रान्ति होता है। संक्रान्ति से तात्पर्य व्यक्ति के जीवनकाल के एक ऐसा परिवर्तन बिंदु से होता है जो उस अवस्था में परिपक्वता तथा सामाजिक मांग दोनों के अन्तः क्रिया के फलस्वरूप व्यक्ति में उत्पन्न होता है।

2. प्रत्येक मनोसामाजिक संक्रान्ति में धनात्मक तथा ऋणात्मक दोनों ही तत्व होते हैं। प्रत्येक अवस्था में उसके जैविक परिपक्वता तथा नये-नये सामाजिक मांग के कारण संघर्ष का होना इरिक्सन अवश्यभावी मानते है। यदि इस संघर्ष को व्यक्ति संतोषजनक ढंग से समाधान कर लेता है तो इससे उसके विकसित अह में ऋणात्मक तत्व अवशोषित हो जाते है और व्यक्तित्व विकास अवरूद्ध होने की संभावना कम हो जाती है।

3 मनोसामाजिक विकास की प्रत्येक अवस्था में सक्रान्ति का समाधान कर लेने पर व्यक्ति में एक विशेष मनोसामाजिक शक्ति की उत्पत्ति होती है जिसे इरिक्सन ने सदाचार की सजा दी है।

4. प्रत्येक मनोसामाजिक अवस्था का निर्माण उससे पहले की अवस्था में हुए विकासों से संबंधित होता है।

5. इरिक्सन द्वारा प्रतिपादित व्यक्तित्व सिद्धान्त में मनोसामाजिक विकास की आठ अवस्थाओं के नाम इस प्रकार हैं-

1. शैशवास्थाः विश्वास बनाम अविश्वास

2. प्रारंभिक बाल्यावस्थाः स्वतंत्रता बनाम लज्जाशीलता

3. खेल अवस्था पहल शक्ति बनाम दोशिता

4. स्कूल अवस्था परिश्रम बनाम हीनता

5. किशोरावस्था अहं पहचान बनाम भूमिका संभ्राति

6. तरूण वयस्कावस्थाः घनिष्ठ बनाम विलगन

7. मध्य वयस्कावस्था जननात्मकता बनाम स्थिरता

8. परिपक्वता अहं सम्पूर्ण बनाम निराशा

6.6.5 कर्ट लेविनः व्यक्तित्व का क्षेत्र सिद्धान्त

इस सिद्धान्त की एक सामान्य पूर्वकल्पना यह है कि प्राणी का व्यवहार उन सभी कारकों द्वारा प्रभावित होता है जो उसके क्षेत्र या वातावरण में उपस्थित होते हैं। लेविन ने व्यक्ति सिद्धान्त को निम्नांकित तीन प्रमुख भागों में समझा जा सकता है-

(क) व्यक्तित्व की संरचना

(ख) व्यक्तित्व की गतिकी

(ग) व्यक्तित्व का विकास

(क) व्यक्तित्व की संरचना

लेविन ने व्यक्तित्व की संरचना की व्याख्या करने के लिए गणित के एक विषेष शाखा जिसे संस्थिति विज्ञान जाता है. का सहारा लिया। इस आधार पर उन्होंने व्यक्तित्व की संरचना को निम्नांकित चार भागों में बांटा-

1. व्यक्ति

2. मनोवैज्ञानिक वातावरण

3. जीवन समष्टि

4. वास्तविकता के स्तर

(ख) व्यक्तित्व की गतिकी

लेविन ने कुछ गत्यामक संप्रत्ययों का प्रतिपादन किया हैं जिनसे यह स्पष्ट रूप से पता चलता है कि किसी भी दी गयी परिस्थिति में व्यक्ति किस तरह का व्यवहार करता है। ऐसे गत्यात्मक संप्रत्ययों में निम्नांकित प्रमुख है -

1 ऊर्जा

2 तनाव

3 आवश्यकता

4 कर्षण शक्ति

5 सदिश।

(ग) व्यक्तित्व का विकास

लेविन ने व्यक्तित्व के विकास की व्याख्या करने के लिए निम्नांकित दो तरह के प्रत्ययों को महत्वपूर्ण बतलाया है :-

(1) व्यवहारात्मक परिवर्तन

(2) विभेदीकरण एवं एकीकरण

(1) व्यवहारात्मक परिवर्तन

लेविन के अनुसार जैसे-जैसे व्यक्ति का विकास होते जाता है अर्थात् उसकी आयु में वृद्धि हो जाती है. उसमें तरह-तरह के व्यवहारिक परिवर्तन होते जाते हैं। शिशुओं के व्यवहार में पूरे शरीर में एक विसरित क्रिया होती हैं जिसे उन्होंने साधारण अन्तर निर्भरता कहा है।

(2) विभेदीकरण एवं एकीकरण

लेविन ने विभेदीकरण को परिभाषित करते हुए कहा है कि इससे तात्पर्य संपूर्ण व्यक्ति के स्वतंत्र हिस्सों या भागों में वृद्धि से होता है। परंतु व्यक्तित्व का विकास सिर्फ विभेदीकरण की प्रक्रिया से अपने आप में ही अधूरा ही रह जाता है क्योंकि इससे यह स्पष्ट नहीं होता है कि उम्र बीतने के साथ व्यक्ति का व्यवहार क्यों अधिक संगठित एवं समन्वित होता चला जाता है। इस पक्ष की व्याख्या करने के लिए उन्होंने एकीकरण के सप्रत्यय का प्रतिपादन किया। इसके माध्यम से लेविन यह व्याख्या कर सकने में समर्थ हो पाये है कि व्यक्ति तथा मनोवैज्ञानिक पर्यावरण के विभिन्न क्षेत्र एक पदानुक्रम ढंग से होकर करता है। इस तरह के संगठन का स्पष्ट अभाव हमें शिशुओं के व्यवहार में मिलता है परन्तु व्यस्कों में इस तरह का अभाव एकीकरण की प्रक्रिया क संपन्न हो जाने से नहीं मिलता है।

6.6.6 एब्राइम मैसलो व्यक्तित्व का मानवतावादी सिद्धान्त

मैसलो ने अपने सिद्धान्त में प्राणी के अनूठापन का उसके मूल्यों के महत्व पर तथा व्यक्तिगत वर्धन तथा आत्म-निर्देष की क्षमता पर सर्वाधिक बल डाला है। इस बल के कारण ही उनका मानना है कि संपूर्ण प्राणी का विकास उसके भीतर से संगठित बंग से होता है। इन आन्तरिक कारकों की तुलना में वाहय कारणों जैसे आनुवांशिकता तथा गत अनुभूतियों का महत्व नगण्य होता है। अधिक बल दिये जाने के कारण उनके सिद्धान्त को व्यक्तित्व का सम्पूर्ण गत्यात्मक सिद्धान्त भी कहा गया है। मैसलो के सिद्धान्त को निम्नांकित दो मुख्य भागों में प्रस्तुत किया जा सकता है:-

(क) व्यक्तित्व एवं अभिप्रेरण का पदानुक्रमिक प्रारूप

(ख) स्वस्थ व्यक्तित्वः आत्म-सिद्ध व्यक्ति का विकास।

इनका विश्वास था कि अधिकांश मानव व्यवहार की व्याख्या कोई न कोई व्यक्तिगत लक्ष्य पर पहुंचने की प्रवृत्ति से निर्देशित होता है। मानव अभिप्रेरक जन्मजात होते हैं और उन्हें प्राथमिकता या शक्ति के आरोही पदानुक्रम सुव्यवस्थित किया जा सकता है। ऐसे अभिप्रेरकों को प्राथमिकता या शक्ति के आरोही क्रम में इस प्रकार बतलाया गया है।

(क) व्यक्तित्व एवं अभिप्रेरण का पदानुक्रमिक मॉडल

1. शारीरिक या दैहिक आवश्यकता

2. सुरक्षा की आवश्यकता

3. संबद्धता एवं आवश्यकता

4. सम्मान की आवश्यकता

5. आत्म-सिद्धि की आवश्यकता

(ख) स्वस्थ व्यक्तित्व आत्मसिद्ध व्यक्ति का विकास

मैसलो के सिद्धान्त की एक प्रमुख विशेषता यह है कि यह सिद्धान्त मानसिक रूप से स्वस्थ व्यक्तियों के अध्ययन पर आधारित है। मैसलो ने इन व्यक्तियों की पहचान करने के लिए कुछ विशेषताओं का वर्णन भी किया है।

मैसलो ने अपने व्यक्तित्य सिद्धान्त में यह भी बतलाया है कि व्यक्ति में आत्म-सिद्ध को किस तरह से प्रोत्साहित किया जा सकता है। इन्होंने आत्म सिद्ध को बढ़ाने या प्रोत्साहित करने के लिए स्कूल को सबसे उत्तम स्थान बतलाया है और कहा है कि छात्रों को अपनी स्वतंत्र पहचान बनाने में रूवियुक्त व्यवसाय की खोज करने तथा उत्तम मूल्यों का समझने के लिए किये गए प्रयासों से आत्म-सिद्ध का विकास होता है।

6.8.7 बी.एफ. स्कीन्नर व्यक्तित्व का व्यवहारात्मक सीख का सिद्धान्त

स्कीन्नर के लिए मानव व्यक्तित्व, उद्दीपकों के प्रति सीखे गए अनुक्रियाओं का एक संग्रहण एवं स्पष्ट व्यवहारों या आदत तंत्रों का एक समुच्चय है। इसलिए व्यक्तित्व से स्कीन्नर का तात्पर्य सिर्फ उन व्यवहारों से होता है, जिसे वस्तुनिष्ठ रूप से प्रेक्षण किया जाए या जिसमें आसानी से हेर-फेर किया जा सके।

स्कीन्नर का सिद्धान्त कुछ सिद्धान्तों जैसे मनोविश्लेषणात्मक सिद्धान्त, संज्ञानात्मक सिद्धान्त तथा मानवतावादी सिद्धान्त का विरोधी हैं। स्कीन्नर ने व्यक्तित्व की व्याख्या करने में आतंरिक प्रक्रियाओं जैसे-प्रणोद, अभिप्रेरकों तथा अचेतन आदि के महत्व को अस्वीकार कर दिया, क्योंकि इनका प्रेक्षण नहीं किया जा सकता है। स्कीन्नर ने मानव जीय को एक रिक्त जीव कहा है। रिक्त जीव कहने का उद्देश्य मानव व्यवहार की उत्पत्ति में आतंरिक प्रक्रियाओं की भूमिकाओं पर कटाक्ष करना तथा इस बात पर बल डालना था कि मानव जीव के भीतर कुछ भी ऐसा नहीं होता है जो वैज्ञानिक ढंग से व्यक्ति के व्यवहारों की व्याख्या कर सके। इनके सिद्धान्त की एक विशेषता यह भी है कि इन्होंने अपना अध्ययन सामान्य, असामान्य या असाधारण व्यक्तियों पर न करके पशुओं पर विशेषकर चूहों एवं कबूतरों पर किया और कहा कि चूंकि उनके सिद्धान्त का संबंध सभी तरह के व्यवहारों से है अतः इन पशुओं के व्यवहार का अध्ययन करके मानव के व्यवहारों को भी आसानी से समझा जा सकता है।

स्कीन्नर के व्यक्तित्व सिद्धान्त मानव प्रकृति के कुछ खास पहलुओं जैसे-निर्धार्यता, अधिभूतवाद, पर्यावरणीयता, परिवर्तनशीलता वस्तुनिष्ठता प्रतिक्रियाशीलता तथा ज्ञेयता पर अधिक बल डालता है तथा अन्य पहलुओं जैसे विवेकपूर्ण तथा समस्थिति विषमस्थिति को पूर्णरूपेण अस्वीकृत किया है क्योंकि स्कीन्नर ने मानय व्यवहार के

आतंरिक स्रोतों पर बल नहीं दिया है। इनके अनुसार व्यक्तित्व का अध्ययन व्यक्ति के जननिक प्रष्ठभूमि तथा विशिष्ट शिक्षण इतिहास का क्रमबद्ध एवं परिशुद्ध मूल्यांकन के आधार पर संभव है।

6.8.8 अल्बर्ट बाण्डुरा- सामाजिक संज्ञानात्मक सिद्धान्त

स्टैण्डफोर्ट के प्रसिद्ध मनोवैज्ञानिक अल्बर्ट बाण्डुरा अपने सामाजिक संज्ञानात्मक सिद्धान्त जिस औपचारिक रूप से सामाजिक सीख का सिद्धान्त कहा जाता है, में दावा करते है कि मानव एक ज्ञानात्मक जीव है जिसकी सक्रिय सूचनात्मक प्रक्रिया उसके सीखने, व्यवहार तथा विकास में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है। बाण्डुरा कहते हैं कि मनुष्य के सीखाने की प्रक्रिया चूहे के सीखने की प्रक्रिया से बहुत भिन्न होती है। क्योंकि मनुष्य में चूहे की तुलना में कही अधिक ज्ञानात्मक क्षमताएं होती है। सामाजिक सज्ञानात्मक सिद्धान्त एक सीख संबंधी सिद्धान्त है जो इस धारणा पर आधारित है कि मनुष्य दूसरों को देखकर सीखता है तथा मनुष्य की वैचारिक प्रक्रिया व्यक्तित्व की समझ पर केन्द्रित है। यह सिद्धान्त व्यक्ति की नैतिक क्षमता वे नैतिक प्रदर्शन के मध्य अंतर पर जोर देता है।

'मनुष्य दूसरों को देखकर सीखता है' इस बात को अच्छी तरह समझाने के लिए बाण्डुरा ने एक प्रयोग किया जिसे ' बोबो गुडिया का व्यवहार:" आक्रामकता का एक अध्ययन कहा जाता है। इस प्रयोगों में बाण्डुरा ने बच्चों के समूह को एक वीडियों दिखाया जिसमें उग्र व हिंसक क्रियाए थी इस प्रयोग के माध्यम से बाण्डुरा ने निष्कर्ष निकाला कि जिन बच्चों ने वह हिंसक वीडियों देखा था उन्हें गुडियायें अधिक आक्रामक व हिसंक प्रतीत होती थीं बजाय उन बच्चों के जिन्होंने वह वीडियों नहीं देखा था। यह प्रयोग सामाजिक संज्ञानात्मक सिद्धान्त को स्पष्ट करता है क्योंकि यह बताता है कि किस प्रकार मनुष्य मीडिया में देखी गई घटनाओं के प्रत्युत्तर में व्यवहार करता है। इस प्रयोग के संबंध में बच्चों ने हिंसा के प्रकार के प्रत्युत्तर में व्यवहार किया जिसे उन्होंने सीधे वीडियो देखकर सीखा था।

बैण्डुरा द्वारा प्रतिपादित सामाजिक संज्ञानात्मक सिद्धान्त निम्नांकित दो मुख्य प्रस्तावनाओं पर आधारित हैं:-

(1) अधिकतर मानव व्यवहार अर्जित होते है, अर्थात व्यक्ति उन्हें अपने जीवन-काल में सीखता है।

(2) मानव व्यवहार के सम्पोषण एवं विकास की व्याख्या करने के लिए सीखने का नियम पर्याप्त है।

बैण्डुरा के सिद्धान्त को औपचारिक रूप से सामाजिक सीख का सिद्धान्त भी कहा जाता है। इस सिद्धान्त में मानय स्वभाव के कुछ खास-खास पूर्वकल्पनाओं जैसे-विवेकपूर्णता, पर्यावरणीयता परिवर्तनशीलता तथा ज्ञेयता आदि पर अधिक बल डाला गया है बैण्डुरा का मत है कि व्यक्ति दूसरों के व्यवहारों का प्रेक्षण करके तथा उसे दोहराकर वैसा ही व्यवहार करना सीख लेता है। इस संबंध में वैण्डुरा राँस तथा राँस ने एक लोकप्रिय प्रयोग किया है। इस प्रयोग में स्कूल के बच्चों को वयस्क द्वारा तीन से चार फीट की एक गुडिया जिसे बोबो गुडिया का नाम दिया गया था, को उछालते हुए मारते हुए एवं उसके प्रति आक्रामकता करते हुए दिखलाया गया। जब इन बच्चों को उसी गुड़िया के साथ अकेला छोड दिया गया तो देखा गया कि उनके द्वारा भी वैसा ही आक्रामक व्यवहार उस गुड़िया के प्रति दिखलाया गया। बाद के प्रयोगों में जब बच्चों के टेलीविजन पर ऐसे ही आक्रामक दृश्य दिखलाये गए तो उनका व्यवहार उन बच्चों की तुलना में अधिक आक्रामक हो गए जिन्हें ऐसे दृश्य टेलीविजन पर नहीं दिखलाये गए थे।

बैण्डुरा के सिद्धान्त में अन्योन्यनिर्धार्यता का संप्रत्यय एक काफी महत्वपूर्ण संप्रत्यय है। इसके माध्यम से वैण्डुरा यह स्पष्ट करना चाहते थे कि मानय व्यवहार संज्ञानात्मक, व्यवहारात्मक तथा पर्यावरणी निर्धारकों के बीच सतत अन्योन्य अन्तः क्रिया का एक प्रतिफल होता है। इस तरह क अन्योन्य अन्त. क्रिया की प्रक्रिया को बैण्डुरा ने अन्योन्य निर्धार्यता की संज्ञा दी है।

6.7 मानव विकास की अवस्थाएँ

समाज वैज्ञानिको मानय विकास की अवस्थाओं को गर्भधारण से लेकर पूरे जीवनकाल को निम्नांकित 10 भागों में विभाजित किया है।

1. पूर्वप्रसूतिकाल - यह अवस्था गर्भधारण से प्रारम्भ होकर जन्म तक की होती है।

2. शैशवावस्था - यह अवस्था जन्म से प्रथम 10-14 दिनों तक की है।

3. बचपनावस्था - यह अवस्था जन्म के दो सप्ताह से प्रारंभ होकर दो साल तक की होती है।

4. बाल्यावस्था - यह अवस्था 2 साल से प्रारम्भ होकर 10 या 12 साल तक की होती है। बालिकाओं में 10 वर्ष तक तथा बालको में यह 12 वर्ष तक होती है। इसे मनोवैज्ञानिकों ने निम्नांकित दो भागों में बांटा है-

(अ) प्रारंभिक बाल्यावस्था : यह अवस्था 2 साल से प्रारंभ होकर साल तक की होती है।

(ब) उत्तर बाल्यावस्था : यह अवस्था 6 वर्ष से प्रारंभ होकर बालिकाओं में 10 वर्ष की उम्र तक तथा बालकों में 6 वर्ष से प्रारंभ होकर 12 वर्ष की उम्र तक होती है। इस अवस्था से बालक-बालिकाओं में यौन परिपक्वता आ जाती है।

5. तरूणावस्था या प्राकृकिशोरावस्था - लड़कियों में यह अवस्था 11 वर्ष से 13 की तथा लड़कों में यह अवस्था 12 साल 14 की होती है। इस अवस्था में बालिका का शरीर एक वयस्क के शरीर का रूप ले लेता है।

6. प्रारंभिक किशोरावस्था - यह अवस्था 13-14 साल से प्रारंभ होकर 17 साल तक की होती है। इस अवस्था में शरीरिक विकास तथा मानसिक विकास बालकों में अधिकतम होता है और उनमें विवेक तथा उचित अनुचित का खयाल अधिक नहीं रहता है।

7. परवर्ती किशोरावस्था - यह अवस्था 17 साल से 19-20 साल तक की होती है। इस अवस्था में बालक पूर्णरूपेण शरीरिक तथा मानसिक रूप से स्वतंत्र हो जाता है और अपने भविष्य के बारे में तरह-तरह की योजनाएँ बनाना शुरू कर देता है। बालक तथा बालिकाओं में विपरीत लिंग के व्यक्तियों के प्रति अभिरूचि अधिक हो जाती है।

8. प्रारंभिग वयस्कता - यह अवस्था 21 साल से 40 साल की होती है। इस अवस्था में व्यक्ति शादी कर अपनी घर-परिवार बसाता है और किसी व्यवसाय में लग जाता है तथा आने आत्मविकास को मजबूत कर आगे बढ़ता है।

9. मध्यावस्था - यह अवस्था 40-60 साल की होती है। इसमें व्यक्ति द्वारा अपनी पूर्वप्राप्त उपलब्धि तथा आकांक्षाओं को काफी सुदृढ़ किया जाता है।

10. बुढ़ापा या सठियावस्था - यह अवस्था 60 साल से मृत्यु तक की होती है। इस अवस्था में शरीरिक तथा मानसिक शक्ति धीरे-धीरे क्षीण होती है और सामाजिक कार्यों में व्यक्ति का लगाव कम होता है चला जाता है।

मानव विकास नीतियाँ व कार्यक्रम

मानव विकास की अवधारणा मानवीय विकास से संबंधित है जिसका मुख्य उद्देश्य किसी भी राष्ट्र से जनसंख्या के सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक तथा सांस्कृतिक पक्षों को प्रभावित करना है। चूँकि मानवीय विकास एक बृहद अवधारणा है अतः इसके अंतर्गत समाज के विभिन्न वर्गों व उनसे संबंधित मुद्दों को ध्यान में रखते हुए नीतियों एवे कार्यक्रमों का निर्माण किया जाता है।

अभ्यास प्रश्न

1. व्यवहारात्मक सीख का सिद्धान्त किसने प्रतिपादित किया?

A. बी.एफ. स्कीन्नर B. इरिक इरिक्सन C. सुल्लीवान D. फ्रायड

2. निम्न में से किसने व्यक्तित्व का मनोसमाजिक सिद्धान्त दिया है

A. फ्रायड B. एडलर C. सुल्लीवान D. इरिक इरिक्सन

3. फ्रायड के अनुसार मनोलैंगिक विकास की कितनी अवस्थाएँ होती हैं।

A. 5 B. 6 C. 7 D. 8

4. वैयक्तिक मनोविज्ञान का सिद्धान्त किसका है

A. लेविन B. एडलर C. इरिक इरिक्सन D. सुल्लीवान

6.8 सामाजिक विकास और मानव विकास में संबंध

सामाजिक विकास शिक्षा, स्वास्थ्य, पोषण आदि मूलभूत सेवाओं को प्रदान करते हुए लोगों के जीवन स्तर को ऊँचा उठाने से संबंधित है। सामाजिक विकास के अंतर्गत नवीन अवसरों को सुगमतापूर्वक उपलब्ध कराना, जीवन गुणवत्ता को सुनिश्चित करना, समाज में सुरक्षा व न्याय की व्यवस्था करना, इत्यादि आते हैं। इसी पृष्ठभूमि पर मानव का इस प्रकार से विकास करना है जिससे वह अपनी इच्छानुसार एक उद्देश्यपूर्ण व रचनात्मक जीवन व्यतीत करने योग्य बन सके। इसके अलर्गत व्यक्ति के ज्ञान व शैक्षणिक क्षमताओं के साथ-साथ स्वास्थ्य संबंधी दशाओं का भी विकास आता है। जो किसी व्यक्ति के मानसिक, शारीरिक व सामाजिक आयामों की गवेषणा करने के लिए आवश्यक हैं।

मनुष्य समाज की सबसे छोटी इकाई है. अतः उसका सम्पूर्ण व्यक्तित्व शारीरिक, मानसिक, व सामाजिक आदि आयामों के विकास पर निर्भर करता है। समस्त सामाजिक नीतियों व कार्यक्रम मानव मात्र को बेहतर अवसर उपलब्ध कराने के लिए केंदित होते है। जिससे मनुष्य को उसकी क्षमताओं का ज्ञान हो सके। अतः सामाजिक विकास मानवीय

विकास के सभी पक्षों को प्रभावित करता है। इस प्रकार कहा जा सकता है कि सामाजिक विकास मानव केन्द्रित विकास है। तथा मानव को विकसित करना सामाजिक विकास का एक महत्वपूर्ण प्रयत्न व योगदान है क्योंकि एक श्रेष्ठ मानव एक श्रेष्ठ समाज का निर्माण करता है तथा सामाजिक विकास के लिए श्रेष्ठ माध्यम को बढ़ावा देता है।

6.9 सारांश

प्रस्तुत इकाई में मानव विकास की अवधारणा, उद्देश्य तथा उसके महत्व एवं सिद्धान्तों का विस्तृत वर्णन किया गया है। इस इकाई में यह स्पष्ट किया गया है कि किस प्रकार से मानव विकास सामाजिक विकास को प्रोत्साहित कर सकता है। मानव विकास के सिद्धान्तों के आधार पर मानव विकास को प्रोत्साहित करते हुए एक विकसित समाज की स्थापना की जा सकती है।

6.10 शब्दावली

1. जीवन प्रत्याशा- किसी देश की जनसंख्या में निहित ज्ञान, कौशल, शिक्षा, स्वास्थ्य और कार्यक्षमता का समुच्चय, जो आर्थिक विकास का सबसे महत्वपूर्ण आधार माना जाता है।

2. मानव पूँजी- किसी देश की जनसंख्या में निहित ज्ञान, कौशल, शिक्षा, स्वास्थ्य और कार्यक्षमता का समुच्चय, जो आर्थिक विकास का सबसे महत्वपूर्ण आधार माना जाता है।

3. मनोसामाजिक विकास- व्यक्ति के जैविक परिपक्वता और सामाजिक वातावरण की पारस्परिक क्रिया के परिणामस्वरूप होने वाला व्यक्तित्व विकास।

4. जीवन शैली- एडलर के अनुसार व्यक्ति की वह विशिष्ट जीवन-पद्धति, जिसमें उसके लक्ष्य, आत्म-धारणा, सामाजिक दृष्टिकोण और व्यवहार के तरीके सम्मिलित होते हैं।

5. अन्योन्य निर्धार्यता - बाण्डुरा द्वारा प्रतिपादित संप्रत्यय, जिसके अनुसार मानव व्यवहार व्यक्ति की संज्ञानात्मक प्रक्रियाओं, उसके व्यवहार और पर्यावरण के बीच निरंतर पारस्परिक अंतःक्रिया का परिणाम होता है।

6.11 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1–A (बी.एफ. स्किनर), 2–D (इरिक इरिक्सन), 3–A (5 अवस्थाएँ), 4–B (एडलर)।

6.12 सन्दर्भ ग्रन्थ

1. उच्चतर सामान्य मनोविज्ञान, अरूण कुमार सिंह, एम.एल.बी.डी. पब्लिकेशन, नई दिल्ली। ह्यूमन डेवलपमेन्ट ध्योरीस, आर.मुरे थॉमस, सेग पब्लिकेशन, नई दिल्ली।

2. ह्यूमन डेवलेपमेन्ट, कैरल के० सिगेलमन एवं एलिजाबेथ ए. राइडर, वर्ल्डसवर्थ सीनेज लर्निंग, नई दिल्ली।

3. भारतीय अर्थव्यवस्था, दत्त एवं सुन्दरम् एस० चन्द पब्लिकेशन, नई दिल्ली।

4. ह्यूमन डेवलेपमेन्ट थ्योरीज़ , आर मुरे थॉमस, सेज पब्लिकेशन्स, नई दिल्ली।

6.13 निबंधात्मक प्रश्न

1. मानव विकास से आप क्या समझातें हैं?

2. मानव विकास के उद्देश्यों को स्पष्ट कीजिए।

3. मानव विकास का समाजिक जीवन में महत्व क्या है?

4. मानव विकास के सिद्धान्तों का संक्षिप्त परिचय लिखिए।

5 मानव विकास किस प्रकार से सामाजिक विकास में सहायक है?

इकाई 7: मानव विकास नीतियाँ और कार्यक्रम

इकाई की रूपरेखा

7.1 प्रस्तावना

7.2 उद्देश्य

7.3 बाल विकास

7.4 महिला सशक्तीकरण

7.5 युवा कल्याण

7.6 वृद्ध कल्याण

7.7 शिक्षा

7.8 स्वास्थ्य

7.9 आवास

7.10 सामाजिक सुरक्षा

7.11 अनुसूचित जाति व जनजाति

7.12 अन्य पिछड़ा वर्ग

7.13 अल्पसंख्यक

7.14 सार संक्षेप

7.15 शब्दावली

7.16 अभ्यास प्रश्न के उत्तर

7.17 संदर्भ ग्रन्थ सूची

7.18 निबंधात्मक प्रश्न

7.1 प्रस्तावना

मानव विकास की अवधारणा मानवीय विकास से संबंधित है जिसका मुख्य उद्देश्य किसी भी राष्ट्र से जनसंख्या के सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक तथा सांस्कृतिक पक्षों को प्रभावित करना है। चूँकि मानवीय विकास एक बृहद्

अवधारणा है अतः इसके अंतर्गत समाज के विभिन्न वर्गों व उनसे संबंधित मुद्दों को ध्यान में रखते हुए नीतियों एवं कार्यक्रमों का निर्माण किया जाता है। मानव विकास, व्यक्ति विशेष के विशेष विकास से संबंधित है।

7.2 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात आप

- महिला सशक्तीकरण से सम्बन्धित प्रावधानों को समझ सकेगें।
- युवा कल्याण से सम्बन्धित प्रावधानों को समझ सकेगें।
- वृद्ध कल्याण से सम्बन्धित प्रावधानों को समझ सकेगें।
- शिक्षा से सम्बन्धित प्रावधानों को समझ सकेगें।
- स्वास्थ्य से सम्बन्धित प्रावधानों को समझ सकेगें।
- आवास से सम्बन्धित प्रावधानों को समझ सकेगें।
- सामाजिक सुरक्षा से सम्बन्धित प्रावधानों को समझ सकेगें।
- अनुसूचित जाति व जनजाति से सम्बन्धित प्रावधानों को समझ सकेगें।
- अन्य पिछड़ा वर्ग से सम्बन्धित प्रावधानों को समझ सकेगें।
- अल्पसंख्यक वर्ग से सम्बन्धित प्रावधानों को समझ सकेगें।

7.3 बाल विकास

विभिन्न वर्गों के विकास से संबंधित नीतियाँ एवं कार्यक्रम निम्नवत है:-

संक्षिप्त परिचय

- 2001 की जनगणना के अनुसार भारत में 6 वर्ष से कम आयु के बच्चों की संख्या देश की कुल जनसंख्या का 15.42 प्रतिशत है।
- अंतर्राष्ट्रीय बाल वर्ष-1979
- बाल श्रम को रोकने के लिए केन्द्र सरकार ने 10 अक्टूबर, 2006 से बच्चों से घर या व्यवसायिक प्रतिष्ठानों में काम करवाने पर पाबंदी लगा दी है।
- यूनिसेफ प्रतिवेदन 2008, के अनुसार बाल मृत्यु के मामले में भारत का विश्व में प्रथम स्थान है।

विधान (Legislations)

- बाल सेवायोजन अधिनियम-1938
- कारखाना अधिनियम-1948

- बागान श्रमिक अधिनियम-1951
- खान अधिनियम-1952

इन अधिनियमों में 14 वर्ष से कम आयु वाले बच्चों के सेवायोजन को निषिद्ध किया गया है।

- बाल विवाह निषेध अधिनियम-1929 (शारदा एक्ट)
- युवा शक्ति हानिकारक प्रकाशन अधिनियम-1956
- केन्द्रीय बाल अधिनियम-1960
- अनाथालय एवं दातव्य गृह (अधीक्षण एवं नियंत्रण) अधिनियम-1960
- किशोर न्याय अधिनियम 1986 (केन्द्रीय बाल अधिनियम का संशोधित रूप)
- किशोर न्याय (बच्चों की सुरक्षा और देखभाल) अधिनियम-2000
- (किशोर न्याय अधिनियम का संशोधित रूप)
- महिला एवं बाल संस्था (लाइसेंस) अधिनियम-1993

नीतियां :-

- राष्ट्रीय बाल नीति-1974
- राष्ट्रीय बाल नीति-2001

संवैधानिक प्रावधान (Constitutional Provisions):-

अनुच्छेद 21 (क) - संविधान के 86वें संशोधन 2000 के माध्यम से बच्चों को शिक्षा का मौलिक अधिकार प्रदान किया जाता है।

अनुच्छेद 24 - 14 वर्ष से कम आयु के बच्चों को किसी भी कारखाने, खान या अन्य खतरनाक रोजगार में लगाने पर प्रतिबंध।

अनुच्छेद 39 (ड.) - सरकार द्वारा अपनी नीति का इस प्रकार संचालन करना कि सुनिश्चित रूप से बालकों की सुकुमार अवस्था का दुरूपयोग न हो और आर्थिक आवश्यकता से मजबूर होकर उन्हें ऐसे रोजगार में न जाना पड़े जो उनकी आय व शक्ति के अनुकूल न हों।

अनुच्छेद 39 (च) - सरकार द्वारा यह सुनिश्चित करना कि बालकों को स्वतंत्र अवसर व सुविधाये उपलब्ध हो तथा बालकों की शोषण से रक्षा हो।

अनुच्छेद 45 - 14 वर्ष तक की आयु के सभी बच्चों को सरकार द्वारा निःशुल्क और अनिवार्य शिक्षा की व्यवस्था को सुनिश्चित करना।

भारतीय दंड संहिता - धारा 82 - 7 वर्ष या इससे कम आयु के बच्चों को किसी भी अपराध में दंडित करना वर्जित है।

दंड प्रक्रिया - धारा 125- संतान और साथ में बच्चे, चाहे वे वैध या अवैध संतान हों, भरण-पोषण के भत्ते के हकदार हैं।

कार्यक्रम :-

- बाल सेविका प्रशिक्षण कार्यक्रम-1961-62 स्कूल पूर्व बच्चों के लिए कल्याण कार्यक्रमों को क्रियान्वित करने वाली संस्थाओं में प्रशिक्षित कर्मचारियों की आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए चलाया गया।
- बेसहारा बच्चों हेतु समन्वित कार्यक्रम-1992
- बाल पुरस्कार योजना-1957 असाधारण सूझ-बूझ बाले उत्कृष्ट बच्चों को प्रोत्साहित करना।
- समेकित बाल विकास सेवा परियोजना 2 अक्टूबर, 1975
- खिलौना बैंक योजना 14 नवम्बर, 1986
- केन्द्रीय शिशु गृह योजना (स्वैच्छिक संस्थाओं द्वारा संचालित)
- बाल श्रम निवारण योजना 15 अगस्त 1994
- भाग्यश्री बाल कल्याण योजना 19 अक्टूबर, 1998
- पल्स पोलियो योजना 1995 0-5 वर्ष के सभी बच्चचों को पोलियों-निरोधी दवा पिलाकर उन्हें पोलियो मुक्त करना।
- बच्चों के लिए राष्ट्रीय एक्शन योजना-2005
- समन्वित बाल सुरक्षा योजना (I.C.P.S.) जनवरी 2008
- दिल्ली की दुलारी लाडली योजना जनवरी 2008-09
- उदिशा योजना- 1997
  * विश्व बैंक से सहायता
  *स्वास्थ्य, पोषण, बाल्यावस्था पूर्व शिक्षा और माता-पिता को प्रोत्साहन, देकर बच्चों का सर्वांगीण विकास करना।

7.4 महिला सशक्तीकरण

संक्षिप्त परिचय

संयुक्त राष्ट्र ने 1975 को अन्तर्राष्ट्रीय महिला वर्ष तथा 1975-85 को अन्तर्राष्ट्रीय महिला दशक घोषित किया था।

- अन्तर्राष्ट्रीय महिला दिवस 8 मार्च
- 2001 की जनगणना के अनुसार महिलाओं की संख्या देश की कुल जनसंख्या का 48.2 प्रतिशत है।

- 2001 में महिला साक्षरता 54.16 प्रतिशत है।

नीतियाँ

महिला सशक्तीकरण नीति-2001

विधान (Legislations):-

- बाल विवाह प्रतिरोध अधिनियम (शारदा अधिनियम)-1929
- हिन्दू महिलाओं को सम्पत्ति पर अधिकार अधिनियम 1937
- जन प्रतिनिधित्व अधिनियम 1951
- विशेष विवाह अधिनियम 1954
- हिन्दू विवाह अधिनियम 1955
- हिन्दू उत्तराधिकार अधिनियम 1956
- हिन्दू दत्तक पुत्र एवं अनुरक्षण अधिनियम 1956
- विधवा पुनर्विवाह अधिनियम 1856
- स्त्रियों तथा कन्याओं का अनैतिक व्यापार निरोधक अधिनियम 1956
- मातृत्व लाभ अधिनियम 1961 (संशोधन 1976)
- दहेज निरोधक अधिनियम 1961 (संशोधन-1976)
- समान परिश्रमिक अधिनियम 1976
- दहेज निरोधक (सुधार) अधिनियम 1984
- महिलाओं को अशिष्ट रूपण (प्रतिषेध) अधिनियम 1986
- चिकित्सकीय गर्भ समापन अधिनियम 1971
- अनैतिक व्यापार (निरोध) अधिनियम 1986
- सती आयोग (प्रतिरोध) अधिनियम 1987
- जन्म पूर्व लिंग निदान तकनीक (नियमन व दुरूपयोग निषेध) अधिनियम 1994
- भारतीय तलाक (संशोधन) अधिनियम 2001
- घरेलु हिंसा अधिनियम- 2005
- पैतृक सम्पत्ति में महिलाओं को समान अधिकार अधिनियम 09 सितम्बर, 2005

कार्यक्रम

- मातृ व बाल स्वास्थ्य कार्यक्रम- 1946
- कामकाजी महिलाओं के लिए आवास गृह- 1972

- रोजगार और आय उत्पादन कार्यक्रम- 1982-83
- प्रशिक्षण एवं गारंटी मुद्रा रोजगार कार्यक्रम

राज्यों द्वारा किये गये प्रयास :-

- कामधेनु योजना- महाराष्ट्र अपंग, परित्यकता व आश्रयहीन महिलाओं को सवरोजगार उपलब्ध कराने के लिए सहायता
- किशोरी बालिका योजना बिहार 11-18 वर्ष की लड़कियों के स्वास्थ्य स्तर में सुधार लाना व उन्हें अनौपचारिक रूप से शिक्षित करना।
- कन्या विवाह योजना- बिहार
- कन्या सुरक्षा योजना- बिहार
- स्वस्थ सुखी योजना- उ0प्र0 18-35 वर्ष की आयु की एस०सी० महिलाओं को Midwife के रूप में प्रशिक्षण देना।
- सेनेटरी मार्ट योजना उ०प्र० मैला ढोने की प्रथा पर रोक से बेरोजगार हुई महिलाओं के पुर्नवास संबंधित
- अपनी बेटी अपना धन योजना- हरियाणा, 2 अक्टूबर, 1994 अनुसूचित जाति एवं जनजाति परिवारों की नवाजत बालिकाओं के नाम से 2500 रू. सरकार द्वारा इंदिरा विकास पत्र के माध्यम से निवेश कर दिया जाता है। 18 वर्ष पश्चात् यह राशि लगभग 25,000 रू. के रूप में उस बालिका को देय होती है।
- देवी रूपक योजना- हरियाणा, 25 सितम्बर, 2002 जनसंख्या नियन्त्रण व लिंग अनुपात में आ रही गिरावट को रोकना।
- बालिका संरक्षण योजना आंध्र प्रदेश बालिकाओं को संरक्षण एवं समाज में सम्मान दिलाना।
- पंचधारा योजना मध्य, प्रदेश, 1 नवम्बर, 1991 ग्रामीण एवं आदिवासी महिलाओं के कल्याण एवं विकास हेतु इसमें 5 उपयोजनाएं शामिल हैं-

  1. वात्सल्य योजना
  2. ग्राम्य योजना
  3. आयुष्मती योजना
  4. सामाजिक सुरक्षा योजना
  5. कल्पवृक्ष योजना

- ऊषा किरण योजना- मध्य प्रदेश जून, 2008 घरेलू हिंसा पीड़ित महिलाओं को आर्थिक सुरक्षा प्रदान करना व स्वावलंबी बनाना।
- दुलारी लाडली योजना नई दिल्ली, 1 जनवरी, 2008 लंग अनुपात की गिरावट को रोकना

केन्द्र द्वारा किये गये प्रयास :-

- ग्रामीण क्षेत्रों में महिला एवं बाल विकास कार्यक्रम (DWCRA) 1982 निर्धनता रेखा से नीचे ग्रामीण परिवारों की महिलाओं को स्वरोजगार के अवसर प्रदान करना।
- जवाहर रोजगार योजना अप्रैल, 1989 उत्पन्न होने वाले रोजार के अवसरों में से 30 प्रतिशत महिलाओं को आरक्षित।
- महिला सामख्या योजना 1989 महिलाओं को शक्ति-पूर्व बनाना जिससे बिना किसी बाहरी सहायता के वे अपने सामूहिक कार्यक्रम चला सके।
- राष्ट्रीय महिला कोष की मुख्य ऋण योजना 1993 अनौपचारिक क्षेत्र में गरीब एवं सम्पत्ति हीन महिलाओं की छोटी-छोटी ऋण संबंधी आवश्यकताओं की पूर्ति करना।
- महिला समृद्धि योजना 2 अक्टूबर, 1993 ग्रामीण महिलाओं में बचत की आदत को प्रोत्साहित करना तथा उन्हें सक्षम बनाना एवं पुरूषों तथा महिलाओं में असमानता को दूर करना।
- स्वयं सहायता योजना 1993
- राष्ट्रीय मातृत्व लाभ योजना 1994 19 वर्ष से अधिक आयु की निर्धनता रेखा से जीचे जीवन यापन करने वाली गर्भवती महिलाओं को 300 रु. की वित्तीय सहायता प्रदान करना।
- इंदिरा महिला योजना 1995-96 महिलाओं में अधिकारों के प्रति जागृति लाना।
- ग्रामीण विकास योजना- 1996
- स्वरोजगारी बीमा योजना- 1997
- स्वस्थ सखी योजना- 1997
- महिला संघटक योजना 9वीं पंचवर्षीय योजना के दौरान चलायी गयी।
- महिला स्वयं सिद्ध योजना 12 जुलाई, 2001 (अ) हिला समृद्धि योजना (1993) व इंदिरा महिला योजना (1995) के स्थान पर संचालित। (ब) महिलाओं के सामाजिक, आर्थिक सशक्तीकरण हेतु।
- महिला स्वाधार योजना 12 जुलाई, 2001 आर्थिक स्वालम्बन हेतु निराश्रित, परित्यकता, विधवा तथा प्रवासी महिलाओं को वरीयता।
- महिला उद्यमियों हेतु ऋण योजना 15 अगस्त, 2001 महिला उद्यमियों को कुल 17,000 करोड़ रू. का ऋण मुहैया कराया जाएगा।
- स्वशक्ति योजना इस योजना को विश्व बैंक की सहायता से 7 राज्यों के 35 जिलों में स्वयं सेवी संगठनों के माध्यम से महिलाओं की स्वयं सहायता समूह निर्माण हेतु चलाया जा रहा है।राष्ट्रीय पोषाहार मिशन योजना 15 अगस्त, 2001 (अ) भारतीय खाद्य निगम द्वारा संचालित। (ब) निर्धनता रेखा से नीचे परिवारों की किशोरियों, गर्भवती महिलाओं, नवजात शिशुओं का पोषण करने वाली महिलाओं को कम दर पर नियमित रूप से खाद्यान्न उपलब्ध कराना।
- जीवन भारती महिला सुरक्षा योजना 8 मार्च, 2003

- जननी सुरक्षा योजना 1 अप्रैल, 2005 (अ) राष्ट्रीय मातृत्व लाभ योजना (1994) के स्थान पर संचालित। (ब) गर्भवती महिलाओं को स्वास्थ्य केन्द्रों में पंजीकरण के बाद से शिशु जन्म तथा आवश्यक चिकित्सा सेवाएं उपलब्ध कराते हुए बच्चों के जन्म पर नकद सहायता प्रदान करना।
- वन्दे मातरम् योजना 14 जनवरी, 2004: गरीब एवं पिछड़े वर्ग की गर्भवती महिलाओं को स्वास्थ्य संबंधी सविधाएं उपलब्ध करना।
- मातृत्व सुरक्षा योजना 24 जनवरी, 2007 (निर्धनता रेखा से नीचे परिवार की महिलाओं हेतु)
- उज्जवला योजना 4 दिसम्बर, 2007
  * महिलाओं की खरीद फरोख्त की रोकथाम।
  * व्यवसायिक यौन शोषण की रोकथाम ।
  * समाज से पुनः जोड़ना।
  * उनका पुर्नवास करना।
  * विदेशी महिलाओं को स्वदेश भेजना।
- धन लक्ष्मी योजना मार्च, 2008 बालिका शिशु के जन्म से लेकर विवाह तक विभिन्न अवसरों पपर निश्चित राशि प्रदान की गयी।
- किशोरी शक्ति योजना बालिकाओं के स्वास्थ्य, शिक्षा व प्रशिक्षण की उचित व्यवस्था करना। इस योजना को दो भागों में बांट कर चलाया जा रहा हैं-
  (अ) गर्ल टू गर्ल अपार्टमेन्ट योजना- 11-15 वर्ष की किशोरियों के लिए
  (ब) बालिका मंडल योजना 15-18 वर्ष की किशोरियों के लिए।

संवैधानिक प्रावधान :-

अनुच्छेद 14 :- विधि के समक्ष समस्त नागरिक समान है।

अनुच्छेद 15- धर्म, मूलवंश, जाति लिंग, उद्भव, जन्म स्थान, निवास आदि के आधार पर भेदभाव नहीं होगा।

अनुच्छेद 15- समता का प्रावधान महिलाओं एवं बच्चों के लिए किये गये प्रावधानों में बाधक नहीं होगा।

अनुच्छेद 39- पुरूष एवं महिलाओं के जीविकोपार्जन के लिए राज्य अपनी नीति का निर्माण करेगा तथा समान कार्य के लिए समान वेतन दिया जायेगा।

अनुच्छेद 41- महिलाओं सहित सभी नागरिकों को शिक्षा का अधिकार।

अनुच्छेद 42- राज्य महिलाओं को मातृत्व लाभ उपलब्ध करायेगा।

अनुच्छेद 243- महिलाओं के लिए पंचायतों एवं नगर पालिकाओं में स्थान आरक्षित करने की व्यवस्था ।

अनुच्छेद 232- प्रत्येक राज्रू की विधान सभाओं में महिलाओं के लिए स्थान आरक्षित रहेगा।

7.5 युवा कल्याण

संक्षिप्त परिचय

- अन्तर्राष्ट्रीय युवा दिवस - 12 जनवरी।
- अन्तर्राष्ट्रीय युवा सप्ताह- 12-18 जनवरी।
- अन्तर्राष्ट्रीय युवा वर्ष- 1985
- भारत में युवा कुल जनसंख्या का लगभग 40 प्रतिशत है।
- अन्तर्राष्ट्रीय सहयोग-

* अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर युवा शिष्ट मंडलों का आदान-प्रदान।

* कॉमनवेल्थ युवा कार्यक्रम

* संयुक्त राष्ट्र स्वयं सेवक योजना- 1970

कार्यक्रम :-

- अन्तर्राष्ट्रीय युवा आदान-प्रदान कार्यक्रम
- स्वैच्छिक संस्थाओं की सहायता कार्यक्रम
- यूनिर्वसिटी टॉक एड्स (यू.टी.ए.)-2001 नाको के सहयोग से चलाया गया।
- राष्ट्रीय प्रौढ़ शिक्षा कार्यक्रम 1978 निरक्षर युवकों के लिए 5 वर्षों तक शिक्षा कार्यक्रम चलाया गया।

नीतियां :-

- राष्ट्रीय सेवा योजना 24 सितम्बर 1969 उद्देश्य समाज सेवा के माध्यम से छात्रों के वयक्तित्व का विकास करना।
- राष्ट्रीय सेवा स्वयं सेवी योजना 1977-78
- राष्ट्रीय खेल नीति- 1984 इसके अन्तर्गत विभिन्न योजनाएं चलायी गयी :
  * राज्य खेल, परिषदों आदि को खेलकूद विकास हेतु 'अनुदान योजना।'
  * राष्ट्रीय खेल प्रतिभा खोज छात्रवृत्ति योजना।
  * स्कूलों में पुरस्कार राशि द्वारा खेलकूद के वर्धन हेतु प्रेरणा योजना।
- युवाओं के लिए प्रदर्शनियों की योजना 1986
- युवाओं के प्रशिक्षण के लिए योजना- 1987-88
- जनजातीय युवाओं के लिए विशेष योजना- 1990-91
- राष्ट्रीय युवा नीति-1991
- राष्ट्रीय युवा नीति-2003

- उत्कृष्ट युवा क्लबों के लिए पुरस्कार योजना- 1992-93
- राष्ट्रीय एकता वर्धन योजना।
- युवा छात्रावास योजना।
- साहस वर्धन योजना।
- नेहरू युवा केन्द्र योजना।
- युवा मंडलों की सहायता योजना।
- राष्ट्रीय सहायता योजना।
- राष्ट्रीय शारीरिक अयोग्यता योजना।

7.6 वृद्ध कल्याण

संक्षिप्त परिचय

- विश्व वृद्ध दिवस 1 अक्टूबर
- अन्तर्राष्ट्रीय वृद्ध वर्ष 1999
- U.N. ने 1982 में वियना में 'विश्व वृद्ध सभा' का आयोजन किया था।
- United National Global Action on Aging- 2007 भारत तथा चीन में वृद्धों की संख्या 4.4 प्रतिशत की दर से बढ़ रही है जबकि विश्व औसत 2.6 प्रतिशत का है।
- वृद्धाश्रम- संध्या आनंद निकेतन, वृद्ध आश्रम, हेल्पेज इंडिया, Age care India etc.
- भारत में सर्वप्रथम उ0प्र0 में 1957 में 'वृद्धावस्था पेन्शन योजना' चलायी गयी।
- वर्तमान में देश में वृद्धजनों की संख्या 7.6 करोड़ के करीब है।
- वृद्धों के लिए समेकित कार्यक्रम-2007
- विधान (Legislations):-
- माता-पिता एवं वरिष्ठ नागरिक देखभाल अधिनियम 6 दिसम्बर, 2007
- हिन्दू अंगीकरण एवं भरण पोषण अधिनियम- 1996

नीतियाँ (Policies) :-

- किसान पेंशन योजना 12 अक्टूबर 1994 60 वर्ष से अधिक आयु के किसानों को 125 रू. प्रतिमाह की दर से पेंशन दिये जाने की व्यवस्था।
- वृद्धावस्था पेंशन योजना- 15 अगस्त 1995
- वृद्धजनों के लिए राष्ट्रीय नीति- 1999
- अन्नपूर्णा योजना- 2000 (वृद्धों को नियमित रूप से मुफ्त आवास)
- वरिष्ठ पेंशन बीमा योजना- जुलाई, 2003

- दादा-दादी बॉण्ड योजना 2004 :60 वर्ष से अधिक उम्र वाले सभी वरिष्ठ नागरिकों को एक ऊँची ब्याज दर देने वाली बॉण्ड स्कीम की व्यवस्था।
- वरिष्ठ नागरिक बचत योजना- 2004-05 वरिष्ठ पेंशन बीमा योजना के स्थान पर संचालित।
- राष्ट्रीय वृद्धावस्था पेंशन योजना या इंदिरा गांधी राष्ट्रीय वृद्धावस्था पेंशन योजना- 9 नवम्बर, 2007 इसमें अन्नपूर्णा योजना का विलय हो गया।
- देखभाल करने वाले बच्चों तथा संबंधियों के लिए योजना।
- Help Age India ने स्वयं द्वारा संचालित 'एक पितामह' को अंगीकृत करो योजना के अन्तर्गत निर्धनता रेखा से नीचे वृद्धों के लिए पुनर्वास की व्यवस्था की है।

संवैधानिक प्रावधान :-

अनुच्छेद 41- देश के विभिन्न राज्य सरकारों तथा संघीय क्षेत्रों ने वृद्ध व्यक्तियों को सहायता प्रदान करने की दृष्टि से अपने-अपने राज्यों में वृद्धावस्था पेंशन योजनायें

प्रारम्भ की है व उनका संचालन हो रहा है।

अनुच्छेद 309- पेंशन भोगी वृद्धों के कल्याण से संबंधित प्रावधान।

Criminal Procedure Code का **अनुच्छेद 125 (1) (ध)** तथा **Hindu Adaption & Maintenance Act- 1956** के **अनुच्छेद 20 (3)** में वृद्ध अभिभावकों के भरण-पोषण के संबंध में प्रावधान किये गये हैं।

7.7 शिक्षा

संक्षिप्त परिचय

- 2001 की जनगणना के अनुसार भारत की साक्षरता 65.38% है जबकि 1951 में यह 18.3% के लगभग थी।
- U.G.C. की स्थापना वर्ष 1956
- विश्व-विद्यालय शिक्षा आयोग- 1948-49
- माध्यमिक शिक्षा आयोग- 1952-53
- शिक्षा आयोग (कोठारी आयोग) 1964-66। इसी आयोग की संस्तुतियों के फलस्वरूप पहली राष्ट्रीय शिक्षा नीति 1968 बनी।
- नई शिक्षा नीति- 1986

- नई शिक्षा नीति के कार्यक्रमः नवोदित विद्यालयों की स्थापना, ऑपरेशन ब्लैक बोर्ड का आरंभ, माध्यमिक स्तर पर बालिकाओं के लिए निःशुल्क शिक्षा की व्यवस्था, दूरस्थ / पत्राचार शिक्षा पद्धति का प्रोत्साहन, राष्ट्रीय साक्षरता मिशन का प्रारंभ, अध्यापन दिशा-निर्देश कार्यक्रम आदि।
- संशोधित शिक्षा नीति- 1992

कार्यक्रम :-

- राष्ट्रीय प्रौढ़ शिक्षा कार्यक्रम 2 अक्टूबर, 1978
- ग्रामीण प्रकार्यात्मक साक्षरता कार्यक्रम मई 1986
- राजीव गांधी प्राथमिक शिक्षा मिशन। यह मिशन जिला प्राथमिक शिक्षा कार्यक्रम के अंतर्गत चलाया गया।
- महिला सामख्या कार्यक्रम 1989। सामाजिक व आर्थिक दृष्टि से पिछड़ी महिलाओं को शिक्षित करना व अधिकार सम्पन्न बनाना।
- जनशाला कार्यक्रम। यह समाज पर आधारित प्राथमिक शिक्षा कार्यक्रम है, इसे भारत सरकार और 5 संयुक्त राष्ट्र एजेन्सियों UNDP, UNICEF, UNESCO, ILO & UNFPA द्वारा मिलकर चलाया जा रहा है।
- मध्यान्ह भोजन कार्यक्रम- 2007-08
- अमर्त्य शिक्षा योजना।
- राष्ट्रीय विदेश छात्रवृत्ति योजना।
- बिल योजना। ग्रामीण बालिकाओं को साक्षर बनाने के साथ उनके स्वस्थ्य, परिवार कल्याण आदि पर ध्यान दिया जाता है।

संवैधानिक प्रावधान :-

अनच्छेद 21 (क)- संविधान के 86वें संशोधन 2000 के माध्यम से बच्चों को शिक्षा का मौलिक अधिकार प्रदान किया गया है।

अनु. 28- सार्वजनिक शिक्षण संस्थानों में धार्मिक शिक्षा पर प्रतिबंध।

अनं. 45- 14 वर्ष तक की आयु के सभी बच्चों को सरकार द्वारा निःशुल्क और अनिवार्य शिक्षा की व्यवस्था को सुनिश्चित करना।

अनु. 16- समाज के कमजोर वर्गों हेतु सरकार द्वारा शिक्षा की विशेश व्यवस्था करने का प्रावधान।

अनु. 351- राष्ट्र भाषा हिन्दी के विकास पर बल देना।

7.8 स्वास्थ्य

संक्षिप्त परिचय

- छठीं पंचवर्षीय योजना में P.H.C. तथा C.H.C. की अवधारणा का उदय हुआ।
- 1 P.H.C.-20,000 से 30,000 जनसंख्या पर
- 1 C.H.C.-4 P.H.C. पर
- 7वीं पंचावर्षीय योजना में ग्रामीण स्वास्थ्य के लिए विस्तृत अवधारणा अपनायी गयी।

विधान

- भारतीय मानसिक स्वास्थ्य अधिनियम 1987
- Indian Leprosy Act-1898
- India Lunacy Act-1912

कार्यक्रम :-

- राष्ट्रीय कैंसर नियंत्रण कार्यक्रम 1975 संशोधन- 1984
- राष्ट्रीय संक्रामक रोग नियंत्रण कार्यक्रम मलेरिया डेंगू, फाइलेरिया, दिमागी बुखार, क्षय रोग, कुष्ठ रोग आदि बीमारियों को रोकना तथा नियंत्रित करना।
- राष्ट्रीय मानसिक स्वास्थ्य कार्यक्रम 1982
- गिनी कृषि उन्मूलन कार्यक्रम 1983-84 Feb. 2000 में WHO ने भारत को गिनी (नेहरूवा) कृषि से मुक्त देश घोषित कर दिया।
- सार्वजनिक टीकाकरण कार्यक्रम 1985 उद्देश्य टीकों से रोकी जा सकने वाली छः बीमारियों छय, डिप्थीरिया, टिटनेस, पोलियो, खसरा और परट्यूरिस निरोधक टीकों से शिशुओं तथा मां की रक्षा करना।
- राष्ट्रीय आयोडीन न्यूनता विकृति नियंत्रण कार्यक्रम-
- पल्स पोलिया कार्यक्रम 1995
- तपेदिक नियंत्रण कार्यक्रम- 1997
- प्रजनन तथा बाल स्वास्थ्य कार्यक्रम- 1997
- राष्ट्रीय एड्स नियंत्रण कार्यक्रम दूसरा चरण 1999
- पांचवी पंचवर्षीय योजना में दो पुष्टाहार कार्यक्रम चले-

  * अनुपूरक पुष्टाहार कार्यक्रम

  * विशिष्ट पुष्टाहार कार्यक्रम

नीतियाँ :-

- राष्ट्रीय जल-प्रदाय एवं स्वच्छता योजना 1954
- एकीकृत बाल विकास सेवा योजना 1975-76
- राष्ट्रीय पोषण नीति- 1993
- Medi Claim Insurance Policy-1 November 1999
- राष्ट्रीय पोषण मिशन 15 अगस्त, 2001
- राष्ट्रीय स्वास्थ्य नीति – 2002
- सार्वभौमिक स्वास्थ्य बीमा योजना 14 जुलाई, 2003
- प्रधानमंत्री स्वास्थ्य सुरक्षा योजना 15 अगस्त, 2003 मध्य प्रदेश, बिहार, छत्तीसगढ़, उड़ीसा राजस्थान व उत्तरांचल में AIIMS खोले जायेंगे।
- राष्ट्रीय ग्रामीण सवास्थ्य मिशन (NRHM) 12 अप्रैल, 2005
- राष्ट्रीय स्वास्थ्य बीमा योजना 1 अक्टूबर, 2007 (घाोषित) 2008 लागू वयय का 75% केन्द्र व 25% राज्य सरकार द्वारा वहन किया जायेगा।

7.9 आवास

संक्षिप्त परिचय

- निम्न आयु समूह आवास योजना- 1954
- मलिन बस्तियों की सफाई एवं सुधार योजना – 1956
- बागान श्रमिकों के लिए छूट युक्त आवास योजना- 1956
- मध्यम आयु समूह आवास योजना- 1956
- ग्राम आवास परियोजना योजना 1957
- राज्य सरकार कर्मचारियों हेतु किराया आवास योजना- 1959
- भूमिहीन श्रमिकों के लिए ग्रामीण आवास स्थल एवं झोपड़ी निर्माण योजना-1971
- इंदिरा आवास योजना- 1985
- 20 लाख आवास कार्यक्रम योजना 1988-89
- नई आवास नीति- 1989
- National Housing Bank Voluntary Deposit Scheme-1991
- ग्रामीण विकास केन्द्र योजना- 1995
- झुग्गी बस्तियों के विकास का राष्ट्रीय कार्यक्रम अगस्त, 1996
- स्वर्ण जयन्ती ग्रामीण आवास वित्त योजना- 1997
- राष्ट्रीय आवास नीति- 1998 उद्देश्य सभी के लिए आवास
- राष्ट्रीय आवास एवं अभ्यारण नीति- 1998

- ग्रामीण आवास और पर्यावरण विकास की अभिनव कार्यक्रम 1 अप्रैल 1999
- ग्रामीण आवास हेतु ऋण एवं सब्सिडी योजना- 1999
- प्रधानमंत्री ग्रामोदय योजना 1999। स्थायी निवास विकसित व निर्माण करने के लिए।
- समग्र आवास योजना- 1999-2000
- वाल्मीकि अम्बेडकर आवास योजना 2001
- शहरी आवास नीति- 2004
- भारत निर्माण (आवास) योजना- 2005
- राष्ट्रीय शहरी आवास नीति 7 दिसम्बर, 2007

7.10 सामाजिक सुरक्षा

विधान (Legislations) :-

- सती निवारण अधिनियम- 1829
- बंदी अधिनियम 1900
- कर्मकार क्षतिपूर्ति अधिनियम 1923
- औद्योगिक विवाद अधिनियम 1947
- कारखाना अधिनियम 1948
- न्यूनतम मजदूरी अधिनियम 1948
- बागान श्रमिक अधिनियम 1951
- खान अधिनियम- 1952
- अस्पृश्यता निवारण अधिनियम 1955
- अनैतिक व्यपार (निरोध) अधिनियम 1956
- मातृत्व लाभ अधिनियम 1961
- दहेज निषेध अधिनियम 1961
- बाल श्रम (निषेध एवं नियमन) अधिनियम 1986
- अनु. जाति/जनजाति अत्याचार निवारण अधिनियम 1989
- राष्ट्रीय अल्पसंख्यक आयोग अधिनियम- 1992
- राष्ट्रीय पिछड़ा वर्ग आयोग अधिनियम 1993
- मानवाधिकार संरक्षण अधिनियम 1993
- हित याचिका अधिनियम 1997
- कुष्ठ पीड़ित लोगों के संरक्षण के लिए कानून- 1998

नीतिया :-

- सामाजिक सुरक्षा बीमा योजना- 1989
- ग्रामीण समूह बीमा योजना 15 अगस्त, 1995
- राज- राजेश्वरी महिला कल्याण योजना- 1998
- राष्ट्रीय कृषि बीमा योजना 2000 प्राकृतिक आपदाओं के कारण फसल नष्ट होने पर कृषकों की हानि की भरपाई करना।
- कृषि श्रमिक सामाजिक सुरक्षा योजना- 2001
- आश्रय बीमा योजना- 2001
- व्यक्तिगत दुर्घटना बीमा योजना- 2001
- शिक्षा सहयोग बीमा योजना- 2001
- सार्वजनिक स्वास्थ्य बीमा योजना 2004
- हस्तशिल्पी क्रेडिट कार्ड योजना 19 दिसम्बर, 2004
- राजीव गांधी श्रमिक कल्याण योजना 1 अप्रैल, 2005
- पशुधन बीमा योजना- 2006
- आम आदमी बीमा योजना 2 अक्टूबर, 2007
- जनश्री बीमा योजना- 2008
- राष्ट्रीय न्यूनतम सामाजिक सुरक्षा योजना असंगठित क्षेत्रों के उद्यमों पर अर्जुन सेनगुप्ता कमेटी की सिफारिशों पर योजना बनी।

7.11 अनुसूचित जाति व जनजाति

संक्षिप्त परिचय

- भारत सरकार कानून 1935 में सर्वप्रथम 'अनुसूचित जाति' शब्द का प्रयोग हुआ।
- 2001 की जनगणना के अनुसार अनुसूचित जाति के लोगों की कुल जनसंख्या 16.66 करोड़ है जो भारत की कुल जनसंख्या का 16.48 प्रतिशत है।
- 2001 की जनगणना के अनुसार अनु. जनजातियों के लोगों की संख्या 8.43 करोड़ है जो भारत की कुल जनसंख्या का 8.2 प्रतिशत है।
- जनजातीय कार्य मंत्रालय- अक्टूबर, 1999
- भारतीय जनजातीय सरकारी विपणन विकास परिसंघ लिमिटेड की स्थापना।

विधान :-

- अस्पृश्यता अपराध अधिनियम 1955, संशोधन 19 नवम्बर, 1976

- अनुसूचित जाति एवं अनुसूचित जनजाति (अत्याचार निवारण) अधिनियम-1989
- The Panchayat (Extension to the Schedule Areas)

मानवाधिकार रक्षा (संशोधन) विधेयक 24 अगस्त, 2006 अनु. जाति एवं जनजाति आयोगों के अध्यक्षों को राष्ट्रीय मानवाधिकार आयोग के पदेन सदस्य बनाने का प्रावधान।

नीतियाँ :-

अनुसूचित जाति व जनजाति दोनों के लिए नीतियाँ :-

- अनुसूचित जातियों एवं जनजातियों के विद्यार्थियों के लिए मैट्रिक उपरान्त छात्रवृत्ति योजना।
- अस्वच्छ व्यवसायों में कार्यरत व्यक्तियों के बच्चों को मैट्रिक पूर्व छात्रवृत्ति प्रदान करने की योजना।
- चिकित्सकीय एवं इन्जीनियरिंग महाविद्यालयों में अनुसूचित जातियों एवं जनजातियों के विद्यार्थियों के लिए पुस्तक बैंक योजना।
- अनु. जातियों एवं जनजातियों के लिए विशेष शिक्षा एवं संबद्ध परियोजना।

अनुसूचित जाति के लिए :-

- अनुसूचित जातियों के लिए कन्या छात्रावास योजना।
- अनुसूचित जातियों के लिए विशेष संघटक योजना- 1979
- अनुसूचित जातियों के लिए स्वयंसेवी संगठनों को सहायता योजना।
- अनुसूचित जातियों के लिए विदेशी छात्रवृत्तियों की परियोजना।
- सफाई कर्मचारियों और उनके आश्रितों की मुक्ति एवं पुनर्वास की राष्ट्रीय योजना- मार्च 1992
- अनुसूचित जाति के छात्रों की योग्यता के उन्नयन की केन्द्र द्वारा प्रायोजित योजना।
- अनुसूचित जातियों के लिए कोचिंग एवं सम्बद्ध योजना।
- अनु. जातियों के बालकों के लिए छात्रावासों की योजना।
- राजीव गांधी राष्ट्रीय फैलोशिप योजना- 2005
- मैला ढ़ोने वालों की पुर्नवास योजना मार्च, 2007

अनुसूचित जनजाति के लिए :-

- जनजातीय उपयोजना।
- केन्द्रीय मंत्रालयों/ विभागों द्वारा जनजातीय उपयोजना का निर्माण।
- जनजातीय उपयोजना क्षेत्रों में आश्रय विद्यालय योजना।

- व्यवसायिक प्रशिक्षण योजना।
- कम साक्षरता वाले स्थानों में जनजातीय लड़कियों में शैक्षिक परिसर योजना।
- जनजातियों के लिए शोध एवं प्रशिक्षण योजना तीन मदों के लिए सहायता दी जाती है:-
  1. आदिवासी शोध संस्थानों को अनुदान।
  2. डॉक्टोरल एवं पोस्ट डॉक्टोरल फैलोशिप पुरस्कार।
  3. अखिल भारतीय अथवा अन्तर्राज्यीय प्रकृति की शोध एवं मूल्यांकन परियोजनाओं को सहायता
- ग्रामीण अनाज बैंक योजना- 1996-97 उद्देश्य दूर-दराज और पिछड़े जनजातीय इलाकों में पोषण के स्तर को गिरने से बचाना।

संवैधानिक प्रावधान :-

अनुच्छेद 15 (2)- सार्वजनिक स्थलों (दुकानों, सार्वजनिक भोजस्थलों) में प्रवेश अथवा पूर्ण या आंशिक रूप से राज्यनिधि से पोषित स्थानों का उपयोग।

अनु. 16 सरकारी सेवाओं में प्रोन्नति में भी आरक्षण की व्यवस्था।

अनु. 17- अस्पृश्यता का उन्मूलन तथा उसके किसी भी रूप में प्रचलन का निषेध।

अनु. 19- अस्पृश्यतों की व्यावसायिक निर्योग्यता समाप्त। कोई भी व्यवसाय अपनाने की स्वतंत्रता।

अनु. 25 (ख)- सार्वजनिक हिन्दू संस्थाओं को समस्त वर्गों के लिए खोलने की व्यवस्था।

अनु. 29 (2)- राज्य द्वारा पोषित अथवा सहायता प्राप्त किसी शिक्षा संस्था में प्रवेश तथा किसी भी तरह के प्रतिबंध को निषिद्ध किया गया है।

अनु. 46- इन जातियों के शैक्षणिक एवं आर्थिक हितों की रक्षा और इनके सभी प्रकार के शोषण तथा सामाजिक अन्याय से बचाव की व्यवस्था।

अनु. 243- अनु. जाति व जनजातियों के लिए प्रत्येक पंचायत में उनकी जनसंख्या के अनुपात में स्थान आरक्षण की व्यवस्था।

अनु. 244, 5वीं व छवीं अनुसूची अनु. जाति व जनजाति के प्रशासन एवं नियंत्रण के लिए विशेष उपबंध।

अनु. 330, 332, 334- इन जातियों की लोकसभा तथा राज्य विधान सभाओं में विशेष प्रतिनिधित्व प्रदान करना।

अनु. 16 तथा 335- सरकारी सेवाओं में नियुक्ति के विषय में इन जातियों के दावों को ध्यान में रखना।

अनु. 164, 338 तथा 5वीं अनुसूची अनु. जाति व जनजातियों कके कल्याण तथा हितों के संरक्षण हेतु राज्यों में जनजातीय सलाहकार परिषदों तथा पृथक विभागों एवं केन्द्र में एक विशेष अधिकारी की नियुक्ति की व्यवस्था।

7.12 अन्य पिछड़ा वर्ग

संक्षिप्त परिचय

- भारतीय संविधान में पिछड़े वर्ग के लिए सामाजिक व शैक्षणिक दृष्टि से पिछड़ेपन को आधार माना गया है।
- 9वीं पंचवर्षीय योजना में पिछड़ा वर्ग से संबंधित प्रावधान किये गये।
- पिछड़े वर्ग शब्द का सर्वप्रथम प्रयोग 1917-18 में और उसके बाद 1930-31 में किया गया।
- राष्ट्रीय पिछड़ा वर्ग वित्त एवं विकास निगम जनवरी, 1992
- काका कालेलकर आयोग- 1953
- मुंगेरीलाल आयोग- बिहार सरकार।
- मंडल आयोग- जनवरी, 1993
- राष्ट्रीय पिछड़ा वर्ग आयोग – 1993
- राष्ट्रीय पिछड़ा वर्ग आयोग अधिनियम- 1993
- वर्ष 2008-09 से शिक्षण संस्थानों में अन्य पिछड़ा वर्ग को 27 प्रतिशत आरक्षण।
- परीक्षा पूर्व कोचिंग योजना। यह योजना उन अन्य पिछड़ा वर्ग उम्मीदवारों को लाभ पहुँचाती है जिनके परिवारों की आमदनी 24,000 प्रतिवर्ष से अधिक न हों।

संवैधानिक प्रावधान :-

अनु. 15 (4)- राज्यों को सामाजिक और आर्थिक दृष्टि से पिछड़े वर्गों के लिए विशेष प्रावधान किए जाने की शक्ति प्रदान की गयी है।

अनु. 16 (4)- राज्यों को पिछड़े वर्गों के लिए सरकारी नौकरियों में स्थान आरक्षित करने

की शक्ति प्राप्त है।

अनु. 340 (1)- राष्ट्रपति सामाजिक व शैक्षणिक दृष्टि से पिछड़े वर्गों की दशाओं व कठिनाइयों को ज्ञात करने के लिए एक आयोग की नियुक्ति करेगा।

7.13 अल्पसंख्यक

संक्षिप्त परिचय

- राज्य में जिस समूह की संख्या 50 प्रतिशत से कम हो वह अल्पसंख्यक समूह होगा।
- 2001 की जनगणना के अनुसार देश की कुल जनसंख्या का 18.42 प्रतिशत अल्पसंख्यकों का है।
- अल्पसंख्यक-
  मुस्लिम
  सिख
  ईसाई

बौद्ध

- राष्ट्रीय अल्पसंख्यक आयोग जनवरी, 1978
  नया आयोग मई, 1993
  आयोग का पुनर्गठन- जनवरी, 2000
- राष्ट्रीय धार्मिक और भाषायी अल्पसंख्यक आयोग 21 मार्च, 2005: इसका गठन पूर्व प्रधान न्यायाधीश रंगनाथ मिश्र ने किया। मुख्यालय इलाहाबाद।
- अल्पसंख्यक मामला मंत्रालय 2006
- राष्ट्रीय अल्पसंख्यक आयोग अधिनियम 1992
- वक्फ अधिनियम 1995

7.14 शब्दावली

1. **महिला सशक्तीकरण -** वह प्रक्रिया जिसके माध्यम से महिलाओं को सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक और शैक्षिक रूप से सक्षम बनाकर आत्मनिर्भर एवं निर्णय-निर्माण में सहभागी बनाया जाता है।

2. **सामाजिक सुरक्षा -** राज्य द्वारा कमजोर वर्गों—महिलाओं, वृद्धों, श्रमिकों एवं असंगठित क्षेत्र—को जीवन की आकस्मिकताओं (बेरोज़गारी, बीमारी, वृद्धावस्था) से सुरक्षा प्रदान करने हेतु चलाई गई योजनाओं एवं कानूनों की व्यवस्था।

3. **युवा कल्याण -** युवाओं के शारीरिक, मानसिक, नैतिक एवं सामाजिक विकास हेतु बनाई गई नीतियाँ और कार्यक्रम।

4. **वृद्ध कल्याण -** वृद्ध व्यक्तियों को आर्थिक सहायता, सामाजिक सुरक्षा एवं सम्मानजनक जीवन प्रदान करने हेतु लागू योजनाएँ एवं कानून।

5. **कल्याणकारी राज्य -** वह राज्य व्यवस्था जिसमें सरकार नागरिकों के शिक्षा, स्वास्थ्य, आवास, सामाजिक सुरक्षा एवं समानता की जिम्मेदारी लेती है, जैसा कि भारतीय संविधान के नीति-निर्देशक तत्वों में परिलक्षित होता है।

अभ्यास प्रश्न

1. भारतीय संविधान के किस अनुच्छेद के अंतर्गत राज्य को यह निर्देश दिया गया है की वह सुनिश्चित करे की बालकों की सुकुमार अवास्था का दुरुपयोग न हो।

A. अनुच्छेद 39(d) B. अनुच्छेद 31 C. अनुच्छेद 35 D. अनुच्छेद 36

2. बाल विवाह निषेध अधिनियम (शारदा एक्ट) किस वर्ष में पारित हुआ था

A. 1925 B. 1931 C. 1929 D. 1921

3. भारतीय संविधान के किस अनुच्छेद के अंतर्गत राज्य को यह निर्देश दिया गया है की वह सुनिश्चित करे की महिलाओं को मातृत्व लाभ (maternity benefits) उपलब्ध हो।

A. अनुच्छेद 31 B. अनुच्छेद 42 C. अनुच्छेद 45 D. अनुच्छेद 46

4. विश्व वृद्ध दिवस कब मनाया जाता है?

A. 1 अक्टूबर B. 2 अक्टूबर C. 3 अक्टूबर D. 4 अक्टूबर

7.15 सार संक्षेप

प्रस्तुत इकाई में विभिन्न प्रावधानों के वर्णन से आप सामाजिक विकास में इसकी प्रासंगिक्ता को समझ सकेगें। उक्त इकाई के वर्णन से आप ये जान गये होगें कि महिला सशक्तीकरण, युवा कल्याण, वृद्ध कल्याण शिक्षा स्वास्थ्य, आवास सामाजिक सुरक्षा, अनुसूचित जाति व जनजाति से सम्बन्धित विधान, अन्य पिछड़ा वर्ग से सम्बन्धित, एवं अल्पसंख्यक वर्ग से सम्बन्धित विधान समाज कल्याण में क्या भूमिका निभा सकते है, तथा ये कैसे सामाजिक व्यावस्था को सक्रिय रहते है।

7.16 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1–A [अनुच्छेद 39(d)], 2–C (1929), 3–B (अनुच्छेद 42), 4–A (1 अक्टूबर)

7.17 संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. कुलबीर सिंह, भारत में सामाजिक परिवर्तन, अनु प्रकाशन, मेरठ, 1976

2. फैक्वास पोराकस,ए न्यू कान्सेप्ट आफ डेवलपमेन्ट बेसिक टेनेटस यूरेस्को, पेरिस 1983

3. रत्ना दत्ता, वैलूज इन माडेल्स आफ मार्डर्नाइजेशन, विकास पब्लिकेशंस, दिल्ली, बाम्बे, बंग्लोर, कानपुर, लंदन, 1971

4. एन० जे० स्मेल्सर, सोशल चेन्ज इन दी इन्डस्ट्रियल रिवाल्यूशन, शिकागो :यूनिवर्सिटी आफ शिकागो प्रेस, 1959

5. डैविड सी० मैक्लीलैण्ड, दी अचीमिंग सोशायटी (प्रिंस्टन न्यू जेरेशी, डी बान नास्टैण्ड कम्पनी, इन्क 1961

6. डैनियल लर्नर, दी पासिंग आफ ट्रेडिशनल सोशायिटी (न्यू यार्क दी फ्री प्रेस, 1959)

7.18 निबंधात्मक प्रश्न

1. महिला सशक्तीकरण से सम्बन्धित दो विधानों की व्याख्या कीजिये।

2. युवा कल्याण की अवधारणा को समझाइये।

3. वृद्ध कल्याण की आवश्यकता को बताइये।

4. शिक्षा में प्रावधान की प्रासंगिकता पर टिप्पणी कीजिये।

5. स्वास्थ्य की अवधारणा को समझाइये।

6. आवास की अवधारणा को समझाइये।

7. सामाजिक सुरक्षा की अवधारणा को समझाइये।

8. अनुसूचित जाति व जनजाति से सम्बन्धित दो विधानों की व्याख्या कीजिये।

9. अन्य पिछड़ा वर्ग से सम्बन्धित दो विधानों की व्याख्या कीजिये।

10. अल्पसंख्यक से सम्बन्धित दो विधानों की व्याख्या कीजिये।

इकाई 8: पंचायती राज : अवधारणा एवं विकास

इकाई की रूपरेखा

8.1 प्रस्तावना

8.2 उद्देश्य

8.3 पंचायती राज की अवधारणा

8.4 स्वतंत्रता प्राप्ति से पूर्व ग्राम पंचायत का इतिहास

8.5 बलवंत राय मेहता कमेटी रिपोर्ट

8.6 पंचायती राज का ढांचा

8.7 पंचायती राज संस्था की संरचना एवं कार्य

8.8 सामाजिक विकास में सामुदायिक सहभागिता

8.9 शब्दावली

8.10 सार संक्षेप

8.11 शब्दावली

8.12 संदर्भ ग्रन्थ सूची

8.13 निबंधात्मक प्रश्न

8.1 प्रस्तावना

हमारा देश ग्राम प्रधान रहा है। 2001 की जनगणना के अनुसार देश की कुल जनसंख्या का 72.22 प्रतिशत गांवों में निवास करता है (भारत, 2009:16)। स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात सरकार ने ग्रामीण समुदाय के विकास पर ध्यान दिया। सरकार द्वारा ग्रामीण विकास को गतिशील करने के उद्देश्य से सामुदायिक विकास योजना 1952 एवं राष्ट्रीय विस्तार योजना 1953 प्रारम्भ की गयी परन्तु दुर्भाग्यवश यह योनजायें अपने लक्ष्य को प्राप्त नहीं कर सकी। बलवन्त राय मेहता कमेटी 1957 की संस्तुतियों के आधार पर त्रिस्तरीय पंचायती राज व्यवस्था सन् 1959 में देश में लागू की गयी। अशोक राय मेहता कमेटी, 1977 तथा जी० वी० के० राव कमेटी, 1985 ने पंचायती राज व्यवस्था को व्यक्तिोन्मुखी बनाने हेतु अमूल्य सुझाव दिये।

8.2 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के बाद आपः-

- पंचायती राज की अवधारणा को समझ सकेगें।
- स्वतंत्रता प्राप्ति से पूर्व ग्राम पंचायत का इतिहास को जान सकेगें।
- स्वतंत्रता पश्चात् पंचायती राज की अवधारणा को जान सकेगें।
- बलवंत राय मेहता कमेटी रिर्पोट की संस्तुतियों को जान सकेगें।
- पंचायती राज का ठाँचा संमझ सकगें।
- पंचायती राज संस्था की संरचना एवं कार्यों को समझ सकेगें।
- सामाजिक विकास में सामुदायिक सहभागिता को जान सकेगें।

8.3 पंचायती राज की अवधारणा

अनादिकाल से जब मानव छोटे-छोटे समूहों में बँटा था तो उन्हें संगठन की आवश्यकता पड़ी। अतः जब धीरे-धीरे, छोटे-छोटे समूह एक साथ संगठित रूप से रहने लगे तो इसी को ग्राम की संज्ञा दी गयी। ग्राम शब्द का शाब्दिक अर्थ समूह या समुदाय होता है। मिलजुलकर कार्य करना ही गाँव की परिभाषा है। इसी प्रकार से पंचायत शब्द का अर्थ है पंच आयत अर्थात् पंच शब्द संस्था एवं संख्या का वाचक है। पंचो का अर्थ है पांच पंच जोकि व्यापक अर्थों में ग्रामीण प्रतिनिधि समाज का प्रतिबोधक है तथा आयत शब्द का विस्तार से है। अतः सामूहिक रूप से गांवों के विकास का विस्तार करना ही पंचायत का मूल मंत्र रहा है।

8.4 स्वतंत्रता प्राप्ति से पूर्व ग्राम पंचायत का इतिहास तथा स्वतन्त्रता पश्चात पंचायती राज

ऐतिहासिक पृष्ठभूमि : भारतवर्ष में पंचायतें ग्रामीण शासन की पारम्परिक संस्थाएं रही हैं। वेदों में भी बार-बार सभा एवं समिति का वर्णन आया है जो ग्राम पंचायत का ही बोधक शब्द है। दयानन्द संस्थान, नई दिल्ली द्वारा प्रकाशित अथर्ववेद की पृष्ठ संख्या 141 में इसका आभास इस रूप में परिलक्षित होता है।

"सभा च मा समंतिश्चांवतां", महर्षि पावगी और अन्य पाश्चात्य विद्वानों ने भी उपरोक्त बातों की सम्पुष्टि की है। वैदिककाल की पंचायत व सभा में जाने का अधिकार सभी को समान रूप से था। वैदिककालीन पद्धति की सबसे बड़ी विशेषता यह थी कि उस समय लोग ग्राम में राष्ट्रहित ही नहीं अपितु पृथ्वी के कल्याण हेतु विश्व भर में एक ही शासन की घोषणा करने की सामर्थ्य भी रखते थे। वैदिककालीन पंचायत संगठन सुदृढ़ एवं सशक्त था। इसी दृष्टिकोण से अनुप्राणित व्यक्तियों को पंचायतों के पदवाहकों के रूप में समुदाय द्वारा निर्वाचित किया जाता था।

परिवर्ती काल में भी पंचायतों का अस्तित्व अक्षुण्ण रहा है। उपनिषदों और जातक कथाओं के काल में भी पंचायतों का अस्तित्व किसी न किसी रूप में अवश्य ही विद्यमान था। बुद्धकाल से लेकर मौर्यकालीन पंचायतों की गतिविधियों की झलक हमें कौटिल्य के "अर्थशास्त्र" में मिलती है। चन्द्रगुप्त मौर्य के शासनकाल में प्रत्येक गांव की अपनी सभा होती थी, गुप्त काल में ग्राम समितियों का विकास हो चुका था। मध्य भारत में इन्हें मण्डली और बिहार में इन्हें ग्राम जनपद कहते थे। चोल राजवंश के लेखों में तमिल देश में सभा और समिति के कार्यों का विस्तृत विवरण "अग्रहार" ग्रामों के बारे में मिलता है।

आठवीं शताब्दी के उपरान्त मुस्लिम शासकों के आगमन के पश्चात् भी गांव की स्थानीय व्यवस्थायें अपनी परम्परागत रीति में गतिशील रहीं क्योंकि अधिकांश यवन शासक राजनीतिक प्रमुख के पीछे पड़कर आर्थिक शोषण की नीति तक ही सीमित रहे और देश की ग्रामीण संस्कृति और व्यवस्था पर सीधी चोट उन्होंने कभी नहीं की हालांकि विभिन्न शोधों से इस बात की पुष्टि होती है कि मुस्लिम काल में पहले तो ग्रामीण संस्थायें पूर्णतया सुरक्षित रहीं किन्तु कालान्तर में निरन्तर युद्धों के कारण उनकी जड़े उखड़ने लगी थी। भारत की प्राचीन व्यवस्था को सबसे पहला आघात ब्रिटिश शासनकाल में लगा क्योंकि इस अवधि में प्रशासन के सभी क्षेत्रों में केन्द्रीकरण की प्रवृत्ति की प्रमुखता रही और पंचायतों का अस्तित्व इस काल में जाति पंचायतों के रूप में ही सिमटकर रह गया। परन्तु सत्ता हथियाने के बाद अंग्रेज शासन ने सोचा कि भारत जैसे विशाल व ग्राम प्रधान देश में केन्द्रीकरण की प्रक्रिया जटिल व अव्यवहारिक है। अतः 1870 में लार्ड मेयो वायसराय के काल में स्थानीय स्वशासन के सूत्र संजोने के उपक्रम का प्रारम्भ करके विकेन्द्रीकरण की नीति की ओर सुविचारित दृष्टिकोण अपनाना प्रारम्भ कर दिया गया। 1909 में ब्रिटिश सरकार द्वारा विकेन्द्रीकरण के कारण कोई ठोस कदम नहीं उठाया जा सका। 1915 में सरकार ने एक प्रस्ताव पारित कर यह सुझाव दिया कि न केवल गाँव पंचायतों की स्थापना की जाए, बल्कि उनको आर्थिक सहायता देकर कारगर स्वरूप भी प्रदान किया जाए। विभिन्न कारणों से पंचायतें ब्रिटिश काल में गांव में अपना कोई प्रभावशाली अस्तित्व न बना सकी। 1982 में लार्ड रिपन के स्थानीय स्वायत्त शासन से सम्बन्धित प्रस्ताव तथा मोण्ट फोर्ट सुधारों के अन्तर्गत देश के अधिकांश भागों में और रियासतों में 1991 और 1940 के मध्य ग्राम पंचायतों की स्थापना ब्रिटिश काल की विशेषता रही। ब्रिटिश काल में ग्राम पंचायत सम्बन्धी अनेक विधेयक पारित हुए, यथा-बंगाल गवर्नमेन्ट एक्ट 1919, दि मद्रास पंचायत एक्ट 1920, दि बिहार सेल्फ गवर्नमेन्ट एक्ट 1920, पंजाब पंचायत एक्ट आदि। उत्तर प्रदेश में इस काल में यू.पी. ग्राम पंचायत अधिनियम, 1920 पास किया गया। इस अधिनियम में सबसे बड़ी कमी यह थी कि इसका संगठन स्थानीय लोकलन्त्र से समबद्ध न होकर प्रशासन तन्त्र के द्वारा गठित एक ईकाई के रूप में हुआ। वर्ष 1937 में उत्तर प्रदेश में कांग्रेस के सत्ता में आने पर राज्य सरकार द्वारा स्थानीय संस्थाओं के संगठनों और कार्य प्रणाली का अध्ययन कर उनके संवर्धन का उपाय सुझाने हेतु एक अध्ययन दल का गठन खेर कमेटी के रूप में किया गया। खेर कमेटी ने 1939 में अपनी रिपोर्ट दी, किन्तु द्वितीय विश्व युद्ध के कारण कांग्रेस सरकार ने इस्तीफा दे दिया और खेर कमेटी की रिपोर्ट पर आगे कोई कार्यवाही नहीं हो सकी। वर्ष 1946 में कांग्रेस के पुनः सस्ता में आते ही यू.पी. ग्राम पंचायत बिल बनाया गया जो स्वतंत्र भारत में यू.पी. पंचायत राज अधिनियम, 1947 के रूप में लागू किया गया। स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात भारतीय संविधान के राज्यों के नीति निर्देशक सिद्धान्त के अन्तर्गत अनुच्छेद-40 में आधारभूत स्तर पर लोकतांन्त्रिक संस्थाओं के महत्व को मान्यता देते हुए यह कहा गया है कि राज्य ग्राम पंचायतों को संगठित करने के लिए उपाय करेगा और उन्हें ऐसी शक्तियाँ और अधिकार प्रदान करेगा. जो उन्हें स्वतन्त्र शासन की ईकाई के रूप में कार्य करने के लिए आवश्यक हो।

8.5 बलवंत राय मेहता कमेटी रिपोर्ट

1957 में सरकार ने पंचायतों के विकास पर सुझाव देने के लिए श्री बलवंत राय मेहता की अध्यक्षता में एक समिति का गठन किया। इस समिति ने अपनी रिपोर्ट प्रस्तुत की इस रिपोर्ट में यह सिफारिश की गयी कि सामुदायिक विकास कार्यक्रमों को सफल बनाने के लिए पंचायती राज संस्थाओं की तुरन्त स्थानपा की जानी चाहिए। इसे लोकतान्त्रिक विकेन्द्रीकरण का नाम दिया गया। मेहता कमेटी के अपनी निम्नलिखित सिफारिशें रखी।

1. ग्राम स्तर पर ग्राम पंचायत, खण्ड (ब्लाक) स्तर पर पंचायत समिति और जिला स्तर पर जिला परिषद । अर्थात् पंचायतों की त्रिस्तरीय संरचना बनायी जाये।

2. पंचायती राज में लोगों को सत्ता का हस्तानोतरण किया जाना चाहिए।

3. पंचायती राज संस्थाएं जनता के द्वारा निर्वाचित होनी चाहिए और सामुदायिक विकास कार्यक्रम के अधिकारी उनके अधीन होने चाहिए।

4. साधन जुटाने व जन सहयोग के लिए इन संस्थाओं को पर्याप्त अधिकार दिये जाने चाहिए।

5. सभी विकास संबंधी कार्यक्रम व योजनाएं इन संगठनों के द्वारा लागू किये जाने चाहिए।

6. इन संगठनों को उचित वित्तीय साधन सुलभ करवाये जाने चाहिए।

राजस्थान वह पहला राज्य है जहां पंचायती राज की स्थापना की गयी। 1958 में सर्वप्रथम पंडित जवाहरलाल नेहरू ने 2 अक्टूबर को राजस्थान के नागौर जिले में पंचायती राज का दीपक प्रज्जवलित किया और धीरे धीरे गांवों में पंचायती राज का विकास शुरू हुआ। सत्ता के विकेन्द्रीकरण की दिशा में यह पहला कदम था। 1959 में आन्ध्र प्रदेश में भी पंचायती राज लागू किया गया। 1959 से 1964 तक के समय में 'विभिन्न राज्यों में पंचायती राज संस्थाओं को लागू किया गया और इन संस्थाओं ने कार्य प्रारम्भ किया। लेकिन इस राज से ग्रामीण तबके के लोगों का नेतृत्व उभरने लगा जो कुछ स्वार्थी लोगों की आँखों में खटकने लगा, क्योंकि वे शक्ति व अधिकारों को अपने तक ही सीमित रखना चाहते थे। फलस्वरूप पंचायती राज को तोड़ने की कोशिशें भी शुरू हो गयीं। कई राज्यों में वर्षो तक पंचायतों में चुनाव ही नहीं कराये गये। 1969 से 1983 तक का समय पंचायती राज व्यवस्था के ह्रास का समय था। लम्बे समय तक पंचायती राज संस्थाओं के चुनाव नहीं करवाये गये और ये संस्थाएं निष्क्रीय हो गयी।

8.6 पंचायती राज का ढांचा

पंचायतों को शक्तियों तथा कार्यों के हस्तानान्तरण का ढांचा: संविधान की ग्यारहवीं अनुसूची में शामिल 29 विषयों के बारे में पंचायती राज संस्थाओं को शक्तियों तथा उत्तरदायित्वों के हस्तानान्तरण के लिए राष्ट्रीय ग्राम्य विकास संस्थान ने एक ढांचा सुझाया है। सुझाये गये ढांचे इन विषयों के बारे में पंचायतों के तीनों स्तरों के बीच कार्यों के बंटवारे के बारे में विस्तारपूर्वक वर्णन किया है। लेकिन इसमें राज्यों के बारे में कोई दिशा-निर्देश नहीं दिया गया है। यदि ये कार्य पंचायतों को हस्तानान्तारित किये जाते हैं तो वे स्थानीय शासन की ईकाइयों की तरह कार्य नहीं कर पायेंगी।

भारत सरकार के मानव संसाधन विकास मंत्रालय द्वारा 1993 में गठित शिक्षा की विकेन्द्री प्रबन्धन समिति द्वारा पंचायतों के तीनों स्तरों के बीच शैक्षणिक कार्यों के निर्धारण का बेहतर सुझाव दिया गया है। राष्ट्रीय ग्राम्य संस्थान तथा शिक्षा की विकेन्द्रीकरण प्रबन्धन समिति द्वारा मानव संसाधन विकास के बारे में सुझाव गये ढांचों की तुलना से कई बाते स्पष्ट होती है।

राष्ट्रीय ग्राम्य विकास संस्थान के हस्तानान्तरण ढांचे में पंचायतों को सहायक प्रेरक तथा पर्यवेक्षक एजेन्सी बना दिया गया है। इसमें राज्यों के लिए ऐसा कोई सुझाव नहीं हैं जिसके द्वारा पंचायतें अनुमोदनकर्ता, स्वीकृतिदायक तथा नियामक एजेन्सियां बनाई जा सकें। दूसरी ओर शिक्षा की विकेन्द्रीकरण प्रबन्धन समिति पंचायतों को नियामक शक्ति देने की अनुशंसा करती है। इसके अलावा इसमें शिक्षा समिति संरचना तथा उसके समर्थन के लिए वित्त निर्धारण एवं संगठनात्मक प्रशासन का भी प्रावधान है।

अतः राष्ट्रीय ग्राम्य विकास संस्थान द्वारा ग्रामीण क्षेत्र एवं रोजगार मंत्रालय की पहल पर सुझाए गए हस्तानान्तरण के ढांचे में संविधान के अनुच्छेद 243 ‘जी’ के शब्दों तथा भावनाओं का ध्यान नहीं रखा गया है। इससे यह भी दिखता है कि एक शीर्ष संस्थान के रूप में राष्ट्रीय ग्राम्य विकास संस्थान के ढांचे को सुझाने से पहले पंचायतों को सुदृढ़ करने के लिए अभी तक के प्रयासों का ठीक से अध्ययन नहीं किया है। राज्यों के पंचायत मंत्रियों बैठकों में राज्यों से कहा गया है कि वे राष्ट्रीय ग्राम्य विकास संस्थान द्वारा सुझाये गये हस्तानान्तरण के ढांचे को ध्यान में रखते हुए पंचायतों को शक्तियां हस्तानान्तरित करें।

केन्द्र पोषित योजनाएँ: ऊपर हमने संविधान क अनुच्छेद 243 ‘जी’ के क्रियान्वयन में भारत सरकार द्वारा निभाई गई भूमिका पर चर्चा की। प्रश्न उठता है कि यदि केन्द्र पंचायती राज को सुदृढ़ करने में इतना गम्भीर है तो उसने संविधान की 11वीं अनुसूची में शामिल कार्यो से मिलते-जुलते कार्यों को केन्द्र पोषित योजनाओं के तहत क्यों रखा? आगे हम संशोधन अधिनियम के पारित होने के बाद भारत सरकार द्वारा शुरू की गई केन्द्र प्रयोजित योजनाओं पर चर्चा करेंगे।

इनमें से पहली है- सांसदों की स्थानीय क्षेत्र विकास योजना। संविधान के 73वें तथा 74वें संशोधन के पारित होने के एक वर्ष के बाद प्रधानमंत्री ने संसद में घोषणा की हर सांसद अपने क्षेत्र क जिलाधिकारी को हर वर्ष रूपये 1 करोड़ तक के कार्य करने की सलाह दे सकता है। संयोग से इस योजना के तहत किये जाने वाले सभी 23 कार्य 11वीं अनुसूची के 29 विषयों में से हैं। अतः यह योजना पूरी तरह से संविधान संशोधन अधिनियम के शब्दों तथा भावनाओं के पूर्णतः विपरीत है।

संसद द्वारा 73वां संविधान संशोधन अधिनियम पारित करने के लगभग 3 वर्षो के बाद 15 अगस्त 1995 को प्रधानमंत्री ने तीन केन्द्र पोषित योजनाओं की घोषणा की है। ये योजनाएं हैं- राष्ट्रीय सामाजिक संग्राहता कार्यक्रम, ग्रामीण समूी जीवन बीमा आदि। ये योजनाएं भी विकेन्द्रीकरण की भावना से विपरीत है। सिद्धानत रूप से केन्द्र पोषित योजनाएं अन्तर्राज्यीय प्रकृति की योजनाओं, राष्ट्रीय सुरक्षा के मामलों तथा चयनित राष्ट्रीय प्राथमिकताओं, जहाँ केन्द्रीय पर्यवेक्षक प्रभावी क्रियान्वयन के लिए आवश्यक है तथा विदेशी सहायता प्राप्त बहुराज्यीय परियोजनाओं, जहाँ केन्द्रीय संयोजन क्रियान्वयन के लिए आवश्यक है, तक सीमित रहनी चाहिए। केन्द्र द्वारा पोषित ये पांच केन्द्र वित्त पोषित योजनाएं मूलरूप से गलत हैं क्योंकि इनसे केन्द्र उन स्थानों में घुसपैठ कर लेता है जो वैधानिक रूप से पंचायतों के लिए सुरक्षित है। फरवरी 1997 में केन्द्र ने एक अन्य केन्द्र पोषित योजना लागू की है। यह योजना है गंगा जल योजना पुनः यह योजना संविधान के 73वें संशोधन के अनुरूप नहीं है।

जिला परियोजना समिति: नगर निकायों से सम्बन्धित संविधान के 74वें संशोधन अधिनियम 1992 के अनुच्छेद 243 'जेड-जी में जिला स्तर पर जिला नियोजन समिति बनाने के बारे में प्रावधान है। जिला नियोजन समिति का काय है जिलों में पंचायतों तथा नगर निकायों द्वारा तैयार की गई योजनाओं का समेकन तथा पूरे जिले के विकास की योजना तैयार करना। इस समिति का संवैधानिक स्वरूप संलग्न में दिया गया है। अतः वास्तविक अर्थ में जिला नियोजन समिति, जिला स्तर पर शासन का तीसरा स्तर है। इसका कार्य विकास तथा सामाजिक न्याय की गतिविधियां है।

243 जॅड-डी. जिला परियोजना के लिए समिति

1. प्रत्येक राज्य में जिला स्तर पर एक जिला परियोजना समिति का गठन होगा जो पूरे जिले के लिए एक ड्राफ्ठ विकास कार्यक्रम तैयार करने व जिले में पंचायतों व नगर पालिकाओं द्वारा तैयार किये गये कार्यक्रमों को संगटित करने का कार्य करेगी।

2. एक राज्य का विधान मण्डल, कानून द्वारा निम्न के सम्बन्ध में प्रस्ताव बनाएगा

अ. जिला परियोजना समितियों की संरचना

ब. वह तरीका जिसमें इस प्रकार की समितियों के पद भरे जायेगें। लेकिन शर्त यह है कि इस समिति की कुल सदस्य संख्या में से 4/5 सदस्य जिला स्तर पर पंचायतों के निर्वाचित सदस्यों में से तथा जिले में नगर निकायों के सदस्यों में से ग्रामीण तथा शहरी जनसंख्या के समानुपात में चुने जायेंगे।

स. जिला परियोजना के कार्य जो इन समितियों को प्रदान किये गये हैं।

द. वह तरीका जिसके द्वारा इन समितियों के अध्यक्षों को चुना जाना है।

3. ड्राफ्ट विकास कार्यक्रम तैयार करने में प्रत्येक जिला परियोजना समिति

अ. निम्न का ध्यान रखें

1. पंचायतों तथा नगरपालिकाओं के मध्य उभयनिष्ठ हितों के मामले इनमें भौगोलिक परियोजना, पानी का बंटवारा, तथा अन्य भौतिक एवं प्राकृतिक संसाधन, अवसंरचना का एकीकृत विकास तथा पर्यावरण संरक्षण भी शामिल हो।

2. उपलब्ध संसाधनों की मात्रा पर व प्रकार या तो वित्तीय अथवा अन्य

ब. राज्यपाल के आदेश से निर्देशित संस्थाओं और संगठनों के साथ परामर्श ब. करना।

73वां संविधान संशोधन : पंचायती राज व्यवस्था को स्थापित करने के प्रयासों को संविधान में 73वें संशोधन के रूप में कानूनी दर्जा मिला। मूल संविधान के 40वें अनुच्छेद के अनुसार सरकार ग्राम पंचायतों को संगठित करने करने के उपाय करेगी तथा उन्हें ऐसी शक्तियों, अधिकारों से परिपूतिरत करेगी जो उन्हें स्वशासन की ईकाईयों के रूप में

कार्य करने में समर्थ बनाने हेतु आवश्यक है। 73वें संशोधन के द्वारा इसी धारणा को व्यवस्थित तथा परिभाषित करने का प्रयास किया है।

अवधारणा

1. स्थानीय स्तर पर शासन में लोगों की भागीदारी सुनिश्चित करना।

2. ग्रामीणों की सहभागिता पर ग्राम विकास की योजनायें बनाना।

3. अपने गांव के विकास कार्यक्रमों के क्रियान्वयन में गाँव के लोगों की जिम्मेदारी का अभ्यास कराना।

4. ग्राम विकास योजनाओं, कार्यक्रमों, नियोजन आदि से गाँव वालों को लाभान्वित कराना।

5. शक्तियों का विकेन्द्रीकरण "केन्द्र के स्थानीय स्तर तक" कराना। 6. ग्राम सभा तथा पंचायतों को सशक्त करने की दिशा में संवैधानिक एवं लोकतांत्रिक प्रक्रिया की शुरूआत कराना।

उपरोक्त सोच के परिणाम स्वरूप संशोधन में मुख्य रूप से निम्नवत् प्रावधान किये गये

संशोधन की विशेषताएं

1. नये पंचायत राज अधिनियम के अनुसार स्थानीय शासन की ईकाइयों (ग्राम, क्षेत्र और जिला पंचायत) सामाजिक तथा आर्थिक विकास की योजनाओं की क्रियान्चित करने की संभावनाएं हैं।

2. महिलाओं तथा गरीब तबकों को सशक्त करने की दिशा में यह एक अच्छा कदम है। इसने देश की शासन व्यवस्था को अधिक संतुलित बना दिया है।

3. इस संशोधन के अनुसार स्थानीय स्वशासन की तीन स्तरों पर गाँव, क्षेत्रीय एवं जिला में विभाजित किया गया है।

4. पंचायत के तीनों स्तर की सभी जगहें सीधे चुनाव के द्वारा भरी जायेंगी।

5. तीनों स्तरों पर महिलाओं के लिए 33 प्रतिशत स्थान आरक्षित है। इसके अलावा अनुसूचित जाति/जनजाति तथा पिछड़े वर्ग के लिए भी उनकी जनसंख्या के आधार पर तीनों स्तरों पर स्थान आरक्षित किये गये हैं।

6. सभी पंचायतों का कार्यकाल 5 वर्ष तक होगा और अवधि समाप्त होने से पहले नई पंचायत का चुनाव होना चाहिए।

7. अवधि समाप्ति से पहले विद्यमान किसी को भी किसी धारा आदि के द्वारा बाहरी दखल से भंग नहीं किया जा सकेगा

8. हर राज्य में एक स्वतंत्र निर्वाचन आयोग की स्थापना होगी, जो निर्वाचन प्रक्रिया एवं निर्वाचन कार्यों का निरीक्षण एवं नियंत्रण करेगा।

9. ग्राम पंचायत के दो तिहाई सदस्य ग्राम प्रधान के विरूद्ध अविश्वास प्रस्ताव ला सकते हैं।

10. सामाजिक तथा आर्थिक विकास योजनाएं जैस शिक्षा स्वास्थ्य एवं सफाई, भूमि सुधार, कुटीर उद्योग, लघु सिंचाई आदि, के उद्देश्यों को मद्देनजर रखते हुए पंचायतों को ग्यारहवीं सूची के अन्तर्गत अधिकार दिये गये हैं। इन अधिकारों के अतिरिक्त उद्देश्यों की पूर्ति के लिए सरकार समय-समय पर ग्राम पंचायतों को कुछ योजनाएं जैसे जवाहर रोजगार योजना, इन्दिरा विकास योजना, ट्राइसेम आदि सौंप सकती है।

11. पंचायतों द्वारा कार्यों को क्रियान्वित करने के लिए राज्य वित्त आयोग का भी गठन किया गया है, जो पंचायतों को वित्तीय सहायता प्रदान करेगी। हर पांच साल बाद नये वित्त आयोग का पुनर्गठन होगा।

12. पंचायत अपनी कार्यप्रणाली को सुचारू रूप से चलाने के लिए पर्याप्त मात्रा में धन मद्र भी प्राप्त रहेंगी।

13. एक साल के भीतर ही हर राज्य में एक वित्त आयोग बनाया जायेगा जो हर पांचवे वर्ष बाद पंचायतों के लिए सुनिश्चित आर्थिक संशाधनों के सिद्धान्तों के आधार पर निर्धारण करेगा।

तात्कालीक ग्रामीण विकास मंत्री ने विधेयक को संसद में प्रस्तुत करते हुए कहा था कि पंचायतों को स्वायत्त शासन की संस्थाएं बनाने की जिम्मेदारी केन्द्र तथा राज्य दोनों की है। यह अधिनियम गाँव में पंचायतों को स्वायत्व शासन की संस्थाएं बनाते हुए महात्मा गांधी के ग्राम स्वराज के सपने को साकार करने की ओर प्रयास है। पंचायतों को स्वायत्त शासन की संस्थाएं बनाने के लिए तीन बातें पूरी करना आवश्यक है।

1. संस्थागत - अर्थात् निर्णय जनप्रतिनिधियों द्वारा लिया जाना।

2. संस्था की क्षमता अर्थात् संस्था को स्वतंत्र रूप से नियम बनाने की शक्ति प्रदान होना।

3. वित्तीय रूप में सक्षम अर्थात् अपने दायित्व के निर्वाह के लिए आवश्यक स्रोत उपलब्ध होना।

अधिनियम में पंचायतों को शक्ति व दायित्व देने का अधिकार राज्य विधान मण्डल को दिया गया तथा यह निर्देशित किया कि राज्य सरकारें एक वर्ष के दौरान इस अधिनियम को ध्यान में रखकर पंचायत अधिनियमों को संशोधित करेंगी। अतः राज्य सरकारों ने अपने-अपने पंचायत राज अधिनियम में आवश्यक संशोधन किये। उत्तर प्रदेश में 22 अप्रैल 1994 को संशोधन पारित किया गया तथा 1995 में पंचायत चुनाव कराये गये।

4. राज्य सरकार के लिए इन समितियों द्वारा की गई सिफारिशों के अनुसार प्रत्येक जिले की परियोजना समिति का चेयरमैन / अध्यक्ष इन विकास कार्यक्रमों का अनुमोदन / अग्रसरण करता होगा।

ग्राम सभा : ग्राम सभा का तात्पर्य गाँव में रहने वाले उस प्रत्येक नागरिक समूह से है जिसमें शामिल व्यक्ति का नाम गाँव की मतदाता सूची में दर्ज होता है तथा वह ग्राम के सदस्य के रूप में स्वतंत्र रूप से अपना नेता चुन सकता है। जहाँ पर एक से अधिक ग्राम इसमें शामिल है वहाँ सबसे अधिक आबादी बाले ग्राम के नाम पर ग्राम सभा का नाम

रखा जायेगा। ग्राम सभा में शामिल प्रत्येक नागरिक जिसे मत देना है उसकी न्यूनतम उम्र 18 वर्ष तथा ग्राम पंचायत के सदस्य के रूप में चुनाव लड़ने के लिए न्यूनतम उम्र 21 वर्ष आवश्यक होगी।

ग्राम पंचायत तथा ग्राम सभा के बीच सम्बन्ध

1. एक ग्राम सभा के एक निश्चित समुदाय के वे सभी लोग होते हैं जो मतदान कर सकते हैं जबकि ग्राम पंचायत में मात्र चुन प्रतिनिधि।

2. ठीक प्रकार से कार्य कर रही ग्राम पंचायत चुने हुए प्रतिनिधियों का एक निकाय होता है जिसमें शक्तियां भी निहित होती हैं।

3. राज्य द्वारा जो अधिकार तथा कार्य दिये जाते हैं वे ग्राम पंचायत के द्वारा सम्पन्न किये जाते हैं तथा ग्राम सभा के लिए होते हैं तथा ग्राम पंचायत उसके लिए जिम्मेदार होती है। ग्राम सभा उसकी लाभार्थी समूह के रूप में होती है।

4. यदि ग्राम पंचायत का कोई सदस्य प्रस्ताव लाना चाहे या प्रश्न पूछना चाहे तो वह इसकी सूचना दस दिन पहले प्रधान, उप-प्रधान या पंचायत सचिव को देगा।

बैठक का बुलावा: बैठक बुलाने का अधिकार प्रधान को होगा तथा उसकी अनुपस्थिति में उप-प्रधान बैठक बुला सकेगा। प्रधान किसी भी समय सूचना देकर असाधारण बैठक बुला सकेगा। ग्राम सभा के सदस्यों द्वारा जिनकी संख्या 1/5 से कम न हो, की मांग पर क्षेत्र पंचायत द्वारा लिखित रूप से मांग करने पर तथा जिला पंचायत राज अधिकारी द्वारा लिखित रूप से मांग करने पर प्रधान तीस दिन के अन्दर बैठक बुला सकेगा।

मुख्यतः प्रावधान है कि बैठक तभी आयोजित होगी जब सारे सदस्यों का कम से कम 1/5 मौजूद होगा। परन्तु हमेशा यह आवश्यक नहीं है। एक बार कोरम पूरा न होने की स्थिति में यदि बैठक स्थगित कर दी जाती है तो दोबारा बैठक के लिए कोरम पूरा होने की आवश्यकता नहीं होगी।

ग्राम सभा की बैठक की कार्यवाही

1. गत बैठक की कार्यवाही पढ़कर सुनाई जाएगी, उसकी पृष्टि की जायेगी और प्रधान उस पर हस्ताक्षर करेगा।

2. गत बैठक का हिसाब प्रस्तुत किया जायेगा और उस पर विचार किया जायेगा।

3. सूचना में लिखे विषयों पर विचार किया जायेगा।

4. इसके पश्चात् अन्य विषयों पर विचार किया जायेगा।

कार्यवाही : कार्यवाही का हिन्दी में रखा जाना ग्राम सभा की बैठकों व कार्यवाहियों का हिन्दी में एक संक्षिप्त विवरण रजिस्टर (नं. 8) में लिखा जायेगा। बैठक के पश्चात् कार्यवाहियों की एक प्रतिलिपि निर्धारित अधिकारी (सहायक विकास/बी. डी.ओ.) पास सात दिन के अन्दर भेजी जायेगी।

ग्राम सभा के कार्य

1. ग्राम पंचायत के खातों का वार्षिक विवरण, पिछले वित्तीय वर्ष के प्रशासन की रिपोर्ट और अन्तिम लेखा परीक्षा टिप्पणी की देखरेख करेगी।

2. पिछले वर्ष से सम्बन्धित ग्राम पंचायत के विकास कार्यक्रमों और चालू वित्तीय वर्ष के दौरान किये जाने के लिए प्रस्तावित विकास कार्यक्रमों की रिपोर्ट का अवलोकन करेगी।

3. ग्राम में समाज के सभी वर्गों के बीच एकता व समन्वय की अभिवृद्धि करना।

4. ग्राम के भीतर प्रौढ़ शिक्षा का कार्यक्रम संचालित करना।

5. ग्राम सभा, ग्राम पंचायत तथा इसके कर्मियों के कार्यों को सुपरवाइज तथा अनुश्रवण करेगी।

6. ऐसे अन्य मामले जैसे कि ग्राम पंचायत, क्षेत्र पंचायत या जिला पंचायत द्वारा नियत किये जायें, को करना।

7. विकास के सन्दर्भ में निर्णय की प्रक्रिया में जन-सामान्य की भागीदारी बढ़ाने का प्रयास करना।

8. सामुदायिक कल्याण कार्यक्रमों के लिए स्वैच्छिक श्रम व अंशदान जुटाने का प्रयास करना।

9. ग्राम से सम्बन्धित विकास योजनाओं के कार्यान्वयन के लिए लाभार्थियों की पहचान करना।

10. ग्राम से सम्बन्धित विकास योजनाओं के क्रियान्वयन में सहायता पहुंचाना।

11. राज्य सरकार द्वारा दिये गये कोई अन्य कार्य जिसके लिए राज्य सरकार ग्राम सभा को उपयुक्त समझती है।

ग्राम पंचायत: ग्राम सभा के गठन के उपरान्त निर्वाचन होगा जिसमें प्रधान तथा सदस्यों से ग्राम पंचायतों का गठन किया जायेगा। निर्वाचित प्रधान एवं सदस्यों को सहायक विकास अधिकारी (ए.डी.ओ.) ब्लॉक विकास अधिकारी (बी.डी.ओ.), परगनाधिकारी (एस.डी.एम) तथा जिलाधिकारी (डी.एम.) आदि में से किसी एक के साथ शपथ दिलाई जायेगी। इसके उपरान्त वे अपने पद पर आसीन समझे जायेंगे। एक हजार की आबादी पर किसी ग्राम या ग्राम के समूह क्षेत्र को राज्य सरकार पंचायत क्षेत्र घोषित कर सकती है (धारा-11च) परन्तु किसी राजस्व ग्राम को या उसके मजरे को नहीं तोड़ा जायेगा।

ग्राम पंचायत के सदस्य: ग्राम पंचायत में एक प्रधान होगा और 1000 की आबादी तक 9 पंचायत सदस्य होंगे। इसके अतिरिक्त 2000 की आबादी तक 11 सदस्य, 3000 की आबादी तक 13 सदस्य तथा 3000 से अधिक आबादी पर 15 सदस्य होंगे।

ग्राम पंचायत की बैठक: ग्राम पंचायत की माह में एक बैठक होना आवश्यक होगा। बैठक उस स्थान पर बुलाई जायेंगी जहाँ पर पंचायत का कार्यालय होगा या अन्य कोई सार्वजनिक स्थान।

बैठक की सूचना: पंचायत सदस्यों को कम से कम पांच दिन पहले बैठक की सूचना लिखित रूप से दी जायेगी। इसका प्रकाशन खास-खास स्थानों पर सूचना चिपकवा कर किया जायेगा।

बैठक का बुलावा : ग्राम पंचायत की बैठक को बुलाने का पूर्ण अधिकार प्रधान का होगा प्रधान की अनुपस्थिति में उप-प्रधान बैठक बुला सकेगा। यदि पंचायत के 1/3 सदस्य किसी भी समय हस्ताक्षर कर लिखित रूप से बैठक बुलाने के लिए कहें तो भी प्रधान को पत्र मिलने के 15 दिन के अन्दर बैठक बुलानी होगी।

कोरम : प्रधान तथा उप-प्रधान को मिलाकर पंचायत सदस्यों के एक तिहाई सदस्यों की उपस्थिति बैठक का कोरम होगी। यदि कोरम पूरा न होने के कारण बैठक सम्पन्न नही हो पाती है तो दुबारा सूचना देकर बैठक बुलाई जा सकती है इसमें कोरम का पूर्ण होना आवश्यक नहीं होगा।

बैठक की अध्यक्षता : ग्राम पंचायत की बैठक की अध्यक्षता साधरणतया प्रधान द्वारा ही

की जायेगी परन्तु प्रधान की अनुपस्थिति में उप-प्रधान तथा दोनों की अनुपस्थिति में प्रधान द्वारा लिखित रूप देने पर मनोनीत सदस्य अध्यक्षता करेगा। प्रधान द्वारा किसी भी सदस्य को मनोनीत न करने पर सहायक विकास अधिकारी (ए.डी.ओ.) पंचायत अध्यक्षता के लिए सदस्य मनोनीत करेगा।

बैठक की कार्यवाही

1. बैठक में पिछली बैठक की कार्यवाही पढ़कर सुनाई जायेगी और उसकी पुष्टि के बाद प्रधान उस पर हस्ताक्षर करेंगे। पिछले महीने के हिसाब-किताब को बैठक में रखा जायेगा।

2. जो सूचना निर्देश व आदेश मिले हैं, उन्हें पढ़कर सुनायी जायेगा।

3. उस समय के विकास कार्यों की जानकारी दी जायेगी।

4. पंचायत समितियों के कार्य पढ़कर सुनाये जायेंगे।

5. पंचायत सदस्यों द्वारा आवश्यक प्रश्न पूछे जा सकेंगे जोकि पंचायत से जुड़े होंगे।

6. कार्यवाही की लिखा-पढ़ी हिन्दी में की जायेगी तथा कार्यवाही की नकल साल दिन के अन्दर ए.डी.ओ. पंचायत के समक्ष प्रस्तुत करना होगा।

ग्राम पंचायत का कार्यकाल: कोई भी ग्राम पंचायत पहली बैठक के लिए तय की गयी तारीख से 5 साल तक बनी रहेगी। यदि 5 वर्ष से कम से कम 6 महीने उसे भंग किया जाता है (धांरा 12 (37) तो पुनः चुनाव करना आवश्यक होगा। दुबारा चुनी गयी पंचायत का कार्यकाल सामान्य समय (5 वर्ष) से बचे हुए समय के लिए होगा।

ग्राम पंचायत के प्रधान व उप-प्रधान

ग्राम पंचायत का एक प्रधान व एक उप-प्रधान होंगे जो ग्राम सभा के अध्यक्ष व उपाध्यक्ष भी होंगे। पंचायत में आबादी के अनुसार 9 से 15 तक सदस्य होंगे। प्रधान तथा उप-प्रधान के पद तभी तक अस्तित्व में रहेंगे जब तक ग्राम पंचायत भंग नहीं हो जाती है। ग्राम पंचायत के सभी सदस्य तथा अन्य समितियों के सदस्य लोक सेवक समझे जायेंगे। (धारा-28)

ग्राम पंचायत का सदस्य किसी बैठक में कोई संकल्प प्रस्तुत कर सकेगा तथा ग्राम पंचायत के प्रशासन से सम्बन्धित विषयों पर प्रधान या उप-प्रधान से प्रश्न पूछ सकेगा। (धारा-26)

आरक्षण

आबादी के अनुपात से अनुसूचित जाति के लिए 21 प्रतिशत, अनुसूचित जनजाति के पद 2 प्रतिशत तथा पिछड़ी जाति के लिए 27 प्रतिशत आरक्षण की व्यवस्था की जायेगी। प्रत्येक वर्ग की महिलाओं को एक तिहाई आरक्षण उनके अनुपात से दिया जायेगा। ग्राम पंचायत के सदस्यों के लिए भी आरक्षण उपरोक्त क्रम से ही किया जायेगा। किन्तु कुल आबादी में अनुसूचित जाति/जनजाति व पिछड़े वर्ग का हिस्सा ग्राम पंचायत की कुल आबादी में देखा जायेगा न कि पूरे प्रदेश की आबादी में।

प्रधान का चुनाव

राज्य के समस्त पंचायतों के चुनाव की व्यवस्था राज्य निर्वाचन आयोग द्वारा की जायेगी। प्रधान ग्राम सभा के सदस्य अपने में से किसी एक व्यक्ति को प्रधान के रूप में चुनेंगे।

प्रशासनिक समिति का प्रशासनः

किसी विशेष परिस्थिति में यदि पंचायत में ग्राम प्रधान का चुनवा नहीं हो पाता है और दो-तिहाई से कम सदस्य ही चुने जाते हैं तो राज्य सरकार द्वारा एक प्रशासनिक समिति बनायी जायेगी। इस समिति में वे व्यक्ति सदस्य होंगे जो ग्राम पंचायत सदस्य चुने जाने की योग्यता रखते हों। यह समिति या प्रशासन 6 माह तक कार्य करेगा और इसको इस काल के लिए गठित ग्राम पंचायत समझा जयेगा। इस समिति को ग्राम पंचायत तथा उसकी समितियों और प्रधान के सभी अधिकार मिले माने जायेगें।

अविश्वास प्रस्तावः

प्रधान या उप-प्रधान को हटाने के प्रस्ताव पर ग्राम पंचायत के आधे सदस्यों के हस्ताक्षर से एक लिखित नोटिस जिला पंचायत राज अधिकारी को दी जायेगी। नोटिस में उन कारणों को भी लिखा जायेगा। जिसके कारण प्रधान या उप-प्रधान को हटाया जाना है तथा इस प्रस्ताव को तीन सदस्यों की उपस्थिति में ही जिला पंचायत राज अधिकारी के समक्ष प्रस्तुत किया जायेगा बैठक में उपस्थित और वोट देने वाले सदस्यों को दो-तिहाई बहुमत से प्रधान/उप-प्रधान को हटाया जा सकता है। प्रधान तथा उप-प्रधान को हटाने के लिए कोई बैठक उसके चुनाव के एक वर्ष के भीतर नहीं बुलाई जायेगी।

यदि कोरम के अभाव में बैठक सम्पन्न नहीं हो पाती है तो उसी प्रधान / उप-प्रधान को हटाने के लिए दुबारा बैठक एक वर्ष तक नहीं बुलाई जा सकती है।

प्रधान के कर्तव्य तथा अधिकारः

1. ग्राम तथा ग्राम पंचायत की बैठक बुलाना तथा उनकी अध्यक्षता करना।

2. बैठक की कार्यवाही पर नियंत्रण रखना।

3. पंचायत की आर्थिक व्यवस्था और प्रशासन की देखभाल करना तथा इसकी सूचना गाँव वालों को देना।

4. ग्राम पंचायत द्वारा रखे गये कर्मचारियों की देखभाल करना।

5. ग्राम पंचायत के कार्यों को क्रियान्वित करना।

6. पंचायत राज नियमों के अन्तर्गत रखे जाने वाले रजिस्टरों का प्रबन्धन करना।

7. ग्राम पंचायत की सम्पत्ति की सुरक्षा की कार्यवाही करना और पंचायत द्वारा लगाये गये शुल्क आदि की व्यवस्था की वसूली करना है।

8. ग्राम पंचायत की ओर से दीवानी नालिशें तथा फौजदारी की इस्तगासे दायर करना।

9. विशेष आवश्यता पड़ने पर जिला पंचायत राज अधिकारी को सूचना देकर बिना ग्राम पंचायत की स्वीकृत प्राप्त किये ग्राम प्रधान को कोई भी ऐसा काम करने का अधिकार होगा जिसको करने का अधिकार ग्राम पंचायत का है।

पंचायत सदस्यों के अधिकारः

ग्राम पंचायत का कोई सदस्य बैठक में संकल्प प्रस्तुत कर सकता है और प्रधान या उप-प्रधान से ग्राम पंचायत के प्रशासन से सम्बन्धित विषयों के सम्बन्ध में प्रश्न पूँछ सकता है।

ग्राम अधिकार कर्तव्य एवं कार्यः

1. कृषि - इसमें बाग-बगीचे लगवाना तथा बंजर भूमि तथा चारागाह आदि का विकास करना।

2. भूमि विकास - भूमि का सुधार कहुना, चकबन्दी करना।

3. लघु सिंचाई - इसके अन्तर्गत खेतों में पानी की व्यवस्था के लिए छोटी-छोटी गुले बनाना।

4. पशुपालन - पंचायत में अच्छे नस्ल के पशु उपलब्ध कराना, जिससे दूध उद्योग को बढ़ावा मिल सके।

5. मत्स्य पालन - ग्राम पंचायतों में जहाँ सम्भव हो वहाँ पर बड़े स्तर पर मत्स्य पालन के लिए बड़े तालाब बनवाकर अच्छी किस्म की मछलिया पालन तथा उद्योग करना।

6. सामाजिक कृषि - इसके अन्तर्गत वृक्षारोपण करना तथा शहतूत के पेड लगाकर रेशम के कीट वानिकी पालना।

7. लघु वन उत्पादन करना

8. लघु उद्योग - गाँव में प्रशिक्षित व्यक्तियों द्वारा लघु उद्योग का कार्यक्रम चलाना जैसे सिलाई केन्द्र, माचिस, बीड़ी बनाना आदि।

9. कुटीर तथा ग्राम उद्योग - गाँव में प्राप्त संसाधनों उनका सदुपयोग करना जैसे-झाड़ू बनाना, चटाई, पंखा, रस्सी आदि बनाना

10. ग्रामीण आवास - ग्राम पंचायत में इन्दिरा आवास योजना के अन्तर्गत गरीबी रेखा से नीचे रहने वाले लोगों के लिए भवन निर्माण करना।

11. पेय जल - पीने के पानी, कपड़े धोने, स्नान आदि के लिए सार्वजनिक कुओं तालाबों तथा पोखरों का निर्माण करना। पानी की निकासी की व्यवस्था करना।

12. ईंधन तथा चारा भूमि - ईंधन तथा चारा भूमि से सम्बन्धित घास तथा पौधों का विकास करना।

13. यातायात व्यवस्था - सड़कें, पुलिया, पुलों, नौकाघाट, जलमार्ग तथा संचार के अन्य साधनों की व्यवस्था करना तथा उनका संरक्षण करना।

14. ग्रामीण विद्युतीकरण - सार्वजनिक मार्गों तथा अन्य साधनों पर प्रकाश की व्यवस्था करना।

15. ग्रामीण विद्युतीकरण - इसके अन्तर्गत गोबर गैस और सौर ऊर्जा आदि की व्यवस्था करना।

16. गरीबी हटाओ कार्यक्रम - गाँव के गरीब लोगों की स्थिति में सुधार के लिए रोजगार के साधन उपलब्ध कराना, जैसे-जवाहर रोजगार योजना आदि।

17. शिक्षा – गाँव में प्राथमिक विद्यलाय खुलवाना तथा शिक्षा के महत्व को समझाना।

18. तकनीकी प्रशिक्षण व व्यवसायिक शिक्षा - गाँव के लोग शिक्षा से वंचित रह गये है उन्हें प्रौढ़ शिक्षा तथा अनौपचारिक शिक्षा के द्वारा प्रौढ़ शिक्षा तथा अनौपचारिक शिक्षा शिक्षित करने का कार्यक्रम चलाना।

19. प्रौढ़ शिक्षा - गाँव के जो लोग वंचित रह गये हैं उन्हें शिक्षा तथा अनौपचारिक शिक्षा के द्वारा शिक्षित करने का कार्यक्रम चलाना।

20. पुस्तकालय - गाँव में पुस्तकालय, वाचनालय की व्यवस्था करना तथा पुस्तकालय में ज्ञानवर्धक पुस्तकों को मंगाना।

21. खेलकूल तथा सांस्कृतिक कार्यक्रम - सामाजिक व सांस्कृतिक क्रिया-कलापों की प्रोन्नति तथा विभिन्न सांस्कृतिक कार्यक्रम उत्सवों पर जैसे दशहरे में रामलीला आदि उत्सवों का आयोजन करना तथा राष्ट्रीय पर्वों पर राष्ट्रीय कार्यक्रम और खेलकूद की व्यवस्था करना।

22. बाजार व मेले – पंचायतों में मेलों बाजारों तथा हाटों का आयोजन करना।

23. ग्रामीण स्वच्छता - ग्रामीण स्वच्छता की प्रोन्नति बीमारियों व महामारियों के विरूद्ध रोकथाम तथा मनुष्यों व पशु टीकाकरण के कार्यक्रम आयेजित करना, स्वच्छता के अन्तर्गत पानी की निकासी की उचित व्यवस्था करना।

24. परिवार कल्याण - इसके अन्तर्गत परिवार नियोजन, टीकाकरण, जन्म-मृत्यु तथा विवाह का रजिस्ट्रीकरण कराना।

25. आर्थिक विकास के लिए - ग्राम पंचायत के क्षेत्र के लिए योजना तैयारयो करना।

26. प्रसूति तथा बाल विवाह - ग्राम पंचायत स्तर पर महिला एवं बाल विकास कार्यक्रमों में भाग लेना तथा बाल स्वास्थ्य एवं पोषण कार्यक्रमों की उन्नति करना।

27. समाज कल्याण - इसके अन्तर्गत विकलांगों और मानसिक रूप से मन्द बुद्धि लोगों के कल्याण के कार्यक्रमों को आयोजित करना। वृद्धावस्था व विधवा पेंशन के द्वारा उनकी पूर्ण रूप से मदद करना।

28. अनुसूचित जाति/जनजातियों - इसके अन्तर्गत अनुसूचित जाति/जनजाति समाज के अन्य कमजोर वर्गों के लिए ऐसे कार्यक्रम बनाये जाए जिससे उनका विकास हो सके साथ उन्हें सामाजिक न्याय भी दिलाना।

29 सर्वाजनिक वितरण प्रणाली - आवश्यक वस्तुओं के वितरण के सम्बन्ध में सार्वजनिक चेतना को जगाना तथा सार्वजनिक वितरण प्रणाली की देखरेख करना।

30 सार्वजनिक अस्तियों का रख-रखाव करना

उपरोक्त तीस प्रकार के अलावा राज्य सरकार अधिसूचना द्वारा निम्नवत् कार्य भी पंचायत को दे सकती है-

1. पंचायत क्षेत्र में स्थिति किसी जंगल की व्यवस्था और अनुरक्षण ।

2 पंचायत क्षेत्र के भीतर स्थित सरकार की बंजर भूमि, चारागाह भूमि या खाली पड़ी भूमि की व्यवस्था।

3. किसी कर या भू राजस्व का संग्रह और सम्बन्धित अभिनलेखों का आरक्षण।

4 ग्राम पंचायतें अपने क्षेत्र में कार्य करने वाले सिंचाई विभाग के कार्यकर्ता, पटवारी अथवा लेखपाल, गाँव का चौकीदार या मुखिया की नियुक्ति, स्थानान्तरित या हटाने के सम्बन्ध में सिफारिश कर सकती है।

5. ग्राम पंचायतें अपने पंचायत के भीतर कार्य करने वाले चौकीदार, पटवारी, सिंचाई विभाग के कार्यकर्ता, काजी आउस के रक्षक, वन विभाग के चौकीदार, प्राथमिक विद्यालय के अध्यापक आदि द्वारा अपने कर्तव्यों के पालन में सही ढंग से नहीं करने पर उसकी रिपोर्ट निर्धारित अधिकारी को भेज सकती है।

इसके अतिरिक्त ग्राम पंचायत निम्नलिखित कार्यों को सम्पन्न करेगी-

1. योजना तैयार करना।

2. अन्य कार्य जो राज्य सरकार अधिसूचना द्वारा दिये जाये जैसे-

(क) पंचायत क्षेत्र में स्थित किसी वन की व्यवस्था और अनुरक्षण

(ख) पंचायत क्षेत्र के भीतर स्थित सरकार की बंजर भूमि, चारागाह भूमि या खाली भूमि की व्यवस्था।

(ग) किसी कर या भू राजस्व का संग्रह और सम्बन्धित अभिलेखों का अनुकरक्षण ।

ग्राम पंचायत के अधिकार:

1. अधिकार सीमा से बाहर स्थित संस्थाओं को चन्दा देने का अधिकार।

2. सार्वजनिक सड़कों, जलमार्गों तथा पुलिया इत्यादि जो राज्य सरकार अथवा किसी सरकारी विकास के प्राधिकार में न हो उस पर पंचायत का नियंत्रण होगा। वह उसकी मरम्मत के लिए समस्त आवश्यक कार्य कर सकती है।

3. सफाई के सुधार के लिए ग्राम पंचायत नोटिस के द्वारा किसी भूमि अथवा भवन में स्वामी को उसकी वित्तीय स्थिति पर विचार करके उसके अनुपालन के लिए यथोचित समय लेकर उचित कार्यकारी कर सकती हैं। वह व्यक्ति 30 दिन के भीतर स्वास्थ्य के जिला मेडिकल अफिसर के पास नोटिस के विरूद्ध अपील कर सकता है जो उसे बदल सकता है. निष्कासित कर सकता है अथवा पुष्ट कर सकता है।

4. स्कूलों तथा अस्पताल का संसाधन एवं सुधार।

5. ग्राम पंचायतों के किसी समूह के लिए संयुक्त प्राइमरी स्कूल, अस्पताल, औषधलय की स्थापना करना, सड़क या पुल बनाना।

6. सरकारी सेवकों के उपचार की जांच करने तथा रिपोर्ट करने का अधिकार।

7. अपने कर्मचारिमयों के लिए अभ्यावेदन तथा सिफारिश।

8. मालिकों के लिए कर आय एवं देयों की वसूली के लिए संविदा का अधिकार।

9. विहित के अनुसार कर्मचारियों की नियुक्ति का अधिकार।

समिति का नाम	समिति का कार्य	समिति का गठन
नियोजन एवं विकास समिति	**ग्राम पंचायत की योजना करना। कृषि पशुपालन और गरीबी उन्मूलन कार्यक्रमों का संचालन**	प्रधान-सभापति 6 अन्य सदस्य (अनुसूचित जाति/जनजाति, महिला और पिछड़े वर्ग का एक सदस्य अवश्य होगा।)
शिक्षा समिति	प्राथमिक शिक्षा, उच्च प्राथमिक शिक्षा, अनौपचारिक शिक्षा साक्षरता आदि से सम्बन्धित कार्य	प्रधान-सभापति सचिव-प्रधानध्यापक 6 अन्य सदस्य (अनुसूचित जाति/जनजाति, महिला और पिछड़े वर्ग का एक सदस्य अवश्य होगा।)
निर्माण कार्य समिति	**सभी निर्माण कार्य कराना और गुणवत्ता सुनिश्चित करना।**	ग्राम पंचायत द्वारा नामित सदस्य सभापति 6 अन्य (अनुसूचित जाति/जनजाति, महिला और पिछड़े वर्ग का एक सदस्य अवश्य होगा।)
स्वस्थ्य एवं कल्याण समिति	चिकित्सा, स्वास्थ्य, परिवार कल्याण सम्बन्धी कार्य और समाज कल्याण विशेष रूप से महिला एवं बाल कल्याण की योजनाओं का संचालन अनुसूचित जाति/जनजाति तथा पिछड़े वर्गों की उन्नति एवं संरक्षण	सभापति ग्राम पंचायत द्वारा नामित सदस्य सभापति प्रधान-सभापति सदस्य 6 अन्य (अनुसूचित जाति/जनजाति, महिला और पिछड़े वर्ग का एक सदस्य अवश्य होगा।)
प्रशासनिक समिति	कर्मियों सम्बन्धित समस्त विषय राशन की दुकान सम्बन्धित कार्य	प्रधान-सभापति सदस्य सभापति 6 अन्य (अनुसूचित जाति/जनजाति, महिला और पिछड़े वर्ग का एक सदस्य अवश्य होगा।)

जल प्रबंधन समिति	राजकीय नलकूपों का संचालन का पेयजल सम्बन्धी कार्य	ग्राम पंचायत द्वारा नामित सदस्य सभापति प्रधान-सभापति सदस्य सभापति 6 अन्य (अनुसूचित जाति/जनजाति, महिला और पिछड़े वर्ग का एक सदस्य अवश्य होगा।) प्रत्येक राजकीय नलकूपों के कमाण्ड एरिया में से दो उपभोक्ता सहयोजित।

इस प्रकार से जिला पंचायत तथा क्षेत्र पंचायत स्तर पर भी समितियों का गठन होता है।

समितियों के गठन की प्रक्रियाः

1. समितियों का गठन ग्राम पंचायत सदस्यों द्वारा किया जाता है।

2. गठन के लिए ग्राम पंचायत की बैठक में समितियों के गठन के बारे में निर्णय लिये जाते है। यह बैठक बुलाने की जिम्मेदारी बहुउद्देशीय कर्मी की है।

3. प्रत्येक समिति में एक सभापति और छः सदस्य होंगें जो ग्राम पंचायत के सदस्यो में से ही चयनित किये जायेंगे।

4. शिक्षा समिति के एक प्रधानाध्यापक (एक से अधिक स्कूल होने पर सबसे अनुभवी प्रधानाध्यापक) सहयोजित सदस्य होंगे।

5. जल प्रबन्धलन समिति के प्रत्येक राजकीय नलकूप के कमाण्ड एरिया से दो व्यक्तियों को सहयोजित यिका जायेगा। सहयोजित सदस्यों को समिति में मत देने का अधिकार होगा।

6. बहुद्देशीय कर्मी समितियों के सचिव होंगे। परन्तु शिक्षा समिति का सचिव प्रधानाध्यापक होंगे।

ग्राम समिति की बैठकः

1. प्रत्येक समिति की माह में एक बार बैठक आवश्यक हैं। बैठक बुलाने की जिम्मेदारी सभापति व सचिव की है।

2. बैठक में की गयी बातचीत समिति की कार्यवाही रजिस्टर में लिखी जानी चाहिए।

3. समिति की बैठक के लिए चार सदस्यों का कोरम पूरा होना चाहिए।

समिति में ग्राम सभा सदस्यों की भागीदारीः

1. सहयोजित किये जाने वाले सदस्य ग्राम सभा से चयनित/नामित किये जाते है।

2 सूचना के अधिकार के अन्तर्गत ग्राम सभा सदस्य समिति के किसी भी अभिलेख की नकल प्राप्त कर सकता है।

संयुक्त समितिः

ग्राम पंचायत की समितियों के अतिरिक्त दो या अधिक ग्राम पंचायते किसी ऐसे कार्य के लिए जिनमें वे संयुक्त रूप से अभिरूचि रखती हों अपने प्रतिनिधियों की संयुक्त समिति भी बना सकती है जिसका विवरण लिखित रूप से रखा जाना आवश्यक है। पंचायते संयुक्त रूप से इस समिति को अधिकार देगी तथा शर्तों व नियम का निर्धारण करेंगी। संयुक्त समिति में मतभेद की स्थिति में नियुक्त प्राधिकारी का निर्णय अन्तिम माना जायेगा।

ग्राम पंचायत विकास अधिकारियों के कार्यः

ये कार्य जिन्हें ग्राम पंचायत अधिकारी स्वय करेंगे.-

1. ग्राम पंचायत क्षेत्र के प्राकृतिक संसाधनों, सुविधाओं एवं परिसम्पत्तियों की सूची तैयार करना।

2. ग्राम पंचायत क्षेत्र का परिवार एवं आर्थिक रजिस्टर तैयार करना, नवीनतम बनाये रखना।

3. विभिन्न योजनाओं को बनाने, क्रियान्वयन करने, अनुश्रवण करने एवं मूल्यांकन में विभागों के अधिकारियों एवं स्वैच्छिक संस्थाओं का सहयोग प्राप्त करना।

4. निर्धारित कार्यक्रमों/योजनाओं के अभिलेख तैयार करना ग्राम निधि का लेखा जोखा रखना, आडिट करना।

5. योजनाओं/कार्यक्रमों के प्रगति प्रतिवेदनों को समय से क्षेत्र पंचायत स्तर पर प्रेषित करना।

6. कार्यक्रमों हेतु क्षेत्र पंचायत स्तर से तकनीकी सहयाता प्राप्त करना।

7. खेतों में कीटों एवं बीमारियों के प्रकोप का सर्वेक्षण एवं नियंत्रण हेतु कार्यवाही करना।

8. गन्ना विकास हेतु सर्वेक्षण, बीज पौधशाला एवं प्रदर्शन, पंजिकाओं का प्रदर्शन तथा सूची तैयार कर ग्राम पंचायत की बैठक में रखना।

9. राजकीय नलकूल सिंचित क्षेत्र की जमाबन्दी तैयार करना तथा उनके अनुरूप जल दरें वसूल करना।

10. ग्राम सभा, ग्राम पंचायत एवं उसकी समितियों की बैठकों का समय से आयोजन करना तथा अभिलेख रखना, क्रियान्वयन, अनुअयण।

11. ग्राम सभा, ग्राम पंचायत एवं उसकी समितियों की बैठकों में विभिन्न योजनाओं, उनके भौतिक एवं वित्तीय लक्ष्यों तथा उपलब्धियों की सभी को जानकारी देना।

12. ग्राम सभा/ग्राम पंचायत के कर्मियों के सेवा सम्बन्धी अभिलेखों का रख रखाव करना।

13. अनुसूचित जाति/अनुसूचित जनजाति तथा महिलाओं के ऊपर होने वाले अत्याचारों को सूचित करना।

14. जन्म मृत्यु की जानकारी तथा इनका पंजीकरण करना।

15. योजनाओं/कार्यक्रमों एवं पंचायत से सम्बन्धित अन्य विषयों के बारें में शासन द्वारा जारी शासनादेश / मार्गनिर्देशन की फाइल रखना।

16. सर्भित विभार्गो से सम्बन्धित अन्य कोई कार्य जो ग्राम पंचायत द्वारा सौपें जायें।

17. राज्य सरकार / विहित प्राधिकारी द्वारा सौपे गये अन्य कार्य।

18. सामान्य, कृषि, पशुपालन, मत्स्य एवं दुग्ध, ग्राम्य विकास, सिंचाई (नहर, नलकूल) समाज कल्याण, गन्ना विकास तथा चीनी उद्योग, खाद्य एवं रसद, चिकित्सा एवं स्वास्थ्य विभागों के 31 कार्य करने होंगे।

ग्राम पंचयात द्वारा रखे जाने वाले रिकार्ड:

जिस प्रकार से हम अपने जीवन की महतवपूर्ण जानकारी को मस्तिष्क में याददाशत के रूप में सुरक्षित रखते हैं तथा आवश्यकता पड़ने पर उसका उपयोग करते हैं उसी प्रकार संस्थाओं के लिए रिकार्ड का महत्व है। रिकार्ड संस्था की याददाशत होते है जिसका समय-समय पर संस्था इस्तेमाल करती है। अतः वह संस्था अधिक मजबूत व सक्षम होगी जो अपने रिकार्डों का उचित ढंग से रख-रखाव करती है। चूँकि पंचायतें भी स्थानीय संस्था का ही स्वरूप है। अतः इनकी क्षमता व कार्य कुशलता रिकार्डों पर निर्भर करती है। पारदर्शिता व जवाबदेही के लिए आवयश्यक है कि जानकारियां व सूचनाओं का उचित रख-रखाव हो तथा वे समय पर उपलब्ध हों ताकि लोगों में पंचायतों की विश्वसनीयता स्थापित हो सके। उ. प्र. पंचायत राज एक्ट के अनुसार निम्नलिखित रजिस्टर बही और लेखपत्र रखने की बात कही गयी है और प्रत्येक रिकार्ड के रखे जाने की अवधि भी निर्धारित की गयी है जो इस प्रकार है-

प्रशासनिक		**वित्तीय**		**कार्यक्रम**	
रेकॉर्ड	**अवधि**	**रेकॉर्ड**	**अवधि**	**रेकॉर्ड**	**अवधि**
कार्यवाही बही	**स्थायी**	**पंचायत के कोश का बहीखाता**	**स्थायी**	**निर्माण कार्यों की प्रगति रिपोर्ट**	**5 वर्ष**
ग्राम पंचायत के पत्र व्यवहार और उसके द्वार जारी किये गाये नोटिसों	**5 वर्ष**	**प्राप्त रसीद बही (प्रति पत्रक/ कार्बन कॉपी)**	**5 वर्ष**	**निर्माण कार्यों की पूर्ति का प्रमाण पत्र**	**20 वर्ष**

का रजिस्टर					
निरीक्षण रजिस्टर	3 वर्ष	रजिस्टर जिसमें करों और दूसरे साधनों के साथ-साथ मांग और वसूलियाँ दी गईं	10 वर्ष	सावर्जजनिक निर्माण कार्य का रजिस्टर	स्थाई
ग्राम पंचायत के कार्य की वार्षिक रिपोर्ट	10 वर्ष	लेखपत्रों निरीक्षण के लिए प्रार्थना-पत्र	**1 वर्ष**	पुस्तकालयों की पुस्तकों सूची की	स्थाई
प्रशासन सम्बन्धी लेख पत्रों की प्रतिलिपियों के लिए प्रार्थना पत्र	1 वर्ष	हिसाब की जाये (आडिअ सम्बन्धी रिपोर्ट	40 वर्ष	नापतौल तथा विकास कार्यों का रजिस्टर	20 वर्ष
ग्राम पंचायत के प्रधान उप-प्रधान व सदस्यों के	4 वर्ष	वार्षिक आय-व्यय का अनुमान	5 वर्ष		

द्वारा शपथ होने के कार्यवाहियों के लेखपत्र					
जन्म-मृत्यु और विवाह रजिस्टर	स्थाई	विविध लेखपत्र	3 वर्ष		
कर्मचारियों स्थापना रजिस्टर	**40 वर्ष**	स्थाई अग्रिम धन का रजिस्टर	10 वर्ष		
पंचायत कार्यालय की आदेश पुस्तक	40 वर्ष	**भ्गतन किए गए वाउचर और बिल**	**10 वर्ष**		
गबन संबंधी रिपोर्ट	**40 वर्ष**	**लेखपत्र भेजने का चालन रजिस्टर**	**1 वर्ष**		
सम्बन्धी पुस्तक (सर्विस बुक) वे कर्मचारियों की चरित्र सम्बन्धी पुस्तक रोल) (कैरेक्टर	**10 वर्ष**				

सम्बन्धी कर्मचारियों के लिए अनुमति का रजिस्टर					
कर निर्धारण के वीरुध अपील	**5 वर्ष**				
अचल संपत्ति का रजिस्टर	**स्थायी**				
ग्राम सभा के रजिस्टर भाग 1 व 2 (नये तैयार किये जोन की दिनांक से)	**5 वर्ष**				

उपरोक्त रजिस्टर में नाम लिखे जन के संबंध में दावे व आपत्तियाँ और उनमें निर्णय आदि का रजिस्टर	**10 वर्ष**				
निर्वाचन और उनके परिणाम आदि संबंधी लेखपत्र	**10 वर्ष**				
ग्राम पंचायत के प्रधान, उप प्रधान, सदस्यों और न्याया पंचायत के पांचों की सूची	**7 वर्ष**				
सदस्यो की उपस्थिती आ रजिस्टर	**6 वर्ष**				
वस्तुओं का रजिस्टर	**5 वर्ष**				

रुपपत्र मांगने का रजिस्टर	**1 वर्ष**				

उक्त रजिस्टरों के अतिरिक्त राज्य सरकार अन्य रिकार्ड या बही रखने का आदेश दे सकती है तथा इनके रूपपत्रों में परिवर्तन या वृद्धि कर सकती है। सुरक्षाकी दृष्टि से ग्राम पंचायत के अभिलेख जिला अभिलेख कक्ष में रखे जायेंगे।

वार्षिक रिपोर्ट और उसके विषय

ग्राम पचायत को प्रत्येक वर्ष अपने कार्यों की वार्षिक रिपोर्ट बनानी है तथा यह रिपोर्ट वित्तीय वर्ष अप्रैल से मार्च की अवधि के लिए बनायी जायेगी। ग्राम पंचायत पिछले आर्थिक वर्ष/वित्तीय वर्ष के अपने कार्य की वार्षिक रिपोर्ट प्रतिवर्ष 15 अप्रैल से निर्धारित अधिकारी के पास भेज देगा। इस रिपोर्ट में निम्नलिखित सूचनाएँ होगी-

1. ग्राम पंचायत का विधान (गत वर्ष के कार्यक्रम)।

2. एक विवरण पत्र जिसमें आर्थिक सहायता और चन्दे तथा उनका उपयोग दिखाया गया हो।

3. कर सम्बन्धी विवरण पत्र जिसमें मांग, वसूली छूट और बकाया दिखाये गये हो।

4. वह आय जो फौजदारी के मुकदमों में किये गये अर्थदण्ड के अतिरिक्त अन्य अर्थदण्डों से प्राप्त हुई हो।

5. अन्य साधनों से होने वाली आय-व्यय (क) स्थायी. (ख) अस्थायी।

6. ग्राम पंचायत के निर्धारित कार्यों के लिए रिपोर्ट के अधीन पूरे वर्ष में ग्राम पंचायत द्वारा की गई कार्यवाहियां।

7. ऐसे देय जो वर्ष में वसूल होने से बाकी रह गये हो और उनको न भुगतान किये जाने के कारण।

8. एक विवरण पत्र जिसमें निर्माण और मरम्मर के बड़े कार्य जो उस वर्ष पूरे किये गये हों, चालू रहे हों अथवा जो भविष्य में किसी योजना के साथ किये जाने वाले हों. दिखलायें गये हो।

9. ग्राम पंचायत रूपपत्र संख्या-1 में दिया गया विवरण पत्र।

10. कोई अन्य महत्वपर्ण बात।

ग्राम पंचायत, रिपोर्ट के साथ ऐयसा विवरण पत्र देगी जिसमें उस वर्ष की आय और व्यय का ब्यौरा और उसके बैंकर का हस्ताक्षर किया हुआ एक प्रमाण पत्र हो, और यदि डाकखने में धन जमा हो तो प्रधान का हस्ताक्षर किया हुआ प्रमाण-पत्र नत्थी किया जायेगा।

ग्राम पंचायत का निरीक्षण

जिला पंचायत को कोई पदाधिकारी या सदस्य या कोई ऐसा पदाधिकारी जिसे सरकार द्वारा नियुक्त किया गया हो तथा इस सम्बन्ध में कानूनी अधिकार प्राप्त हो किसी ग्राम पंचायत के कार्यालय तथा उसके अभिलेखों का निरीक्षण

कर सकता है। इसके अतिरिक्त ग्राम पंचायत के सदस्य तथा ग्राम सभा के सदस्य जिन्हें प्रधान या उपप्रधान की पूर्व अनुमति प्राप्त हो, ग्राम पंचायत द्वारा कराये गये कार्यों, अभिलेखों या हिसाब का निरीक्षण कर सकते है।

क्षेत्र पंचायत

संविधान के 73वें संशोधन के उपरान्त क्षेत्र पंचायत अधिनियम में ऐसा अविधान किया गया है कि प्रत्येक खण्ड के लिए एक क्षेत्र पंचायत होगी (पहले इस क्षेत्र समिति के नाम से जाना जाता था) जिसका नाम उस विकास खण्ड के नाम पर होगा। राज्य सरकार द्वारा निर्धारित स्थान पर एक कार्यालय होगा। यदि नहीं है तो जहा पर अभी तक रहा है बनने तक रखा जायेगा। इस मध्यवर्ती स्तर पर चुनाव पहली बार जनता द्वारा किया जायेगा। इसके साथ-साथ इस स्तर पर नई व्यवस्था के अन्तर्गत कोई भी नामित सदस्य नहीं होगा। इस संस्था में अब केवल निर्वाचित तथा पदेन सदस्यों की व्यवस्था है। अन्य पंचायत स्तरों की भांति क्षेत्र पंचायत में भी सीधे भरे जाने वाले सदस्यों की संख्या के एक तिहाई स्थान महिलाओं के लिए आरक्षित होंगे। ऐसे समस्त आरक्षित स्थान किसी पंचायत क्षेत्र में भिन्न-भिन्न निर्वाचन क्षेत्रों को चक्क्रानुक्रम में आवन्टित किये जाने की व्यवस्था है।

गठन

क्षेत्र पंचायत में ग्राम पंचायत के समस्त प्रधान, क्षेत्र पंचायत के निर्वाचित सदस्य लोकसभा व विधानसभा के सदस्य जो उस निर्वाचन क्षेत्रों का प्रतिनिधित्व करते हैं तथा राज्यसभा व विधान परिषद के सदस्य जो खण्ड के निर्वाचकों के रूप में पंजीकृत है, क्षेत्र पंचायत के सदस्य होंगे तथा क्षेत्र पंचायत का गठन करेंगे।

क्षेत्र पंचायत के निर्वाचित सदस्य पंचायत क्षेत्र के प्रादेशिक निर्वाचन क्षेत्रों से प्रत्यक्ष निर्वाचन द्वारा चुने जायेंगे। इस प्रयोजन के लिए पंचायत क्षेत्र ऐसी रीति से प्रादेशिक निर्वाचन क्षेत्रो में विभाजित किया जायेगा जिसकी मतदाता संख्या 2000 होगी।

क्षेत्र पंचायत के सदस्यों एवं प्रमुख व उपप्रमुख के पदों पर अनुसूचित जाति/जनजाति, पिछडे वर्ग तथा महिलाओं के लिए आरक्षण उसी क्रम से किया जायेगा जिस प्रकार ग्राम पंचायतों में हैं। आरक्षित स्थानों की संख्या का अनुपात क्षेत्र पंचायत में प्रत्यक्ष निर्वाचन द्वारा भरे जाने वाले स्थानों की कुल संख्या में यथा स्थान वही होगा जो उस खण्ड में अनुसूचित जातियो/जनजातियों व पिछड़े वर्गों की जनसंख्या का उस खण्ड की कुल जनसंख्या में हैं।

प्रमुख तथा उप-प्रमुख का चुनाव

क्षेत्र पंचायत के प्रमुख/उपप्रमुख का चुनाव सीधे चुने हुए सदस्यों द्वारा अपने में से ही किया जायेगा। प्रमुख/उपप्रमुख के निर्वाचन और उनके विरूद्ध अविश्वास प्रस्ताव के मामले को छोड़कर चुने गये सदस्यों के अतिरिक्त अन्य सदस्य भी क्षेत्र पंचायत की कार्यवहियों में भाग लेने और उसकी बैठकों में मत देने के अधिकारी होंगे।

क्षेत्र पंचायत की बैठकें

कार्य सम्पादन के लिए प्रति दो माह में क्षेत्र पंचायत की कम से कम 3 एक बार बैठक होगी। प्रमुख उसकी अनुपस्थिति में ज्येष्ठ उपप्रमुख अथवा ज्येष्ठ उपप्रमुख भी अनुपस्थित हो तो कनिष्ठ उपप्रमुख जब कभी भी उचित समको क्षेत्र पंचायत की बैठक बुला सकता है तथा क्षेत्र पंचायत के निर्वाचित सदस्यों के कम से कम 1/5 के लिखित

वाचना पर जो प्रमुख पर तामील किया जा चुका हो अथवा प्राप्ति पत्र सहित रजिस्ट्री डाक द्वारा क्षेत्र पंचायत को उसके कार्यालय के पते पर भेजा जा चुका हो। इस प्रकार की याचना की प्राप्ति के दिनांक से एक महीने के भीतर क्षेत्र पंचायत की बैठक अवश्य बुलायेगा। कोई भी बैठक आगामी किसी दिन तक स्थगित की जा सकेंगी तथा इस प्रकार स्थगित बैठक आगे भी स्थगित की जा सकती है। प्रत्येक बैठक क्षेत्र पंचायत कार्यालय या किसी अन्य सुविधाजनक स्थान पर होगी।

क्षेत्र पंचायत की बैठकों की प्रक्रिया

क्षेत्र पंचायत की बैठकों के सम्बन्ध में भी पारा 62 में निर्दिष्ट निम्नलिखित विषय शामिल होंगे-

1. बैठकों में कार्य का सम्पादन।

2. कार्य सम्पादन के लिए गणपूर्ति।

3. अध्यक्ष तथा उपाध्यक्ष की अनुपस्थिति में बैठक में अध्यक्षता।

4. सदस्यों द्वारा प्रश्न पूछना।

5. बैठक की सूचना देना।

6. बैठक में व्यवस्था बनाये रखना।

7. मतदान द्वारा निर्णय

8. वृत्त पुस्तिका तथा संकल्प।

9. सरकारी कार्यकत्ताओं, राज्य सरकार द्वारा प्राधिकृत व्यक्तियों तथा अन्य व्यक्तियों का चर्चाओं में उपस्थित होने तथा भाग लेने का अधिकार।

10. बैठक के सम्बन्ध में क्षेत्र पंचायत के अधिकारियों के अधिकार।

11. क्षेत्र पंचायत का विकास अधिकारी से प्रतिवेदन विवरणी आदि की अपेक्षा करने का अधिकार।

प्रमुख तथा उपप्रमुख में अविश्वास का प्रस्ताव

प्रस्ताव करने के अभिप्रायः का लिखित्त नोटिस, जो नियत प्रपत्र में होगा तथा क्षेत्र पंचायत के निर्वाचिन सदस्यों की कुल संख्या से कम से कम आधे सदस्यों द्वारा हस्ताक्षरकृत होगा। प्रस्तावित प्रस्ताव के प्रति के साथ नोटिस पर हस्ताक्षर करने वाले सदस्यों में से किसी के द्वारा व्यक्तिगत रूप से उस कलेक्टर को दिया जायेगा जिसका पंचायत पर उत्तराधिकार हो। क्षेत्र पंचायत की एक बैठक उक्त प्रस्ताव पर विचार करने के लिए क्षेत्र पंचायत के कार्यालय में अपने द्वारा निश्चित दिनांक को बुलायेगा और यह नोटिस दिये जाने के दिनांक से तीस दिन के बाद का न होगा तथा क्षेत्र पंचायत के सदस्यों को ऐसी बैठक का कम से कम पन्द्रह दिन का नोटिस ऐसी रीति से देगा, जो नियम की जाय। अविश्वास प्रस्ताव केवल चुने हुए सदस्यों द्वारा लाया जा सकता है।

प्रमुख तथा उपप्रमुख का हटाया जाना

प्रमुख, उपप्रमुख को केवल राज्य सरकार द्वारा निर्दिष्ट कारणों से हटाया जा सकेगा। जांच में दोषी पाये जाने पर प्रमुख/उपप्रमुख के अधिकारियों का प्रयोग राज्य सरकार द्वारा गठित क्षेत्र पंचायत के तीन सदस्यों की समिति द्वारा किया जायेगा।

क्षेत्र पंचायतों को अधिकार एवं कर्तव्य

1. कृषि जिसके अन्तर्गत कृषि प्रसार भी है।

- कृषि तथा बागवानी की प्रोन्नति और विकास।
- सब्जियों, फलों और पुष्पों की खेती और विपणन की प्रोन्नति।

2. भूमि विकास और भूमि सुधार कार्यान्वयन, चकबन्दी और भूमि संरक्षण सरकार के भूमि सुधार, भूमि संरक्षण और चकबन्दी कार्यक्रम के कार्यान्वयन में सरकारी और जिला पंचायत की सहायता करना।

3. लघु सिंचाई, जल प्रबंध और जलाच्छादन विकास।

- लघु सिंचाई कार्यों के निर्माण और अनुरक्षण में सरकार और जिला पंचायत की सहायता करना।
- सामुदायिक तथा वैयक्तिक सिंचाई कार्यों का कार्यान्वयन।

4. पशुपालन, दुग्ध उद्योग और कुक्कुट पालन ।

- पशु सेवाओं का अनुरक्षण।
- पशु, कुक्कुट और अन्य पशुधन की नस्लों का सुधार करना।
- दुग्ध उद्योग, कुक्कुट पालन और सुअर पालन की उन्नति।

5. मतस्य पालन मतस्य पालन के विकास की प्रोन्नति।

6 सामाजिक तथा फार्म वानिकी।

- सड़कों तथा सार्वजनिक भूमि के किनारों पर वृक्षारोपण और परिरक्षण।
- सामाजिक वानिकी और रेशम उत्पादन का विकास और प्रोन्नति।

7. लघु वन उत्पाद-लघु वन उत्पादों की प्रोन्नति और विकास।

8. लघु उद्योग

- ग्रामीण उद्योग के विकास में सहायता करना।

- सामाजिक वानिकी और रेशम उत्पादन का विकास और प्रोन्नति

9. कुटीर और ग्रामीण उद्योग-कुटीर उद्योगों के उत्पादों का विपणन।

10. ग्रामीण आवास- ग्रामीण आवास कार्यक्रम में सहायता देना और उसका कार्यान्वयन।

11. पेयजल

- पेयजल की व्यवस्था करना तथा उसके विकास में सहायता देना।
- कलुषित जल को पीने से बचाना।
- ग्रामीण जल आपूर्ति कार्यक्रमों को प्रोत्साहन देना और अनुश्रवण करना।

12. ईंधन तथा चारा भूमि

- गाँव के बाहर सड़कों, पुलियों का निर्माण और अनुरक्षण।
- पुलो का निर्माण।
- नौकाघाटों, जलमार्गों के प्रबन्धन में सहायता ।

13. सड़क, पुलिया, पुली, नौकाघाट, जलमार्ग तथा संचार के अन्य साधन।

- गाँव के बाहर सड़को, पुलियों का निर्माण और अनुरक्षण।
- पुलों का निर्माण।
- नौकाघाटी, जलमार्गों के प्रबन्धन में सहायता।

14. ग्रामीण विद्युतीकरण।

- ग्रामीण विद्युतीकरण को प्रोन्नति।

15. गैर पारम्पारिक ऊर्जा स्रोत

- गैर पारम्पारिक ऊर्जा स्रोतों के प्रयोग को बढ़ावा देना तथा उनकी प्रोन्नति।

16. गरीबी उपशमन कार्यों का क्रियान्वयन।

17. शिक्षा जिसके अन्तर्गत प्राथमिक तथा माध्यमिक विद्यालय भी है।

- प्रारम्भिक और माध्यमिक शिक्षा का विकास।

- प्रारम्भिक और सामाजिक शिक्षा की प्रोन्नति

18. तकनीकी प्रशिक्षण और व्यवसायिक शिक्षा ग्रामीण शिल्पकारों और व्यवसायिक शिक्षा की प्रोन्नति।

19. प्रौढ़ तथा अनौपचारिक शिक्षा प्रौढ साक्षरता और अनौपचारिक शिक्षा केन्द्रों का पर्यवेक्षण।

20. पुस्तकालय- ग्रामीण पुस्तकालयों की प्रोन्नति और पर्यवेक्षण।

21. खेलकूद तथा सांस्कृतिक कार्य।

- सास्कृतिक कार्यों का पर्यवेक्षण।
- क्षेत्रीय लोकगीतों, नृत्यों तथा ग्रामीण खेलकूद की प्रोन्नति और आयोजन।
- सांस्कृतिक विकास और प्रोन्नति।

22. बाजार तथा मेले।

- ग्राम पंचायत के बाहर मेलों और बाजारों की प्रोन्नति, पर्यवेक्षण और प्रबंध।

23. चिकित्सा और स्वच्छता।

- प्राथमिक स्वास्थ्य केन्द्र और औषधालयों की स्थापना और अनुरक्षण।
- महामारियों का नियंत्रण।
- ग्रामीण स्वच्छता और स्वास्थ्य कार्यक्रमों का कार्यान्वयन।

24. परिवार कल्याण।

25. प्रसूत्ति तथा बाल विकास।

- महिलाओं और बाल स्वास्थ्य, विद्यालय स्वास्थ्य और पोषण कार्यक्रमों में संगठनों की सहभागिता के लिए कार्यक्रमों की प्रोन्नति।
- महिलाओं एवं बाल कल्याण के विकास से सम्बधित कार्यक्रमों व प्रोन्नति ।

26. समाज कल्याण जिसके अन्तर्गत विकलांगों तथा मानसिक रूप से मन्द व्यक्तियों का कल्याण भी है।

- समाज कल्याण जिसके अन्तर्गत विकलांगों और मानसिक रूप से मन्द व्यक्तियों का कल्याण भी है, में भाग लेना।
- वृद्धावस्था और पेंशन योजनाओं का अनुश्रवण करना।

27. कमजोर वर्गों विशिष्टतया अनुसूचित जनजातियों का कल्याण।

- अनुसूचित जातियों तथा कमजोर वर्गों के कल्याण की प्रोन्नति।
- सामाजिक न्याय के लिए योजनायें तैयार करना और कार्यक्रमों का कार्यान्वयन।

28. सार्वजनिक वितरण प्रणाली।

- आवश्यक वस्तुओं का वितरण।

29. सामुदायिक वस्तुओं का अनुरक्षण।

- सामुदायिक अस्तियों के परीक्षण और अनुरक्षण का अनुश्रवण और मार्गदर्शन करना।

30 नियोजन और आकडे

- आर्थिक विकास के लिए योजनायें तैयार करना।
- ग्राम पंचायतों की योजनाओं का पुनरावलोकन, समन्वय तथा एकीकरण।
- खण्ड तथा ग्राम पंचायत विकास योजनाओं के निष्पादन को सुनिश्चित करना।
- सफलताओं तथा लक्ष्यों की नियतकालिक समीक्षा।
- खण्ड योजनाओं के कार्यान्वयन से सम्बन्धित विषयों के सम्बन्ध में सामग्री एकत्र करना तथा आंकडे रखना।

31. ग्राम पंचायतों का पर्यवेक्षण।

- नियत प्रक्रिया के अनुसार ग्राम पंचायतों को अनुदानों का वितरण।
- ग्राम पंचायत के क्रियाकलाप के ऊपर नियमों के अनुसार सामान्य पर्यवेक्षण।

32. प्राकृतिक आपदाओं में सहायता देना।

क्षेत्र पंचायत को सौंपे गये कार्य:

1. **एक से अधिक ग्राम पंचायत में आच्छादित होने वाले कार्य** सम्पादित करने के लिए आवश्यक धनराशि शासन द्वारा सीधे क्षेत्र पंचायत को उपलब्ध करायी जायेगी।

2. **ग्राम विकास के लिए कार्यक्रम** क्षेत्र पंचायत के स्तर से चलाये जाने वाले कार्यक्रम (ग्राम्य विकास से सम्बन्धित) क्रियान्वयन, अनुश्रवण तथा मूल्यांकन क्षेत्र पंचायत द्वारा/ग्रामय विकास से सम्बन्धित अधिकारी क्षेत्र पंचायत के नियंत्रण में होगा।

3. **प्राथमिक स्वास्थ्य केन्द्र** प्राथमिक स्वास्थ्य केन्द्र के चिकित्सक तथा स्टाफ क्षेत्र पंचायत के नियंत्रण में कार्य करेगा। चिकितसा स्वास्थ्य तथा परिवार कल्याण के लिए आवश्यक धनराशि, दवाईयां तथा इन्य सामग्री क्षेत्र पंचायत के माध्यम से उपलब्ध करायी जायेगी।

4. **पशु चिकित्सालय**: क्षेत्र पंचायत के नियंत्रण में, चिकित्सक तथा स्टाफ दवाइयां तथा अन्य सामग्री क्षेत्र पंचायत के माध्यम से वितरित होगी।

5. **बीज केन्द्र** क्षेत्र पंचायत के स्वामित्य में होंगे। संचालन तथा स्टाफ का नियंत्रण क्षेत्र पंचायत के अन्तर्गत होगा। आवश्यक धनराशि क्षेत्र पंचायत को शासन द्वारा सौंपी जायेगी।

6. **विपणन गोदाम** सार्वजनिक वितरण प्रणाली के लिए विकास खण्ड स्तर पर विपणन गोदामों के पर्यवेक्षण का पूर्ण अधिकार क्षेत्र पंचायत को होगा।

7. **परिसम्पत्तियों का रख-रखाव** क्षेत्र समितियों को हस्तान्तरित कार्यों से सम्बन्धित विभागीय परिसम्पत्तियां क्षेत्र पंचायत को हस्तान्तरित। आवश्यक धनराशि शासन द्वारा क्षेत्र पंचायत को दी जायेगी।

- क्षेत्र पंचायत को भी अन्तरण में अंश क्षेत्र पंचायत को राज्य के करों की आय से ग्रामीण निकायों को किये जाने वाले अन्तरण की धनराशि का 10 प्रतिशत अंश प्रदान किया जायेगा। इस राशि से क्षेत्र पंचायत ऐसी योजनाये क्रियान्वित करेगी, जिनका सम्बन्ध एक से अधिक ग्रामों से है।
- क्षेत्र पंचायत स्तर पर प्रशासनिक व्यवस्था त्रिस्तरीय व्यवस्था में समस्त स्तर पर 6 समितियों का प्रावधान।
- क्षेत्र निधि का संचालन क्षेत्र पंचायत प्रमुख तथा बी.डी.ओ. के संयुक्त हस्ताक्षर से।

जायेगा। क्षेत्र पंचायत के कार्यों को सम्पादित करने के लिए छः समितियों का गठन किया जाएगा। प्रशासनिक समिति, शिक्षा समिति, जल प्रबंधन समिति, निर्माण कार्य समिति, नियोजन एवं विकास समिति, सवास्थ्य समिति। प्रत्येक समिति में एक महिला सदस्य एक अनुसूचित जाति सदस्य, एक पिछड़ा वर्ग सदस्य अनिवार्य रूप से होंगे।

क्षेत्र पंचायत के आय के स्रोतः

1. क्षेत्र पंचायत के आय के स्रोत में शासन द्वारा प्राप्त होने वाली धनराशियों हैं जो अनुदान तथा ऋण के रूप में हो सकती हैं।

2. क्षेत्र पंचायत अपने निजी संसाधनों से जिनमें क्षेत्र पंचायत द्वारा बनायी गयी इमारतें, आयोजित की जाने वाली बाजारों में आयोजित की जाने वाली बाजारों मेलों, प्रदर्शनियां, बाग-बगीचे, शौचालय, काम्प्लेक्स, ट्यूबवेल तथा अन्य प्रकार के कर निर्धारण जिसके लिए क्षेत्र पंचायत को शासन द्वारा अधिकृत किया गया हो, से आय प्राप्त हो सकती है। यदि किसी अलाभकर भूमि को क्षेत्र पंचायत ने अपने प्रयासों से लाभकर बनाया है।

3. क्षेत्र पंचायत अपने निजी प्रयासों से लाभकारी योजनायें बनाकर जनहित में उन्हें लागू करके भी लाभ कमा सकती है।

जिला पंचायत

प्रत्येक जिले के लिए एक जिला पंचायत होगी जिसका नाम उस जिले के नाम पर होगा।

गठन :

धारा-18 सबसे पहले जिला पंचायत के सदस्यों का चुनाव सीधे जनता द्वारा किया जायेगा तथा जिला पंचायत के अध्यक्ष, उपाध्यक्ष का चुनाव उनके चुने हुए सदस्यों द्वारा तथा उन्हीं सदस्यों में से ही होगा। जिला पंचायत के अध्यक्ष के अलावा जिले के समस्त क्षेत्र पंचायतों के प्रमुख निर्वाचित सदस्य जिनका क्षेत्र पचास हजार जनसंख्या होगी, विधानसभा के सदस्य, विधान परिषद तथा राज्य सभा के सदस्य सम्मिलित होंगे। यह सदस्य जिला पंचायत की बैठक में भाग ले सकेंगे। जिला पंचायत के सदस्यों के क्षेत्र विभाजन का नियम (प्रत्येक पचास हजार की जनसंख्या पर एक सदस्य) पहाड़ी क्षेत्रों में लागू नहीं होगा। जिला पंचायत का कार्यकाल पांच वर्ष होगा। अगला चुनाव कार्यकाल के पूरा होने के छः महीने के पहले कराने की अनिवार्यता है।

जिला पंचायत की बैठकें:

जिला पंचायत की बैठकें बुलाने का अधिकार अध्यक्ष के पास है परनतु उनकी अनुपस्थित में उपाध्यक्ष भी बैठके बुला सकता है। अध्यक्ष तथा उपाध्यक्ष को यह अधिकार है कि वे जब आवश्यक समझे तो उस समय पंचायत की बैठकें बुला सकते है। परनतु दो माह में एक बैठक बुलाना आवश्यक होगा। इन सबके साथ जिला पंचायत की कुल सदस्य संख्या के 1/5 सदस्यों की लिखित मांग पर भी बैठकें बुलाने का अधिकार है।

अध्यक्ष या उपाध्यक्ष के अविश्वास का प्रस्ताव

अध्यक्ष या उपाध्यक्ष में विश्वास प्रकट करने का प्रस्ताव किया जा सकता है तथा उस पर कार्यवाही भी की जा सकती हैं प्रस्ताव का अभिप्राय लिखित नोटिस उस समय के सदस्यों की कुल संख्या के कम से कम आधे सदस्यों द्वारा हस्ताक्षर युक्त होना चाहिए।

प्रस्ताव की प्रतिलिपि के साथ, नोटिस पर हस्ताक्षर करने वाले निर्वाचित सदस्यों में से किसी के द्वारा व्यक्तिगत रूप से उसे कलेक्टर को दिया जायेगा जिसका जिला पचांयत पर क्षेत्राधिकार होगा।

अध्यक्ष या उपाध्यक्ष का हटाया जाना

यदि अध्यक्ष या उपाध्यक्ष अपने अधीन कार्यों को जान-बूझकर पालन नहीं करता है या अपने निहित अधिकारों का दुरुपयोग करता है था अपने कर्तव्यों के पालन में अनाचार का दोषी पाया जाय तो राज्य सरकार उसे निश्चित अवसर देकर हटा सकती है।

जिला पंचायत में आरक्षण

जिला पंचायत के अध्यक्ष में 21 प्रतिशत जिला में अनुसूचित जाति के लोग ही अध्यक्ष चुने जायेंगे साथ ही एक तिहाई संख्या अनुसूचित जाति महिलाओं के लिए आरक्षित की जायेगी। इसी प्रकार प्रदेश के सभी जिलों में 27 प्रतिशत स्थान जिनका पंचायत अध्यक्ष पद पर समाज के पिछड़े वर्गों के लिए सुरक्षित है जिसमें एक तिहाई पद जिला पंचायत अध्यक्ष पिछड़े वर्ग की महिलायें होगी। शेष सभी जिला को सामान्य श्रेणी में छोड़ दिया जायेगा।

जिला पंचायत के सामान्य अधिकार और कर्तव्य

क. प्रत्येक जिला पंचायत निम्नलिखित अधिकारों तथा कार्यों का सम्पादन करेगी।

1. जिन मेलों तथा उत्सवों का प्रबन्ध राज्य सरकार करती है या आगे करे उनसे भिन्न मेलों तथा उत्सवों का ग्राम पंचायतों, क्षेत्र पंचायतों तथा जिला पंचायत द्वारा प्रबंध और नियंत्रण के प्रयोजन के लिए ग्राम पंचायत तथा क्षेत्र पंचायत के मेलों का वर्गीकरण।

2. ग्राम पंचायतों, क्षेत्र पंचायतों तथा जिला पंचायत द्वारा प्रबंध के प्रयोजन के लिए सड़कों का क्रमशः ग्राम सड़कों, अन्तर्गत सड़कों तथा जिनका सड़कों के रूप में वर्गीकरण ।

3. जिले की ग्राम पंचायतों तथा क्षेत्र पंचायत के कार्यकलापों उसी के लिए बनाये गये नियमों के अनुसार सामान्य रूप से पर्यवेक्षण।

4. उसी के लिए बनाये गये नियमों के अधीन रहते हुए एक ओर राज्य सरकार तथा दूसरी ओर ग्राम पंचायतों तथा क्षेत्र पंचायतों के बीच पत्र व्यवहार के लिए मुख्य माध्यम के रूप में कार्य करना।

खः इसमें ग्राम पंचायत तथा क्षेत्र पंचायत के कार्यो का समन्वयन मुख्य रूप से है।

1. कृषि जिसके अन्तर्गत कृषि प्रसार भी है।

2. भूमि विकास, भूमिसुधार कार्यान्वियन चकबन्दी तथा भूमि संरक्षण।

3. लघु सिंचाई, जल प्रबन्ध तथा जल विकास।

4. पशुपालन, दुग्ध उद्योग और कुक्कुट पालन को प्रोन्नति।

5. मतस्य पालन का विकास करना।

6. सामाजिक तथा वानिकी का विकास करना।

7. लघु वन उत्पाद के कार्यक्रमों की प्रोन्नति और, विकास।

8. लघु उद्योग और खाद्य प्रसंस्करण इकाई की प्रोन्नति।

9. कुन्जीर एवं ग्रामीण उद्योग का विकास।

10. ग्रामीण आवास कार्यक्रमों की प्रोन्नति और विकास।

11. पेयजल का अनुरक्षण तथा जल प्रदूषण की रोकथाम।

12. ईधन और चारा भूमि का अनुश्रवण और विकास।

13. सड़क, पुलिया, पुल, नौकाघाट, जलमार्ग और संचार के अन्य साधनों का अनुरक्षण तथा विकास।

14 ग्रामीण विद्युतीकरण।

15. गैर पारम्परिक ऊर्जा स्रोत का विकास।

16. गरीबी उपशमन कार्यक्रम।

17. शिक्षा जिसके अन्तर्गत प्रारम्भिक और माध्यमिक विद्यालय भी है. का पर्यवेक्षण तथा अनुरक्षण।

18. तकनीकी प्रशिक्षण और व्यवसायिक शिक्षा की स्थापना और उनका अनुश्रवण ।

19. प्रौढ़ तथा अनौपचारिक शिक्षा।

20. पुस्तकालयों तथा वाचनालयों का निर्माण और अनुक्षण।

21. खेलकूद और सास्कृतिक कार्यों की प्रोन्नति तथा पर्यवेक्षण।

22. ग्रामीण बाजारी, मेलों का पर्यवेक्षण और अनुरक्षण।

23. चिकित्सा और स्वच्छता का प्रबन्धन।

24. परिवार कल्याण कार्यक्रमों का कार्यान्वयन, पर्यवेक्षण तथा अनुश्रवण ।

25. प्रसूति और बाल विकास कार्यक्रमों का क्रियान्वयन।

26. समाज कल्याण जिसके अनतर्गत विकलांगों और मानसिक रूप से मन्द व्यक्तियों का कल्याण भी है।

27. कमजोर वर्गों और विशिष्टतया अनुसूचित जनजातियों का कल्याण।

28. सार्वजनिक वितरण प्रणाली का नियोजन और अनुश्रयण।

29. सामुदायिक बस्तियों का अनुरक्षण।

30. नियोजन और आकड़े तैयार करना, उनका समनाय और एकत्रीकरण।

31. सहायता कार्य में दुर्निव निवारणार्थ निर्माण मरम्मत और अनुरक्षण सहायता कार्यों ती गृहों की स्थापना और उनका अनुरक्षण निर्धन गृहों शरणालयों, अनाथालयों, बाजारों और विश्राम गृहीं की स्थापना प्रबंध अनुरक्षण तथा निरीक्षण।

8.6 पंचायती राज संस्था की संरचना एवं कार्य

उपरोक्त कार्यों को संचालित करने के लिए जिला पंचायत समितियों के माध्यम से कार्य करेगी जो इस प्रकार है-

प्रशासनिक समिति, शिक्षा समिति, जल प्रबंधन समिति निर्माण कार्य समिति, नियोजन और विकास समिति, स्वास्थ्य समिति। प्रत्येक समिति में एक महिला सदस्य एक अनुसूचित जाति सदस्य एक पिछड़ा वर्ग सदस्य अनिवार्य रूप से होंगे।

विकास कार्यों के लिए जिलाधिकारी के स्थान पर मुख्य विकास अधिकारी

- विकास कार्यों के लिए जिलाधिकारी के स्थान पर एक अलग मुख्य अधिकारी तैनात किया जायेगा।

- मुख्य अधिकारी जिला पंचायत के अधीन रहकर कार्य करेगा।

- मुख्य अधिकारी, डी.आर.डी.ए. तथा जिला पंचायत दोनों के कार्यों को सम्पादित करेगा।

- विधायक निधि पूर्वांचल विकास निधि, बुन्देलखण्ड विकास निधि तथा एस आर याई जिलाधिकारी के स्थान पर मुख्य अधिकारी/ सी डी ओ द्वारा डी.आर.डी.ए के माध्यम से संचालित की जायेगी।

- भारत सरकार द्वारा सासद निधि के संचालन के लिए जिलाधिकारी को अधिकृत किया गया है अतः सांसद निधि पूर्ववत जिलाधिकारी के नियंत्रण में रहेगी।

जिला स्तरीय अधिकारी जिला पंचायत के नियंत्रण में

मुख्य अधिकारी -

- **डी डी.ओ. डिप्टी सी.एम.ओ. वी.आई. ओ.एस. बी.एस.ए।**
- **अधिशासी अभियन्ता, नलकूप जल निगम।**
- **अधिशासी / सहायक अभियन्ता लघु सिंचाई।**
- **अधिशासी अभियन्ता (कै) ग्रामीण अभियनता सेवा।**
- **जिला युवा कल्याण अधिकारी।**
- **जिला समाज कलयाण अधिकारी।**
- **कार्यक्रम अधिकारी (बाल विकास परियोजना)।**

- **जिला पशुधन अधिकारी।**
- **जिला कृषि अधिकारी।**
- **सहायक पंजीयन, सहकारिता।**
- **जिला भूमि संरक्षण अधिकारी।**
- **जिला उद्यान अधिकारी।**
- **सहायक निदेशक मतस्य।**
- **जिला गन्ना विकास अधिकारी।**

- जिला दुग्ध विकास अधिकारी।
- जिला पंचायत राज अधिकारी

जिला पंचायत के सलाहकार के रूप में कार्य करने वाले अधिकारी:

- सी.एम.ओ. डी.एस.ओ (जिला पूर्ति अधिकारी)।
- उप क्षेत्रीय विपणन अधिकारी।
- जिला वन अधिकारी।
- अधिशासी अभियन्ता लोक निर्माण विभाग।
- अधिशासी अभियन्ता विद्युत।
- अधिशासी अभियन्ता, सिचाई विभाग।
- सामान्य प्रबंधक जिला उद्योग केन्द्र।
- जिला अर्थ एवं संख्या अधिकारी।

जिला ग्राम्य विकास अभिकरण का पुनर्गठन (DRDA)

- DRDA के अध्यक्ष अब जिलाधिकारी के स्थान पर जिला पंचायत के अध्यक्ष होंगे।
- DRDA की शासी निकाय में वर्तमान सदस्यों के अतिरिक्त ।
- जिला पंचायत की समितियों के अध्यक्ष।
- वर्णक्रमानुसार क्षेत्र पंचायतों के 50 प्रतिशत प्रमुखों को एक-एक वर्ष के लिए सदस्य बनाया गया है।

जिला योजना समिति

प्रदेश सरकार द्वारा उत्तर प्रदेश जिला योजना समिति अध्यादेश, 1999 निर्गत करके एक "जिला योजना समिति के गठन का प्राविधान किया गया है इस समिति की मुख्य बातें निम्नलिखित हैं-

समिति का गठनः

- समिति के 4/5 सदस्य, जिला पंचायत एवं म्यूनिसिपैलिटीज के निवर्वाचित सदस्यों से ग्रामीण एवं शहरी जनसंख्या के अनुपात के आधार पर निर्वाचित होंगे।
- समिति के 1/5 सदस्यों को राज्य सरकार द्वारा नामित किया जायेगा, जिसमें से मंत्रिमंडल के एक नाम निदिष्ट मंत्री, जो समिति के अध्यक्ष होंगे। अध्यक्ष, जिला पंचायत, जो समिति का उपाध्यक्ष होगा।
- जिला मुख्यालय की नगरीय स्थानीय निकाय का नगर प्रमुख अथवा अध्यक्ष, जैसी भी स्थिति हो, समिति का उपाध्यक्ष होगा जिलाधिकारी पदेन
- अन्य सदस्य जिन्हें राज्य सरकार नाम निदिष्ट करें। नामित किये जा सकेंगे।
- प्रत्येक जिले में समिति के सदस्यों की संख्या कम से कम 20 और 40 से अधिक नहीं होगी।
- जनपद के सभी सांसद एवं विधायक समिति के स्थानीय आमंत्रित होंगे।
- मुख्य कार्यकारी अधिकारी समिति का पदेन सचिव होगा और जिला अर्थ एवं संख्या अधिकारी पदेन संयुक्त सचिव होगा।
- समिति के सदस्यों के निर्वाचन का कार्य राज्य निर्वाचन आयोग द्वारा किया जायेगा

नियोजन प्रक्रिया

- प्रतिवर्ष ग्राम पंचायत द्वारा अपनी विकास योजना तैयारी की जायेगी।
- क्षेत्र पंचायत द्वारा ग्राम पंचायतों की विकास योजनाओं को समेकित करते हुए, क्षेत्र की विकास योजना तैयार की जायेगी।
- जिला पंचायत द्वारा क्षेत्र पंचायतों की विकास योजनाओं को समेकित करते हुए तैयार की गयी विकास योजना को जिला योजना समिति को संदर्भित किया जायेगा।
- पंचायतों एवं नगरीय संस्थाओं से प्राप्त विकास योजनाओं पर सम्यक रूप से विचार करने का अधिकार जिला योजना समिति का होगा।
- जिला योजना समिति द्वारा जिला पंचायत एवं म्यूनिसिपलिटीज द्वारा तैयार की गयी विकास योजनाओं पर, उनके पारस्परिक हित, विशेष रूप से क्षेत्रीय नियोजन, पानी एवं अन्य भौतिक एवं प्राकृतिक संसाधनों में हिस्सेदारी अवस्थापना एवं पर्यावरणीय

एकीकृत विकास पर विचार करते हुए जनपदों के लिए जिला योजना को अन्तिम रूप दिया जायेगा।

जिला योजना समिति के कार्य:

जिला योजना समिति के निम्नलिखित कार्य होंगे-

- राष्ट्रीय एवं राज्य स्तरीय उददेश्यों के अधीन स्थानीय आवश्यकताओं एवं उद्देश्यों का निर्धारण।
- योजनाओं हेतु प्राकृतिक तथा मानव संसाधनों से सम्बन्धित आंकड़ों का संग्रहण, संकलन तथा अद्यतन करना और जिले, विकास खण्डवार संसाधनों की रूपरेखा तैयार करना।
- ग्राम विकास खण्ड एवं जनपद स्तर पर उपलल्प सुविधाओं को सूचीबद्ध एवं निरूपित करना।
- प्राकृतिक एवं अन्य संसाधनों के अधिकतम तथा न्यायसंगत उपयोग / दोहन करने की दृष्टि से विकास के लिए नीतियों, कार्यक्रमों तथा प्राथमिकताओं का निर्धारण।
- योजना के उद्देश्यों एवं रणनीतियों के अनुरूप वार्षिक योजना एवं पंचवर्षीय योजनाओं के प्रारूप का निरूपण, संशोध एवं समेकित करना।
- जिले के लिए एक रोजगार योजना तैयार करना।
- जिला योजना के वित्तपोषण हेतु वित्तीय संशाधनों का आंकलन।
- जिले में कार्यान्वित हो रही समस्त योजनाओं का अनुश्रवण, समीक्षा एवं मूल्यांकन।
- जिला विकास योजना के सम्पूर्ण ढांचे के भीतर रहते हुए सेक्टोरल योजनाओं हेतु परिव्यय का अवंटन।

समिति की बैठक प्रत्येक त्रैमास में कम से कम एक बार अवश्य आहूत की जायेगी।

जिला योजना समिति के गठन के साथ ही जिला स्तर पर विद्यमान प्रक्रिया तथा जिला नियोजन एवं अनुश्रवण समिति एवं जिला योजना समन्वय एवं कार्यान्वयन समिति समाप्त हो जायेगी।

जिला योजना का परिव्यय सीधे जिलों को और स्वीकृतियां भी जिला स्तर पर

- **शासन द्वारा जिला योजना का सम्पूर्ण राज्य का परिव्यय निर्धारित मापदण्डों के आधार पर जिलों में विभाजित किया जायेगा।**
- **नवीन व्यवस्था में जिलेवार निर्धारित परिव्यय (एकमुश्त/किश्तों में) शासन द्वारा जिलों को सीधे उपलब्ध करा दिया जायेगा**
- **जिला योजना के सम्पूर्ण राज्य के परिव्यय की धनराशि का बजट प्राविधान किया जायेगा।**
- जिलों द्वारा जिला योजना के परिव्यय के आधार पर निर्धारित प्रक्रिया अपनाते हुए जिला स्तर पर ही जिला योजना तैयार की जायेगी और जिला योजना समिति" द्वारा उसे अन्तिम रूप दिया जायेगा।
- जिला योजना शासन द्वारा भेजे गये मार्ग निर्देशों के आधार पर तैयार की जायेगी।

- जिला योजना समिति द्वारा जिला योजना को अन्तिम रूप देने के पश्चात स्वीकृतियां देने और धनराशि अवमुकत करने का कार्य जिलाधिकारी द्वारा जिला स्तर पर ही किया जायेगा। जिलाधिकारी स्वीकृति जारी करते समय यह सुनिश्चित करेंगे कि जिला योजना शासन के मार्गनिर्देशों के अनुयप हैं।
- जिलाधिकारी को जिला योजना में पुनर्नियोजन का अधिकार भी होगा।
- जिलाधिकारी को पदेन विशेष सचिव, वित्त नामित किया जायेगा।
- यह व्यवस्था वर्ष 2000-2001 की जिला योजना से लागू होगी।

8.9 सामाजिक विकास में सामुदायिक सहभागिता

पंचायती राज व्यवस्था में ग्राम सभा धारा 11 (1) की बैठक का विशेष महत्त्व है। आमतौर पर यह बैठक वर्ष में दो बार होती है एक रबी की फसल कटने के बाद दूसरी खरीफ की फसल कटने के बाद। रबी की फसल कटने के बाद की बैठक आमतौर पर अप्रैल-मई में होती है इसमें विगत वर्ष के सम्पन्न कार्यक्रम का हिसाब-किताब समझकर आगे के लिए पूरे वर्ष की योजना बनायी जाती है। दूसरी बैठक खरीफ की फसल कटने के बाद अक्टूबर के आस-पास होती है इसमें छमाही कार्य की प्रगति पर विचार होता है।

ग्राम सभा का गठन

ग्राम सभा, ग्राम पंचायत, के समस्त मतदाता सरकारी ग्राम स्तरीय कर्मचारी को मिलाकर बनती हैं यह ग्राम पंचायत की सर्वोच्च संस्था है ग्राम सभा द्वारा चुनाव से ही ग्राम प्रधान एवं सदस्यों का चयन होता है सदस्य अपने में से उपप्रधान का चुनाव करते 12

ग्राम सभा की बैठक का प्रारूप

ग्राम सभा की खुली बैठक का आयोजन करने हेतु बैठक से 15 दिन पूर्व पूरी ग्राम सभा में बैठक की तिथि, समय स्थल का मुनादी किया जाता हैं बैठक की सूचना लिखित रूप से निकालकर पूरे गाँव में घुमाकर हस्ताक्षर भी किया जाता है तथा बैठक का ब्यौरा गाँव में लिखकर सार्वजनिक स्थलों पर चस्पा भी कराया जाता है ताकि अधिकाधिक प्रचार प्रसार करके बैठक को सफल बनाया जा सके।

ग्राम सभा की बैठक का तरीका

ग्राम सभा की बैठक पूर्व निर्वाचित सूचना के मुताबिक निर्धारित तिथि व स्थल पर प्रारमी की जाती हैं बैठक में कुल ग्राम सभा के मतदाताओं का 1/5 भाग उपस्थित होना जरूरी होता है उपस्थिति कम होने पर बैठक को स्थगित कर दिया जाता है पुनः स्थगित बैठक के लिए कोरम का होना जरूरी नहीं होता है।

कार्यवाही

कोरम पूर्ण होने के उपरानत सचिव (सरकारी विभाग का ग्राम स्तरीय कार्यकर्ता) अध्यक्ष (ग्राम प्रधान) के आदेशानुसार कार्यवाही को प्रारमा करते हैं। कार्यवाही में निम्न बिन्दुओं पर चर्चा की जाती है-

पिछली कार्यवाही पर विचार बैठक में सर्वप्रथम सचिव महोदय पहली बैठक में हुई कार्यवाही को पढ़ करके सुनाते हैं। पूरा पढ़कर सुनाने के उपरान्त गाँव के सभी सदस्य अपनी सहमति देते हैं या कोई प्रश्न हो कि पिछली बैठक में अमुक कार्यवाही हुई थी वह नहीं सुनाया गया तो उस पर विचार किया जाता है। पिछली कार्यवाही की पुष्टि होने के उपरानत कार्यवाही को आगे बढ़ाया जाता है।

आय पर चर्चा: पिछली कार्यवाही की पुष्टि हो जाने के उपरान्त गाँव में प्राप्त घन और उससे हुए कार्य पर सचिव द्वारा पूरी ग्राम सभा के सदस्यों को बताया जाता है आय-व्यय में अनतर पाने पर या कार्य में कोई भी संदेह होने पर ग्राम सभा के किसी भी व्यक्ति द्वारा तुरन्त पूछा जा सकता है कि वह घन कहां से आया और कहां गया। आय-व्यय की चर्चा पूर्ण होने पर आगे कार्यवाही को बढ़ाया जाता है।

आगामी कार्यवाही पर चर्चा आय-व्यय की चर्चा पूर्ण होने पर एवं सभी लोगों के सहमत होने के बाद गाँव में वर्ष भर कौन-कौन से कार्य प्राथमिकता के आधार परकिये जाने है, इस पर चर्चा की जाती है तथा योजना अनुरूप मात्र लाभार्थियों का चयन ग्राम सभा की बैठक में सर्वसम्मति से किया जाता है लाभार्थी के चयन में सबकी सहमति होती है इस तरह से पूरे वर्ष के लिए गाँव में कार्य हेतु योजना एवं लाभार्थियों का चयन यिका जाता है इसी योजना के तहत कार्य का सम्पादन किया जाता है तथा खुली बैठक में चयनित लाभार्थी को ही योजना का लाभ दिया जाता है। अगर खुली बैठक में तय किये गये कार्य के अलावा कार्य ग्राम पंचायत या सरकार द्वारा किया जाय या बिना चयनित लाभार्थी को लाम दिया जाय तो वह अनुचित होगा, जिसकी जिम्मेदारी ग्राम पंचायत सचिव की होगी।

अन्य आवश्यक विचार उक्त चर्चा के अलावा ग्राम सभा अन्य कोई चर्चा कर सकती है चाहे कोई विवाद के निपटारा का कार्य हो, या सार्वजनिक हित का कार्य हो या कोई भी कार्य ग्राम समुदाय से जुडा हो। अध्यक्ष (ग्राम प्रधान की आज्ञा से चर्चा की जा सकती है।

ग्राम सभा की बैठक वर्ष में दो बार होती है किन्तु आवश्यकतानुसार बीच में भी बैठक को गाँव के मतदाताओं की मांग पर या प्रधान के आदेशानुसार सचिव द्वारा बुलाया जा सकता है। बैठक के लिए कुल मतदाताओं के 1/5 लोगों का सहमत होना जरूरी होता है। बैइक के लिए सूचना तीस दिन के अन्दर प्रसारित कर बैठक किया जा सकता है।

ग्राम सभा के विकास एवं हित में ग्राम सभा की खुली बैठका का महत्व बहुत है। अगर ग्राम सभा के साथ बैठकों में पारदर्शिता व नियमानुसार कार्यवाही की जाये तो पूरा गाँव एक हो सकेगा तथा गाँव का विकास सुगम हो जायेगा। गाँव की आय भी स्थानीय लोगों द्वारा बढ़ सकती हैं गाँव का विवाद गाँव में ही हल हो सकता है। गाँव स्वाशासी व स्वावलम्बी बन सकता है।

अभ्यास प्रश्न

1. संविधान की ग्यारहवीं अनुसूची में कितने विषय पंचायती राज संस्थाओं से संबंधित हैं?

A. 23 B. 25 C. 29 D. 35

2. संविधान के किस अनुच्छेद के अंतर्गत जिला नियोजन समिति (District Planning Committee) का प्रावधान है?

A. अनुच्छेद 243-G B. अनुच्छेद 243-ZD C. अनुच्छेद 243-F D. अनुच्छेद 240

3. सांसदों की स्थानीय क्षेत्र विकास योजना (MPLADS) की घोषणा किस वर्ष की गई थी?

A. 1992 B. 1993 C. 1994 D. 1995

4. जिला नियोजन समिति का मुख्य कार्य क्या है?

A. जिले में पंचायत चुनाव कराना

B. जिले में पंचायतों के खातों का ऑडिट करना

C.पंचायतों एवं नगर निकायों की योजनाओं का समेकन करना

D.केन्द्र पोषित योजनाओं का क्रियान्वयन

8.14 सार संक्षेप

संविधान की 11वीं अनुसूची में दिये गये 29 विषयों के बारे में कार्यों का ढांचा बनाने तथा उनके क्रियान्वय के लिए जरूरी शक्तियों एवं उत्तरदायित्यों का हस्तान्तरण करने के लिए ग्रामीण क्षेत्र तथा रोजगार मंत्रालय ने एक कार्यदल बनाया है। संविधान संशोधन अधिनियम को ध्यान में रखते हुए ज्यादातर राजयों ने सिद्धान्ततः पंचायती राज प्रणाली के तीनों स्तरों को शक्तिया तथा अधिकार स्थान्तरित कर दिये हैं। कुछ चयनित राजयो में पंचायतों को शक्तियों के हस्तान्तरण के बारे में अध्ययन करने का निर्णय लिया गया।

8.15 शब्दावली

1. **पंचायती राज -** ग्रामीण भारत में लोकतांत्रिक विकेन्द्रीकरण पर आधारित स्थानीय स्वशासन की व्यवस्था, जिसे संविधान के 73वें संशोधन द्वारा संवैधानिक दर्जा प्रदान किया गया।

2. **ग्राम सभा -** ग्राम पंचायत क्षेत्र में रहने वाले सभी पंजीकृत मतदाताओं का सामूहिक निकाय, जो पंचायत का आधार है तथा पंचायत के कार्यों की निगरानी, अनुमोदन और सामाजिक अंकेक्षण का महत्वपूर्ण माध्यम है।

3. **त्रिस्तरीय संरचना**- पंचायती राज व्यवस्था की वह संरचना जिसमें ग्राम स्तर पर ग्राम पंचायत, खण्ड स्तर पर पंचायत समिति और जिला स्तर पर जिला परिषद की व्यवस्था की गई है।

4. **लोकतान्त्रिक विकेन्द्रीकरण-** शासन की शक्तियों और उत्तरदायित्वों का केन्द्र से स्थानीय स्तर तक हस्तान्तरण, जिससे जनता की भागीदारी सुनिश्चित हो और स्थानीय आवश्यकताओं के अनुसार विकास संभव हो सके।

5. **73वां संविधान संशोधन अधिनियम** - वह संवैधानिक संशोधन जिसके द्वारा पंचायती राज संस्थाओं को संवैधानिक मान्यता दी गई।

8.16 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1–C (29), 2–B (अनुच्छेद 243-ZD), 3–B (1993), 4–C (पंचायतों एवं नगर निकायों की योजनाओं का समेकन करनाअभ्यास प्रश्नों के उत्तर)

8.17 संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. पंचायतों का सशक्तीकरण राकेश चतुर्वेदी 2003 "उद्योग नगर प्रकाशन, ए-32. अशोक नगर, गाजियाबाद।

2. विकेन्द्रीकरण व्यवस्था में ग्राम पंचायतों, क्षेत्र पंचायतों तथा जिला पंचायतों को प्रदत्त प्रशासनिक एवं वित्तीय अधिकार 1998 सूचना एवं जनसम्पन विभाग यूपी. लखनऊ।

3. नागरिक चार्टर पंचायती राज निदेशालय, उ.प्र. छठा तल जवाहर भवन लखनऊ।

4. पंचायती राज सशक्तीकरण हेतु क्षमता विकास सहभागी शिक्षण केन्द्र लखनऊ तथा पंचायती राज मंत्रालय भारत सरकार एवं प्रिया, नई दिल्ली।

5. सामाजिक अनुसंधान (शोध) एम एल गुप्ता डी.डी. शर्मा साहित्य भवन हास्पिटल रोड आगरा-282003

6. हिस्ट्री ऑफ पंचायती राज इन इंडिया एच.टी.टी.पी./ वीकीपीडिया ओ.आर. जी. इन

7. रिथिकिंग दा रोटेशन टर्म ऑफ रिर्जवड सीटस् फॉर वीमन इन पंचायती राज डा. नुपुर तिवारी-कॉमन वेल्थ जनरल ऑफ लोकल गवनरनेन्स Wikipedia, 2009

8.10 निबंधात्मक प्रश्न

1. सामाजिक विकास में सामुदायिक सहभागिता की प्रासंगिकता को समझाइये।

2. जिला योजना समिति के कार्य बताइये।

3. क्षेत्र पंचायत की बैठकों की प्रकिया पर टिप्पणी कीजिय

4. 73वां संविधान की विशेषताओं को बताइये।

5. ग्राम सभा के कार्य बताइये।

6. विकास कार्यों के लिए जिलाधिकारी के स्थान पर मुख्य विकास अधिकारी के कार्य बताइये।

7. जिला पंचायत के सामान्य अधिकार और कर्तव्य बताइये।

8. बलवंत राय मेहता कमेटी की रिर्पोट पर टिप्पणी कीजिये।

9. ग्राम पंचायत की खुली बैठक पर टिप्पणी कीजिये।

इकाई-9 विकास एक मानवाधिकार परिप्रेक्ष्य

इकाई संरचना

9.1 प्रस्तावना

9.2 उद्देश्य

9.3 मानव विकास की अवधारणा

9.4 मानव विकास का परिमापन

9.5 मानव विकास एवं मानवाधिकार

9.6 भारतीय संविधान के सामाजिक आदर्श

9.7 मौलिक अधिकार

9.8 मौलिक अधिकारों का स्वरुप

9.9 आलोचनात्मक समीक्षा

9.10 सारांश

9.11 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

9.12 निबंधात्मक प्रश्न

9.13 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

9.1 प्रस्तावना

विकास एक बहुआयामी अवधारणा है। सामान्यतया विकास का आशय है स्वीकृत एवं वांछित लक्ष्यों को प्राप्त करने हेतु निर्देशित परिवर्तन। सामाजिक एवं समाजकार्य की दृष्टि से विकास का अभिप्राय है समाज के सदस्यों की जीवन दशाओं तथा उनकी गुणवत्ता में उन्नयन होना। सामाजिक-आर्थिक दृष्टि से विकास का प्रमुख उद्देश्य है लोगों को आर्थिक उत्पादक एवं सामाजिक तुष्टिपरक जीवन हेतु अग्रसारित करना। समाज विज्ञान में मानव विकास की अवधारणा को मानव के सामर्थ्य में वृद्धि, चयन का विस्तार, स्वतंत्रता का वर्द्धन तथा मानवाधिकारों का परिपालन, आदि अर्थों में स्वीकारा गया है। मानव विकास की रिपोर्ट के अनुसार मानव विकास का लक्ष्य है व्यक्तियों को स्वस्ति बोध कराना तथा आर्थिक वृद्धि इस लक्ष्य को प्राप्त करने हेतु एक साधन मात्र है।

9.2 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के उपरांत आप-

1. मानव विकास का अभिप्राय जान सकेंगे।

2. मानव विकास के परिमापन के विविध सूचक जान सकेंगे।

3. भारतीय संविधान के आदर्श एवं मूल्य को समझ सकेंगे।

4. मौलिक अधिकारों की पृष्ठभूमि, महत्त्व एवं विशेषता से अवगत होंगे।

9.3 मानव विकास की अवधारणा

विकास की अवधारणा के विविध आयाम है - आर्थिक, राजनीतिक, मनोवैज्ञानिक एवं सामाजिक। आर्थिक विकास का आशय है प्रति व्यक्ति आय में वृद्धि, कुल राष्ट्रीय उत्पाद एवं सकल घरेलू उत्पाद में बढ़ोतरी, इत्यादि। वस्तुतः आर्थिक विकास वह विधि है जिसके द्वारा कोई राष्ट्र सामाजिक प्रगति का लक्ष्य प्राप्त करता है। आर्थिक विकास इस भाँति एक साधन है, साध्य नहीं। सामान्यतया यह माना जाता है कि आर्थिक विकास वह माध्यम है जिसके द्वारा भूख, अशिक्षा, बीमारी, सामाजिक एवं आर्थिक असमानता को कम किया जा सकता है। आर्थिक विकास के बगैर आर्थिक वृद्धि के परिणाम सार्थक नहीं है। आर्थिक उत्पादकता में वृद्धि, औद्योगिकरण, सामाजिक एवं आर्थिक समानता, संस्थाओं का उन्नयन, आदि उद्देश्यों को नियोजन एवं आर्थिक राजनीतिक विकास के जरिये प्राप्त किया जा सकता है।

राजनीतिक विकास का आशय है जनतंत्र की प्रणाली का विकसित होना, व्यक्ति की स्वतंत्रता को महत्व दिया जाना, मानवाधिकारों का सम्मान किया जाना, व्यक्ति के अधिकार एवं कर्तव्य का एक संरचित स्वरूप निर्मित होना, जनसहभागिता का समान एवं पर्याप्त अवसर प्रदान किया जाना, इत्यादि।

मनोवैज्ञानिक दृष्टि से विकास का अभिप्राय है अर्जन की आवश्यकता को उच्च महत्व दिया जाना, मांग में प्रभावपूर्ण वृद्धि होना, नये उन्मेषों को स्वीकारना, प्रभुत्व स्थापित करना, क्षमताओं का उन्नयन करना, इत्यादि। सामाजिक विकास एक व्यापक सम्प्रत्यय है जिसके अन्तर्गत लोगों की सामाजिक प्रस्थिति को ऊँचा उठाने का लक्ष्य शामिल है। सामाजिक विकास में शिक्षा, स्वास्थ्य सेवा, आवास, सांस्कृतिक रम्यता, शिशुओं के संरक्षण, महिलाओं की प्रस्थिति में परिवर्तन, श्रमिकों का नियमन, बीमारियों के हास, निर्धनता में कमी, नियोजन में वृद्धि, इत्यादि पहलुओं पर बल दिया जाता है। टी० के० एन० उन्नीथान के शब्दों में सामाजिक विकास एक प्रक्रिया है जिसमें जीवन की गुणवत्ता तथा सामाजिक सम्बन्धों की विद्यमानता में नये प्रतिमान का सूत्रपात होता है।

विकास एक प्रक्रिया है जो सभी समाजों में घटित होती है। विकास के लक्ष्य विभिन्न समाजों में समय-समय पर बदलते रहते हैं। विकास के लक्ष्यों की संरचना एक पिरामिड के समान है जिसमें न्यूनतम मूलभूत आवश्यकता से लेकर सामाजिक-आर्थिक, सामाजिक-राजनीतिक एवं सांस्कृतिक आवश्यकताओं की श्रृंखला शामिल है। विकास की इस पिरामिड संरचना को तालिका संख्या 1 में देखा जा सकता है।

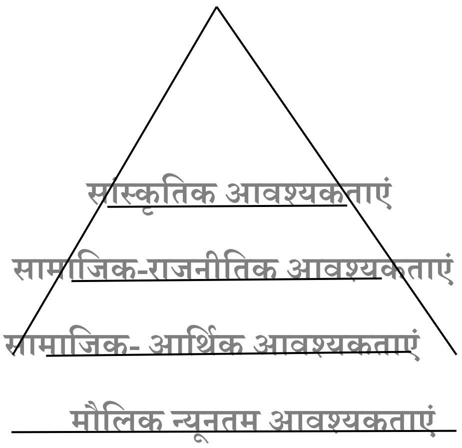

न्यूनतम मौलिक आवश्यकताएं- निर्धनता एवं बेरोजगारी को उन्मूलन, न्यूनतम आय की प्राप्ति, जनसहभागिता के जरिये सार्वजनिक सेवा की उपलब्धि।

सामाजिक-आर्थिक आवश्यकताएं- अपेक्षाकृत अधिक समता के साथ उच्च वृद्धि जनचेतना।

सामाजिक-राजनीतिक आवश्यकताएं- वितरक न्याय की समानता, सामाजिक समता, स्रोतों का पुनर्वितरण, जनतंत्र।

सांस्कृतिक आवश्यकताएं- मानव की क्षमताओं का पूर्ण विकास, रचनात्मकता।

विकास का अभिप्राय है व्यक्तियों के लिए ऐसे अनुकूल वातावरण निर्मित करना जिसके अन्तर्गत वे दीर्घायु, स्वस्थ एवं रचनात्मक जीवन प्राप्त करने में समर्थ हो सकें। मानव विकास वस्तुतः एक प्रक्रिया है जिसके द्वारा व्यक्तियों के चयन के अवसर तथा उनकी अर्जित हित कुशलता अथवा स्वस्तिबोध के स्तर विस्तृत होते हैं। सामान्यतः व्यक्तियों की पसन्दगी अनन्त हो सकती है तथा वे समय-समय पर बदलती भी रहती हैं। दीर्घ एवं स्वस्थ जीवन का होना, ज्ञान अर्जन करना एवं शिष्ट जीवन स्तर हेतु स्रोतों की उपलब्धि होना। इन तीन मूलभूत तत्वों के अतिरिक्त अन्य पहलू भी मानव विकास में शामिल हैं, जैसे-राजनीतिक, आर्थिक एवं सामाजिक स्वतंत्रता, रचनात्मकता एवं उत्पादकता के अवसर, आत्म सम्मान का अनुभव एवं मानवाधिकारों की सुरक्षा, इत्यादि।

यू०एन०डी०पी० (1990:10) ने मानव विकास को एक ऐसी प्रक्रिया के रूप में परिभाषित किया है जिसके द्वारा मानव की पसन्दगी के क्षेत्र का विस्तार होता है। अर्थशास्त्री महबूब उल हक एवं अमर्त्य सेन ने अपनी रचनाओं में मानव विकास भी अवधारणा एवं इसके परिमापन के पहलुओं की विवेचना की। महबूब उल हक, जो मानव विकास रिपोर्टों के प्रमुख शिल्पी थे, ने अपनी पुस्तक रिफलेक्शन्स ऑन ह्यूमन डेवलपमेंट (1995) में मानव विकास की अवधारणा, इसके उद्भव एवं इसके महत्व का विश्लेषण किया। अमर्त्य सेन ने अपनी पुस्तक डेवलपमेंट एज फ्रीडम (1999) में निर्धनता को मानव क्षमता निर्माण में वंचना के रूप में स्वीकारते हुए मानव विकास के विविध पहलुओं

को विश्लेषित किया है। मानव विकास के अन्य विश्लेषकों में पाल स्ट्रीटन, टी०एन० श्रीनिवासन, अचिन चक्रवर्ती, गुस्ताव रानिस एवं फ्रांसेस स्टीवर्ट आदि उल्लेखनीय है।

मानव विकास के दो पक्ष हैं: (अ) मानव की क्षमताओं की रचना किया जाना, जैसे- स्वास्थ्य, ज्ञान एवं निपुणता का संवर्द्धन करना तथा (ब) अपनी अर्जित क्षमताओं का उपयोग व्यक्तियों द्वारा अपने आराम एवं विलास को बढ़ाने, उत्पादक हितों में करने अथवा सांस्कृतिक, सामाजिक एवं राजनीतिक मामलों में सक्रियता लाने हेतु किया जाना। इन दोनों पक्षों के समन्वित प्रारूप में यह स्पष्ट होता है कि मानव विकास केवल आय एवं सम्पत्ति की वृद्धि, मानव संसाधन विकास, मानव की मूलभूत आवश्यकताओं की पूर्ति एवं मानव कल्याण तक सीमित अवधारणा नहीं है, बल्कि मानव केन्द्रित एक व्यापक एवं बहुआयामी अवधारणा है। मानव विकास रिपोर्ट, 1990 में विकास की पूर्ववर्ती अवधारणाओं की सीमाओं का विश्लेषण करते हुए मानव विकास की व्यापकता को निम्न रूप से स्पष्ट किया गया है-

- कुल राष्ट्रीय उत्पाद मानव विकास के लिए आवश्यक है किन्तु पर्याप्त नहीं क्योंकि कुल राष्ट्रीय उत्पाद एवं प्रति व्यक्ति आय में वृद्धि के बावजूद कुछ समाजों में मानव की प्रगति का अभाव तब तक बना रहता है जबत तक दर्बल समूहों के हितों के परिप्रेक्ष्य में विशिष्ट प्रयास न किया जाय।
- पूँजी निर्माण एवं मानव संसाधन विकास के सिद्धान्तों में मानव को साध्य की बजाय साधन के रूप में माना जाता है। इस दृष्टिकोण में मानव को वस्तुओं के उत्पादन के साधन / निमित्त के रूप में स्वीकारा गया है, जो आंशिक दृष्टिकोण है। मानव विकास के व्यापक परिप्रेक्ष्य में व्यक्ति वस्तुओं के उत्पादन का निमित्त मात्र नहीं है अपितु साध्य है तथा इस प्रक्रिया का लाभार्थी है।
- मानव कल्याण दृष्टिकोण में व्यक्तियों को विकास की प्रक्रिया के महज लाभार्थी के रूप में स्वीकारा गया है, सहभागी के रूप में नहीं। मानव विकास दृष्टिकोण में व्यक्ति की सहभागिता पर बल देते हुए उत्पादन की संरचना की बजाय वितरण की नीति को महत्वपूर्ण माना गया है।
- मूलभूत आवश्यकता दृष्टिकोण में वंचित आबादी के लिए भोजन, वस्त्र, आवास, स्वास्थ्य सेवा, जल आपूर्ति जैसी वस्तुओं एवं सेवाओं की उपलब्धि को ही केन्द्रीय माना गया है। जबकि मानव विकास दृष्टिकोण में मानव की पसन्दगी को महत्ता दी जाती है। मानव विकास की दृष्टि से मौलिक आवश्यकताओं की सन्तुष्टि होना ही पर्याप्त नहीं बल्कि व्यक्तियों की सहभागिता एवं गतिशील प्रक्रिया का होना अनिवार्य है।

इन विश्लेषणों से यह स्पष्ट है कि मानव विकास की व्यापक अवधारणा में मानव जीवन की जटिलताओं को समेटते हुए उसके समस्त सरोकारों तथा सांस्कृतिक, आर्थिक, सामाजिक एवं राजनीतिक भिन्नताओं को शामिल किया गया है। इस व्यापक परिभाषा के आधार पर कुछ प्रश्न उभरते हैं क्या मानव विकास का परिमापन एवं परिमाणिकरण सम्भव है? क्या यह फलीभूत एवं प्रभावी है? क्या इसका नियोजन एवं निर्देशन सम्भव है? अगले खण्ड में इन प्रश्नों का विश्लेषण किया गया है।

9.4 मानव विकास का परिमापन

मानव विकास को मापने हेतु मानव विकास रिपोर्ट, 1990 में विविध सूचकों का उपयोग किया गया हैः

प्रथम सूचक है जीवन प्रत्याशा अर्थात् दीर्घ आयु का होना। लम्बी आयु को अपने आप में मूल्यवान माना गया है तथा पर्याप्त पोषण एवं उत्तम स्वास्थ्य को दीर्घायु जीवन की प्रत्याशा से घनिष्ट रूप से सम्बद्ध एवं आधारभूत माना गया है।

द्वितीय सूचक है शिक्षा, विशेषकर गुणात्मक शिक्षा जो आधुनिक समाज में उत्पादक जीवन के लिए अनिवार्य माना जाता है। मूल मानव विकास के लिए साक्षरता को अनिवार्य माना गया है जबकि उच्च शिक्षा की उपलब्धि मानव विकास के उच्च स्तर से सम्बद्ध है।

मानव विकास का तीसरा सूचक है सभ्य जीवन स्तर हेतु भौतिक स्रोतों पर स्वामीत्व / नियंत्रण होना, जैसे- भूमि, सम्पत्ति, साख, आय एवं अन्य स्रोत। इन स्रोतों के सन्दर्भ में पर्याप्त तथ्यों की जानकारी के अभाव में आय को आधारभूत मानते हुए राष्ट्रीय स्तर पर प्रति व्यक्ति आय को प्रमुखता दी गई है। इन आंकड़ों को वास्तविक क्रय शक्ति के साथ व्यवस्थित करते हुए प्रति व्यक्ति कुल राष्ट्रीय उत्पाद के सूचक के रूप में अधिक शुद्ध बनाया जाना चाहिए। यह तथ्य भी विचारणीय है कि मानव क्षमताओं के रूपान्तरण के सन्दर्भ में प्रति व्यक्ति आय के घटते हुए लाभ को भी प्रतिबिम्बित किया जाना चाहिए। दूसरे शब्दों में, शिष्ट जीवन स्तर हेतु अत्यन्त अधिक आय की आवश्यकता नहीं, एक सीमा के पश्चात अतिरिक्त आय का लाभ क्रमशः घटता जाता है।

मानव विकास के उपरोक्त तीनों सूचकों की सामान्य कमी यह है कि ये औसत सूचक हैं जिनके द्वारा व्यक्तियों के बीच गहरी असमानताएं नहीं ज्ञात हो पाती, जबकि वास्तव में समाज में लिंग, आय, सामाजिक प्रस्थिति, आदि आधारों पर असमानताएं विद्यमान है।

स्वतंत्रता के विविध स्वरूपों को मोटे तौर पर दो श्रेणियों में बाँटा जा सकता है- नकारात्मक एवं सकारात्मक स्वतंत्रता। नकारात्मक स्वतंत्रता का अर्थ है व्यक्ति को स्वेच्छाचारी शासन, गैर कानूनी बन्दी, व्यक्ति अथवा सम्पत्ति पर अवांछित आक्रमण, आदि से मुक्ति मिलना। जनतांत्रिक प्रणाली में अनेक संस्थाएं विकसित की गई हैं ताकि सार्वभौमिक मताधिकार, गुप्त मतदान प्रणाली, सम्पत्ति का अधिकार तथा वैयक्तिक अधिकार जैसी स्वतंत्रताओं की सुरक्षा हो सके। दूसरी ओर सकारात्मक स्वतंत्रता व्यक्ति को सार्वजनिक जीवन में सहभाग लेने, विरोधी दलों का गठन करने, श्रमिक संघ के गठन आदि का है संयुक्त राष्ट्र द्वारा मानवाधिकारों की सार्वभौमिक घोषणा, नागरिक एवं अधिकार प्रदान करती है। सकारात्मक स्वतंत्रता का सर्वाधिक व्यवस्थित स्वरूप राजनीतिक अधिकार तथा आर्थिक, सामाजिक एवं सांस्कृतिक अधिकार सम्बन्धी अन्तर्राष्ट्रीय सम्मेलन के मसौदे। इनमें अनेक वैयक्तिक अधिकारों को शामिल किया गया है, जैसे- व्यक्ति के जीवन, स्वतंत्रता एवं सुरक्षा का अधिकार, समानता, जनसभा की स्वतंत्रता,

विचार, धर्म एवं अभिमति की स्वतंत्रता, कार्य एवं रोजगार की पसन्दगी की स्वतंत्रता, भोजन, वस्त्र, आवास, शिक्षा समेत उपयुक्त जीवन स्तर का अधिकार, सामुदायिक जीवन में सहभागिता का अधिकार, इत्यादि।

चार्ल्स ह्युमना ने मानव स्वतंत्रता सूचक का निर्माण किया जिसमें स्वतंत्रता को मापने हेतु 40 पृथक गुणों का आधार बनाया, जैसे- आन्दोलन की स्वतंत्रता, जनसभा एवं भाषण की स्वतंत्रता, नृजातीय एवं लैंगिक समानता की स्वतंत्रता, अन्य जनतांत्रिक स्वतंत्रता, इत्यादि। किन्तु व्यावहारिक दृष्टि से मानव स्वतंत्रता को मापने में अनेक कठिनाइयाँ हैं। प्रथम कठिनाई यह है कि कौन सा तथ्य अधिकारों का गम्भीर उल्लंघन अथवा स्वतंत्रता का हनन है, यह तय करना आसान नहीं। जैसे यदि किसी देश में कुछ नागरिकों का पासपोर्ट जब्त कर लिया जाय तो क्या सैद्धान्तिक रूप से यह स्वीकार कर लिया जायेगा कि उस देश में नगारिकों के प्रवास पर प्रतिबन्ध है? अथवा यदि सरकार द्वारा नियंत्रित टेलीविजन पर किसी विरोधी अथवा आलोचक को बोलने का अवसर न दिया जाय तो क्या इसका आशय यह होगा कि उस देश में जनसंचार की स्वतंत्रता नहीं है तथा ऐसे प्रतिबन्ध को समाप्त किया जाना चाहिए?

मानव की स्वतंत्रता के परिमापन में दूसरी कठिनाई यह है कि विभिन्न प्रकार के अधिकारों में किसे प्राथमिकता दी जाय? जैसे- जनसभा की स्वतंत्रता अधिक महत्वपूर्ण है अथवा प्रेस की स्वतंत्रता? नृजातीय भाषा का अधिकार अधिक महत्वपूर्ण है अथवा मत देने का अधिकार अधिक महत्वपूर्ण है? तृतीय कठिनाई यह है कि स्वतंत्रता के हनन के विभिन्न स्तरों आंशिक हनन, वास्तविक हनन एवं सम्पूर्ण हनन का निर्धारण करना विवादास्पद है। चौथी कठिनाई यह है कि मानव की स्वतंत्रता एक ऐसा पहलू है जिसमें बहुत शीघ्रता से परिवर्तन सम्भव है तथा व्यवहार में भी ऐसा परिवर्तन होता रहता है। मसलन, 1985 के आसपास की अवधि (जब ह्युमना मानव स्वतंत्रता सूचकों के आधार पर विभिन्न देशों का आकलन कर रहे थे) में कई ऐसे देश जो मानव विकास के सूचक के आधार पर ऊपर थे, वे स्वतंत्रता के पैमाने पर काफी नीचे पाये गये, जैसे- पूर्व यूरोपीय देश, लैटिन अमेरिका में ब्राजील एवं पाराम्यूवे तथा एशिया में फिलिपींस, इत्यादि। किन्तु इनमें से अधिकांश देशों में कालांतर में जनतंत्र की स्थापना के साथ-साथ स्वतंत्रता में काफी वृद्धि हुई। इन उदाहरणों से यह स्पष्ट है कि मानव विकास के सूचक अपेक्षाकृत स्थिर हैं जिनमें एकाएक परिवर्तन नहीं होता जबकि राजनीतिक स्वतंत्रता में आकस्मिक परिवर्तन सम्भव है। जैसे सैन्य विप्लव के आधार पर सामाजिक-आर्थिक विकास के पहलुओं में भले ही परिवर्तन न हो किन्तु स्वतंत्रता में आकस्मिक हनन हो जाता है।

मानव विकास वस्तुतः सामाजिक-आर्थिक एवं राजनैतिक परिवर्तन के विविध पहलुओं को अभिव्यक्त करने का एक दृष्टिकोण है। मानव विकास के प्रतिवर्ष के रिपोर्ट में इसकी अवधारणा एवं इसके परिमापन को क्रमशः परिशुद्ध करने का प्रयास झलकता है। हाल के वर्षों में संपोषणीयता एवं पर्यावरण संरक्षण के पहलुओं को मानव विकास के परिप्रेक्ष्य में महत्वपूर्ण माना गया है। इस दृष्टि से विकास के उस स्वरूप की आलोचना की गई जिसमें प्रकृति एवं प्राकृतिक स्रोतों के दोहन के जरिये अधिकाधिक उत्पादन को महत्वपूर्ण माना जाता है। इसकी बजाय विकास एवं प्रकृति के सामंजस्य को अधिक प्रासंगिक माना गया है। अंततः हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि मानव विकास एक परिवर्ती

अवधारणा है जो समय, स्थान, मूल्य आदि आधारों पर बदलती रहती है। विविध अवधियों में मानव विकास के सूचकों को क्रमशः संशोधित कर उसे परिशुद्ध करने की प्रक्रिया जारी है।

9.5 मानव विकास एवं मानवाधिकार

मानव विकास एवं मानवाधिकार दो पृथक-पृथक अवधारणाएं हैं किन्तु दोनों का मौलिक लक्ष्य है व्यक्तियों के जीवन एवं उनकी स्वतंत्रता को समृद्ध करना। दोनों ही अवधारणाएं समाज में व्यक्तियों की स्वतंत्रता, स्वस्ति बोध तथा सम्मान को बढ़ाने के उद्देश्य से सम्बद्ध हैं। इस आधार पर हम कह सकते हैं कि मानव विकास दृष्टिकोण वस्तुतः उन क्षमताओं के अर्जन एवं प्राप्ति से सम्बद्ध है जिन्हें समाज महत्वपूर्ण एवं मूल्यवान समझता है। दीर्घ आयु स्वरूप जीवन, शैक्षणिक ज्ञान, उन्नत जीवन स्तर, इत्यादि मानव विकास सूचक के मूल आधार है जिन पर अन्य क्षमताएं आश्रित हैं। मसलन, दीर्घायु होना अपने आप में एक महत्वपूर्ण साधन है जिसके द्वारा दूसरी अन्य क्षमताएं अर्जित की जा सकती हैं क्योंकि बगैर जिन्दा रहे व्यक्ति को ज्यादा कुछ करने की स्वतंत्रता प्राप्त ही नहीं हो सकती।

मानवाधिकार की वैचारिकी इस धारणा पर आधारित है कि प्रत्येक व्यक्ति का प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष रूप से दूसरे व्यक्तियों, समूहों, समाजों अथवा राज्यों पर हक है। जॉन आस्टिन, जेरेमी बन्धम, एच०एल०ए० हार्ट एवं स्टिंग कांगर जैसे विधिक सिद्धान्तकारों ने यह विश्लेषित किया है कि व्यक्ति का हक अलग-अलग स्वरूपों में परिलक्षित हो सकता है। कुछ हक दूसरों की दखलन्दाजी से मुक्ति के स्वरूप में होते हैं तो कुछ अन्य दूसरों की दखलन्दाजी एवं सहायता की अपेक्षा पर आधारित होते हैं। स्वतंत्रता के पक्षधर विचारक पहले प्रकार के दो हक पर बल देते हैं जबकि सामाजिक सुरक्षा के समर्थक दूसरे प्रकार के हक पर बाल देते हैं। दूसरों की सहायता के दो स्वरूप हैं (अ) सकारात्मक रूप से सहयोग तथा (ब) नकारात्मक रूप से सहयोग जो इस आश्वासन पर आधारित होते हैं कि दूसरे किसी प्रकार का अवरोध उत्पन्न नहीं करेंगे। इस प्रकार मानवाधिकार वस्तुतः व्यक्तियों की स्वतंत्रता पर आधारित होते हैं।

मानव विकास एवं मानवाधिकार की अवधारणायें एक दूसरे की पूरक हैं। यदि मानव विकास के अन्तर्गत किसी समाज के सदस्यों की क्षमताओं एवं स्वतंत्रताओं के संवर्द्धन पर बल दिया जाता है तो मानवाधिकार के अन्तर्गत उन सामाजिक व्यवस्थापन पर बल दिया जाता है जिसके द्वारा व्यक्तियों की क्षमताएं एवं स्वतंत्रताएं सुरक्षित एवं संवर्द्धित होती हैं।

इन वैचारिक समानताओं के बावजूद मानव विकास एवं मानवाधिकार की राजनीति एवं केन्द्र पृथक-पृथक हैं। मानवाधिकार में प्रमुखतः राजनीतिक स्वतंत्रता, नागरिक अधिकारों एवं जनतांत्रिक आजादी को प्रमुखता दी गई है, यद्यपि शिक्षा के अधिकार, स्वास्थ्यसेवा के अवसर एवं अन्य स्वतंत्रताओं को भी सम्मिलित किया गया है। इसी प्रकार मानव विकास सचूकों में दीर्घ आयु, शिक्षा एवं अन्य सामाजिक आर्थिक सरोकारों को केन्द्रीय माना गया है, यद्यपि राजनीतिक एवं नागरिक अधिकार तथा जनतांत्रिक आजादी भी मानव विकास के वृहद् परिप्रेक्ष्य में शामिल हैं।

मानवाधिकार किस रूप में मानव विकास को प्रोन्नत करता है? इस प्रश्न के उत्तर में यह कहा जा सकता है कि मानवाधिकार का परिप्रेक्ष्य समाज में दूसरों को कर्तव्य का बोध कराकर मानव विकास की प्रोन्नति करता है। जैसे निःशुल्क प्राथमिक शिक्षा का अधिकार समाज में सबको प्राथमिक शिक्षा उपलब्ध कराने के दायित्व का बोध ही नहीं कराता बल्कि उस सामाजिक व्यवस्था के निर्माण पर बल देता है कि जिसमें कोई प्राथमिक शिक्षा से वंचित न रह जाय। मानवाधिकार का परिप्रेक्ष्य उन कर्ताओं एवं संस्थाओं के दायित्व के विश्लेषण की ओर भी अग्रसारित करता है।

मानवाधिकार को बढ़ाने में मानव विकास की क्या भूमिका है? इसका प्रत्युत्तर यह है कि जिस प्रकार मानव विकास को संवर्द्धित करने में मानवाधिकार महत्वपूर्ण है, उसी प्रकार मानवाधिकार को सुरक्षित एवं संवर्द्धित करने में मानव विकास का योगदान कई दृष्टि से महत्वपूर्ण है। सर्वप्रथम मानव विकास के गुणात्मक एवं मात्रात्मक सूचक मानवाधिकार विश्लेषण को एक मूर्त आकार प्रदान करते हैं। द्वितीय, यद्यपि मानवाधिकार अंततः वैयक्तिक हक से सम्बद्ध हैं तथापि उनकी उपलब्धि एवं सुरक्षा उपयुक्त सामाजिक दशाओं पर निर्भर करती है। मानव विकास का लक्ष्य है उन उपयुक्त सामाजिक दशाओं को निर्मित करना जिनमें व्यक्तियों की क्षमताएं बढ़ाई जा सकें तथा उनके वैकल्पिक चुनाव का दायरा विस्तृत हो सके। तृतीय मानव विकास सम्बन्धी विमर्श वस्तुतः मानवाधिकारों के परिप्रेक्ष्य में परिवर्तन एवं प्रगति के पहलुओं को जोड़कर मानवाधिकार की अवधारणा को अधिक वृहद्, उपयोगी एवं बोधगम्य बनाता है।

9.6 भारतीय संविधान के सामाजिक आदर्श

स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात् भारतीय जनमानस को स्वतंत्रता आन्दोलन के दौर की आकांक्षाओं के पोषण की अपेक्षा थी। इन अपेक्षाओं को स्वतंत्र भारत के संविधान के अन्तर्गत आदर्शों एवं मूल्यों के रूप में व्यवस्थित स्वरूप प्रदान किया गया। ये आदर्श एवं मूल्य हैं जनतंत्र के प्रति समर्पण तथा प्रत्येक नागरिक को न्याय, समानता एवं स्वतंत्रता की गारंटी प्रदान करना।

संविधान को राज्य के मौलिक आधार के रूप में जाना जाता है जिसके अन्तर्गत राज्य के लक्ष्यों, सरकार की संरचना के संस्थागत स्वरूपों एवं प्रकार्यों, नागरिकों के अधिकार एवं कर्तव्य की व्याख्या की गई है। भारत में 200 वर्षों के औपनिवेशिक शासन, स्वतंत्रता हेतु जन आन्दोलन, देश के विभाजन एवं साम्प्रदायकि दंगों के अनुभवों के कारण संविधान सभा के सदस्यों में वैचारिक मतभेद भी था। कुछ सदस्य समाजवादी आदर्शों के पक्षधर थे जबकि कुछ अन्य गांधीवादी वैचारिकी से प्रभावित थे। इन मतभेदों के बावजूद अधिकांश सदस्य उदारवादी विचारधारा के समर्थक थे। इन सदस्यों में पारस्परिक मतभेद मिटाने एवं संघर्षों को समाप्त करने का प्रयास किया गया।

इस प्रस्ताव में पारित लक्ष्य यद्यपि सामान्य प्रकार के थे किन्तु इसके जरिये निर्देश का एक ढांचा अवश्य मिल गया। इस ढांचे में संविधान सभा ने अगले दो वर्षों में संविधान का मसौदा 26 नवम्बर को पूरा कर लिया जिसे 26 जनवरी 1950 से भारतीय गणतंत्र में लागू किया गया।

संविधान की प्रस्तावना में इसके लक्ष्यों को दो स्वरूप में विश्लेषित किया गया- (अ) शासन की संरचना कैसी हो? तथा (ब) स्वतंत्र भारत में किन-किन आदर्शों को प्राप्त किया जाय? प्रस्तावना में उल्लेखित लक्ष्य हैं-

1. भारत को स्वायत्त, समाजवादी, धर्मनिरपेक्ष जनतांत्रिक गणराज्य के रूप में विवेचित करना तथा 2. भारत के समस्त नागरिकों को न्याय, स्वतंत्रता, समानता एवं भ्रातृत्व प्रदान करना।

स्वायत्तता का आशय है वगैर किसी वाह्य अथवा आन्तरिक हस्तक्षेप एवं नियंत्रण के राज्य द्वारा निर्णय लिया जाना।

समाजवादी का आशय है अर्थव्यवस्था में राज्य की भूमिका प्रमुख होगी जिसके द्वारा असमानता का अंत, सबकी मौलिक आवश्यकताओं की पूर्ति, समान कार्य के लिए समान वेतन, सम्पत्ति एवं उत्पादन के साधनों पर सीमित लोगों के आधिपत्य की बजाय उसका सामान्य जनों में विकेन्द्रीकरण आंदि लक्ष्य प्राप्त किये जायेंगे।

धर्मनिरपेक्षता के दो निहितार्थ हैं- (अ) राज्य सार्वजनिक कोष से किसी विशिष्ट धर्म का समर्थन नहीं करेगा तथा धर्म, जाति एवं रंग के आधार पर व्यक्तियों में भेदभाव नहीं करेगा तथा (ब) प्रत्येक व्यक्ति किसी भी धर्म में आस्था रखने हेतु स्वतंत्र होगा तथा प्रत्येक धार्मिक समूहों को अपनी गतिविधियों के प्रबन्धन की आजादी होगी।

जनतांत्रिक गणतंत्र का आशय है संविधान में वर्णित वयस्क मताधिकार, चुनाव, मौलिक अधिकारों की सुरक्षा एवं दायित्वपूर्ण सरकार के आधार पर संसदीय जनतांत्रिक प्रणाली का क्रियान्वयन किया जाना। गणतंत्र का अर्थ है सार्वजनिक जीवन से जुड़ी संस्थाओं पर वंशानुक्रम की बजाय चयन के आधार पर अधिकार प्राप्त करना।

न्याय का अभिप्राय है समाज द्वारा पुरस्कार एवं दायित्व के वितरण में सबके प्रति ईमानदारी बरता जाना। राजनीतिक दृष्टि से न्याय का अर्थ है व्यक्तियों को उनके हक के अनुरूप भोजन, वस्त्र, आवास, निर्णय में सहभागिता तथा सम्मानपूर्ण जीवन के अवसर प्रदान करना। संविधान में न्याय-सामाजिक, आर्थिक एवं राजनीतिक की प्राप्ति हेतु अस्पृश्यता, भेदभाव एवं बंधुआ मजदूरी की समाप्ति, जनकल्याण विशेषकर दुर्बल एवं वंचित समूहों के कल्याण एवं राजनीतिक सहभागिता के अधिकार के प्राविधान बनाये गये।

स्वतंत्रता का सामान्य अर्थ है चयन करने, निर्णय लेने एवं कार्य करने की आजादी प्राप्त होना। राजनीतिक दृष्टि से इसके दो अभिप्राय हैं-सकारात्मक एवं नकारात्मक । नकारात्मक स्वतंत्रता का आशय है वाह्य दबाव से मुक्ति। सकारात्मक स्वतंत्रता का अर्थ है चयन की वास्तविक आन्तरिक आजादी। संविधान की प्रस्तावना में विचार एवं अभिव्यक्ति की आजादी दी गई है तथा संविधान द्वारा प्रदत्त मौलिक अधिकारों के जरिये स्वतंत्रता प्रदान किया गया

है। किन्तु व्यवहार में यह प्रश्न अभी भी विवादास्पद बना हुआ है कि आर्थिक आजादी के बगैर बहुजनों द्वारा राजनीतिक एवं नागरिक स्वतंत्रता का उपयोग कैसे सम्भव है?

समानता वस्तुतः आधुनिक जनतांत्रिक वैचारिकी का सार है। समानता के अनेक पहलू हैं, जैसे- सामाजिक, आर्थिक एवं राजनीतिक समानता। प्रस्थिति की समानता का आशय है राज्य द्वारा जाति, रंग, धर्म, लिंग, आदि के भेदभाव के बगैर सबके प्रति समान बर्ताव करना। भारतीय संविधान में कानूनी तौर पर सबको समान अधिकार प्रदान किया गया है।

भ्रातृत्व का निहितार्थ है विविध धर्मावलम्बियों, भाषायी समूहों, सांस्कृतिक एवं आर्थिक समूहों में सहिष्णुता एवं सद्भावपूर्ण सहअस्तित्व के आधार पर व्यक्ति की प्रतिष्ठा को कायम बनाये रखना।

संविधान की प्रस्तावना एवं उसके विविध अनुच्छेदों में वर्णित उद्देश्यों के आधार पर यह स्पष्ट है कि संविधान निर्माताओं की मंशा सिर्फ शासन हेतु दिशा निर्देशन करना ही नहीं था अपितु समाज एवं राजनीति को एक नई दृष्टि प्रदान करना भी था। मोटे तौर पर भारतीय संविधान के निम्नलिखित सामाजिक आदर्श हैं

1. संविधान के लक्ष्यों, विविधता में एकता, सामाजिक न्याय एवं आधारभूत समानता को आगे बढ़ाना।

2. वैयक्तिक, सामाजिक आर्थिक जीवन समेत निजी एवं सार्वजनिक दोनों क्षेत्रों में भारतीय संविधान के आदर्शों एवं सार तत्वों के अनुरूप शासन का क्रियान्वयन करना।

3. धर्मनिरपेक्षता, लोकतंत्र, समाजवाद, गणराज्यवाद एवं दायित्वपूर्ण स्वाधीनता के मूल्यों को बढ़ाना जिसके द्वारा व्यक्ति अपने एवं दूसरों के न्याय, विचार अभिव्यक्ति, आस्था एवं विश्वास की स्वतंत्रता, प्रस्थिति एवं अवसरों की समानता की सुरक्षा कर सके तथा भ्रातृत्व, व्यक्तियों के सम्मान, राष्ट्र एवं समाज की एकता एवं सुदृढ़ता को समुन्नत कर सके।

4. यह प्रयास करना कि भारतीय संविधान के अन्तर्गत मूल अधिकारों के रूप में घोषित मानवाधिकारों का सम्मान सरकारी क्षेत्रों के अतिरिक्त गैर सरकारी संस्थाओं एवं क्षेत्रों (जैसे- व्यक्ति, परिवार, समूह एवं संयुक्त निगमों अथवा निकायों) में भी हो।

5. व्यक्तियों को मौलिक दायित्व के प्रति शिक्षित करना तथा यह देखना कि इन दायित्वों का सम्मान एवं परिपालन किया जा रहा है।

6. यह सुनिश्चित करना कि भारतीय संविधान के भाग-4 में वर्णित राज्य के नीति निर्देशक तत्वों के आदर्श एवं मूल्य सब लोगों के लिए नैतिक रूप से बाध्यकारी हो तथा व्यक्तियों की सभी क्रियायें इनसे निर्देशित हों।

7. निर्धन एवं जरूरतमंद लोगों विशेषकर भारतीय संविधान में निर्दिष्ट विशिष्ट संरक्षण प्राप्त समूहों को कानूनी सहायता प्रदान करना तथा सार्वजनिक हितकारी मुकदमों का निर्वहन करना।

8. लैंगिक भेदभाव रहित समाज का निर्माण करना जिसमें व्यक्ति का सम्मान निहित हो।

9.7 मौलिक अधिकार

मौलिक अधिकार को व्यक्तियों के मानवाधिकार के रूप में परिभाषित किया गया है। इन अधिकारों को भारतीय संविधान के भाग तीन में विश्लेषित किया गया है जो प्रजाति, जन्म, स्थान, धर्म, जाती, रंग, लिंग की भिन्नता के बावजूद सभी व्यक्तियों पर लागू है। इन अधिकारों को विशिष्ट प्रतिबन्धों के साथ कानूनी स्वीकृति दी गई है।

संविधान के निर्माताओं को यह एहसास हुआ कि नागरिक स्वतंत्रता जैसे- अभिव्यक्ति एवं धर्म की आजादी के बिना जनतंत्र की उपयोगिता नहीं रह जायेगी। भारत के समस्त नागरिकों को बगैर किसी भेदभाव के मौलिक अधिकारों के क्रियान्वयन हेतु उच्च्च न्यायालय एवं उच्चतम न्यायालय में अपील की वैधानिक स्वीकृति दी गई। यह भी प्राविधान बनाया गया कि प्रभावित व्यक्ति जैसे निर्धन व्यक्ति के हितों की संरक्षण हेतु कोई अन्य व्यक्ति भी अपील दायर कर सकता है जिसे लोक हित विवाद की संज्ञा दी गई।

9.8 मौलिक अधिकारों का स्वरूप

विश्व के अधिकांश उदारवादी जनतंत्र की भाँति भारतीय जनतांत्रिक प्रणाली में भी समान वैयक्तिक अधिकार जैसे- समानता का अधिकार, विचार एवं अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता, संघ बनाने की आजादी, धर्म की स्वतंत्रता, आदि को संविधान में वैधानिक मान्यता दी गई है। मौलिक अधिकारों के द्वारा अतीत में सामाजिक व्यवहार की असमानताओं जैसे अस्पृश्यता, बेगारी इत्यादि को भी दूर करने का वैधानिक प्रयास किया गया है। भारतीय दण्ड संहिता की अनुशंसाओं के अनुरूप दण्ड का प्राविधान बनाया गया है। इन मौलिक अधिकारों के उल्लंघन होने पर मोटे तौर पर भारतीय संविधान में निम्नलिखित छः मौलिक अधिकार प्रदान किया गया है-

1. समानता का अधिकार

2. स्वतंत्रता का अधिकार

3. शोषण के विरूद्ध संरक्षण का अधिकार

4. धर्म की स्वतंत्रता का अधिकार

5. संस्कृति एवं शिक्षा संबंधी अधिकार

6. संवैधानिक उपचारों का अधिकार

समानता का अधिकार-संविधान के अनुच्छेद 14, 15, 16, 17, तथा 18 के अन्तर्गत व्यक्तियों को वैधानिक दृष्टि से समानता के अधिकार मिले हैं। अनुच्छेद 14 में यह निर्दिष्ट किया गया है कि राज्य भारत के राज्य क्षेत्र में किसी व्यक्ति को विधि के समक्ष समता से वंचित नहीं करेगा। अनुच्छेद 15 धर्म, मूलवंश, जाति, लिंग या जन्मस्थान के आधार पर विभेद का प्रतिषेध करता है। अनुच्छेद 16 के अन्तर्गत लोक नियोजन के विषय में अवसर की समानता का अधिकार दिया गया है। अनुच्छेद 17 के अन्तर्गत अस्पृश्यता का अंत करते हुए अस्पृश्यता से ऊपजी किसी निर्योग्यता को लागू करना विधि के अनुसार दंडनीय अपराध माना गया है। अनुच्छेद 18 में उपाधियों का अंत करते हुए यह प्राविधान बनाया गया कि राज्य सेना या विद्याा सम्बन्धी सम्मान के सिवाय और कोई उपाधि प्रदान नहीं करेगा एवं भारत का कोई नागरिक राष्ट्रपति की सहमति के बिना विदेशी राज्य से कोई उपाधि ग्रहण नहीं करेगा।

स्वतंत्रता अधिकार-अनुच्छेद 19, 20, 21, एवं 22 में स्वतंत्रता अधिकार प्रदान किया गया है। अनुच्छेद 19 सभी नागरिकों को वाक स्वतंत्रता एवं अभिव्यक्ति स्वतंत्रता , शांतिपूर्ण सम्मेलन, संघ बनाने, भारत के राज्य क्षेत्र में संचरित करने, निवास करने एवं बस जाने, कोई वृत्ति, उपजीविका, व्यापार या कारोबार करने की स्वतंत्रता का अधिकार प्रदान किया गया है। अनुच्छेद 20 में अपराधों के लिए दोषसिद्धि के सम्बन्ध में संरक्षण, अनुच्छेद 21 में प्राण एवं दैहिक स्वतंत्रता का संरक्षण तथा अनुच्छेद 22 में कुछ दशाओं में गिरफ्तारी और निरोध से संरक्षण का वैधानिक अधिकार दिया गया है।

शोषण के विरुद्ध अधिकार-अनुच्छेद 23 एवं 24 शोषण के विरुद्ध संरक्षण के अधिकार से सम्बन्धित हैं। अनुच्छेद 23 में मानव के दुर्व्यापार एवं बलातश्रम का प्रतिषेध किया गया है तथा अनुच्छेद 24 में कारखानों आदि में बालकों के नियोजन का प्रतिषेध किया गया है।

धर्म की स्वतंत्रता का अधिकार-अनुच्छेद 25, 26, 27 एवं 28 धर्म की स्वतंत्रता के अधिकार से सम्बद्ध हैं। अनुच्छेद 25 में अंतःकरण की एवं किसी भी धर्म को मानने, आचरण करने एवं प्रचार करने की स्वतंत्रता मिली है। अनुच्छेद 26 में प्रत्येक धार्मिक समुदाय को धार्मिक कार्यों के प्रबन्ध की स्वतंत्रता मिली है। अनुच्छेद 27 के अन्तर्गत किसी विशिष्ट धर्म की अभिवृद्धि के लिए करों की अदायगी की स्वतंत्रता दी गई है। अनुच्छेद 28 शिक्षा संस्थाओं में धार्मिक शिक्षा या धार्मिक उपासना में उपस्थित होने के बारे में व्यक्तियों को स्वतंत्रता का अधिकार प्रदान करता है।

संस्कृति एवं शिक्षा सम्बन्धी अधिकार- अनुच्छेद 29, 30 एवं 31 का सम्बन्ध संस्कृति एवं शिक्षा सम्बन्धी वैयक्तिक अधिकारों से है। अनुच्छेद 29 अल्पसंख्यक वर्गों के हितों को संरक्षित करता है। अनुच्छेद 30 अल्पसंख्यक वर्गों को शिक्षा संस्थाओं की स्थापना एवं प्रशासन करने का अधिकार देता है। अनुच्छेद 31, जो संपत्ति के अनिवार्य अर्जन से सम्बद्ध है, उसे चालीसवें संविधान संशोधन अधिनियम, 1978 की धारा 6 द्वारा निरसित कर दिया गया है। 31 क, ख, ग में संपदाओं आदि के अर्जन के लिए उपबंध करने वाली विधियों को रक्षित किया गया है।

सांविधानिक उपचारों का अधिकार- अनुच्छेद 32, 33, 34 एवं 35 सांविधानिक उपचारों के अधिकार से सम्बद्ध है। अनुच्छेद 32 में उच्चतम न्यायालय को इस भाग द्वारा प्रदत्त अधिकारों को प्रवर्तित कराने के लिए समावेदन का अधिकार दिया गया है। अनुच्छेद 33 में इस भाग द्वारा प्रदत्त अधिकारों के लागू होने में उपांतरण करने की संसद की शक्ति को अधिकृत किया गया है। अनुच्छेद 34 जब किसी क्षेत्र में सेना विधि प्रवृत्त है तब इस भाग द्वारा प्रदत्त अधिकारों पर निबंधन का अधिकार प्रदान करता है। अनुच्छेद 35 में इस भाग के उपबंधों को प्रभावी करने के लिए विधान बनाये गये हैं।

9.9 आलोचानात्मक समीक्षा

समाज वैज्ञानिकों एवं राजनीतिक विचारकों ने मौलिक अधिकारों की अनेक आधारों पर आलोचना की है। राजनीतिक समूहों की दृष्टि में कार्य का अधिकार, बेरोजगारी एवं वृद्धावस्था की स्थिति में आर्थिक सहायता प्राप्त करने का अधिकार दिया जाना चाहिए ताकि निर्धनता एवं आर्थिक असुरक्षा के विरूद्ध वैधानिक संरक्षण प्राप्त हो सके। इसके अतिरिक्त आपातकाल की अवधि में मौलिक अधिकारों पर रोक एवं निलम्बन के प्राविधान बनाये गये हैं। इन प्राविधानों के तहत आन्तरिक सुरक्षा के निर्वाह एवं राष्ट्रीय सुरक्षा अधिनियम के जरिये आन्तरिक हिंसा एवं पड़ोसी सीमाओं पर आतंकवाद रोकने की आड़ में मौलिक अधिकारों के हनन की संभावना बनी हुई है। राज्य की सुरक्षा, नैतिकता, औचित्यपूर्ण प्रतिबन्ध, लोकहित के आदेश, आदि मुहावरे व्यवहार में प्रचलित हैं जिनको संविधान में स्पष्ट रूप में निर्दिष्ट नहीं किया गया है तथा इन अस्पष्टताओं के कारण अनावश्यक विवाद होते रहते हैं।

स्वतंत्रता अधिकारों में छापने की स्वतंत्रता को शामिल नहीं किया गया है जो जनमत निर्माण एवं अभिव्यक्ति की आजादी को अपेक्षाकृत अधिक वैध बनाने हेतु अनिवार्य प्रतीत होता है।

भारत में सन् 2009 में 6 से 14 वर्ष की आयु के बालक/बालिकाओं के लिए निःशुल्क एवं अनिवार्य शिक्षा अधिनियम पारित किया गया है तथा 1 अप्रैल 2010 से इस अनिवार्य प्राथमिक शिक्षा अधिनियम को क्रियान्वित किया गया है। अनिवार्य शिक्षा अधिनियम में यह भी प्राविधान बनाया गया है कि दुर्बल समूहों के बच्चों के लिए निजी विद्यालयों में भी 25 प्रतिशत सीट आरक्षित की जायेंगी। यह एक सार्थक वैधानिक प्रयास परिलक्षित होता है किन्तु इसके क्रियान्वयन में अभी कई बाधायें बनी हुई हैं, जैसे- आदिवासियों, दलितों, अति पिछड़े परिवारों में बालक / बालिकाओं को विद्यालय भेजने की बजाय काम पर भेजना, बालिकाओं का विद्यालय परित्याग करना, इत्यादि।

1. भारतीय संविधान में कितने मौलिक अधिकार प्रदान किये गये हैं?

अ. तीन ब. चार स. छ द. सात

2. अनुच्छेद 19 एवं 20 किस प्रकार के अधिकार से सम्बद्ध हैं?

अ. समानता का अधिकार ब. स्वतंत्रता अधिकार स. शोषण के विरूद्ध अधिकार

द. संस्कृति एवं शिक्षा सम्बन्धी अधिकार

3. संविधान के किस संशोधन के जरिये प्राथमिक शिक्षा के अधिकार को मौलिक अधिकार में शामिल किया गया है?

अ. 86 वाँ संशोधन ब. 87 वाँ संशोधन स. 91 वाँ संशोधन द. 92 वाँ संशोधन

4. 1990 के मानव विकास रिपोर्ट में मानव विकास के परिमापन में निम्नलिखित में से किस सूचक का उपयोग नहीं किया गया था?

अ. जीवन प्रत्याशा ब. शिक्षा स. भौतिक स्रोतों पर नियंत्रण द. लैंगिक अन्तराल

5. मानव स्वतंत्रता सूचक का निर्माण किसने किया?

अ महबूब उल हक ब. चार्ल्स ह्युमना स. जिग्मे सिग्मे वांगचुग द. लोकमान्य तिलक

9.10 सारांश

वैश्वीकरण एवं अर्थव्यवस्था के उदारीकरण के दौर में नये उद्योगों की स्थापना हेतु विशेष आर्थिक कटिबन्ध की घोषणा के आधार पर भूमि को अधिग्रहित करने के सरकारी प्रयासों ने भारत में किसानों के हित को प्रभावित किया है तथा इन अधिग्रहणों के विरोध में कई आन्दोलन भी किये गये हैं। इन विरोधों के परिप्रेक्ष्य में भारत में निजी सम्पत्ति के अधिकार को मौलिक अधिकारों में पुनस्थापित करने की मांग उभरी है।

9.11 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1. स 2. ब 3. अ 4. द 5. ब

9.12 निबंधात्मक प्रश्न

1. मानव विकास क्या है? मानव विकास के परिमापन सूचकों को किस प्रकार समृद्ध किया गया है? विवेचना कीजिए।

2. मानव विकास एवं मानवाधिकार की अवधारणायें एक दूसरे की पूरक हैं। समीक्षा कीजिए।

3. भारतीय संविधान में प्रदत्त मौलिक अधिकारों की विवेचना कीजिए।

4. आपातकाल में मौलिक अधिकारों के निलम्बन सम्बन्धी संवैधानिक प्राविधान से आप कहाँ तक सहमत अथवा असहमत हैं? अपने उत्तर के पक्ष में तर्क दीजिए।

9.13 संदर्भ ग्रन्थ सूची

Sakiko, Fakuda-Parr and Shiv Kumar, A.K. (ed) (2009) Hand book of Human Development; Concept, Measures and Policies, Oxford University Press, New Delhi.

Basu, Durga Das (1993) Introduction to the Constitution of India, New Delhi: Prentice Hall of India.

इकाई 10- ग्रामीण विकास

इकाई की रूपरेखा

10.1 प्रस्तावना

10.2 उद्देश्य

10.3 ग्रामीण विकास की अवधारणा

10.4 ग्रामीण पुनर्निर्माण के उपागम एवं रणनीतियाँ

10.5 ग्रामीण पुनर्निर्माण का गांधीवादी उपागम

10.6 ग्रामीण विकास के विविध कार्यक्रम एवं उनका मूल्यांकन

10.7 ग्रामीण विकास में सहकारी संस्थाओं की भूमिका

10.8 ग्रामीण विकास से संबंधित मुद्देः पर्यावरण का क्षरण, अशिक्षा, निर्धनता, ग्रामीण ऋणग्रस्तता एवं उभरती असमानताएँ

10.9 सारांश

10.10 अभ्यास प्रश्ननों के उत्तर

10.11 निबंधात्मक प्रश्न

10.12 संदर्भ ग्रन्थ सूची

10.1 प्रस्तावना

ग्रामीण विकास एवं बहुआयामी अवधारणा है जिसका विश्लेषण दो दृष्टिकोणों के आधार पर किया गया हैः संकुचित एवं व्यापक दृष्टिकोण। संकुचित दृष्टि से ग्रामीण विकास का अभिप्राय है विविध कार्यक्रमों, जैसे- कृषि, पशुपालन, ग्रामीण हस्तकला एवं उद्योग, ग्रामीण मूल संरचना में बदलाव, आदि के द्वारा ग्रामीण क्षेत्रों का विकास करन।

10.2 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के उपरान्त आप-

1. ग्रामीण विकास का आशय जान सकेंगे।

2. भारत में ग्रामीण विकास के विविध उपागम एवं राणनीतियों से अवगत होंगे।

3. महात्मा गांधी का ग्रामीण पुनर्निर्माण सम्बन्धी दृष्टिकोण से परिचित होंगे।

4. भारत में ग्रामीण विकास के प्रमुख कार्यक्रमों को जान सकेंगे।

5. ग्रामीण विकास में सहकारी संस्थाओं की भूमिका कितनी प्रासंगिक है।

10.3 ग्रामीण विकास की अवधारणा

वृहद दृष्टि से ग्रामीण विकास का अर्थ है ग्रामीण जनों के जीवन में गुणात्मक उन्नति हेतु सामाजिक, राजनितिक, सांस्कृतिक, प्रोद्योगिक एवं संरचनात्मक परिवर्तन करना।

विश्व बैंक (1975) के अनुसार "ग्रामीण विकास एक विशिष्ट समूह- ग्रामीण निर्धनों के आर्थिक एवं सामाजिक जीवन को उन्नत करने की एक रणनीति है।" बसन्त देसाई (1988) ने भी इसी रुप में ग्रामीण विकास को परिभाषित करते हुए कहा कि, "ग्रामीण विकास एक अभिगम है जिसके द्वारा ग्रामीण जनसंख्या के जीवन की गुणवत्ता में उन्नयन हेतु क्षेत्रीय स्त्रोतों के बेहतर उपयोग एवं संरचनात्मक सुविधाओं के निर्माण के आधार पर उनका सामाजिक आर्थिक विकास किया जाता है एवं उनके नियोजन एवं आय के अवसरों को बढ़ाने के प्रयास किये जाते हैं।"

क्रॉप (1992) ने ग्रामीण विकास को एक प्रक्रिया बताया जिसका उद्देश्य सामूहिक प्रयासों के माध्यम से नगरीय क्षेत्र के बाहर रहने वाले व्यक्तियों के जनजीवन को सुधारना एवं स्वावलम्बी बनाना है। **जॉन हैरिस** (1986) ने यह बताया कि ग्रामीण विकास एक नीति एवं प्रकिया है जिसका आविर्भाव विश्वबैंक एवं संयुक्त राष्ट्र संस्थाओं की नियोजित विकास की नयी रणनीति के विशेष परिप्रेक्ष्य में हुआ है।

ग्रामीण विकास की उपरोक्त परिभाषाओं के विश्लेषण में यह तथ्य उल्लेखनीय है कि ग्रामीण विकास की रणनीति में राज्य की भूमिका को महत्वपूर्ण माना गया है। राज्य के हस्तक्षेप के वगैर ग्रामवासियों के निजी अथवा सामूहिक प्रयासों, स्वयंसेवी संगठनों के प्रयासों के आधार पर भी ग्रामीण जनजीवन को उन्नत करने के प्रयास होते रहे हैं, इन प्रयासों को ग्रामीण विकास की परिधि में शामिल किया जा सकता है। किन्तु नियोजित ग्रामीण विकास प्रारुप में राज्य की भूमिका महत्वपूर्ण मानी गयी है। इन परिभाषाओं के विश्लेषण से दूसरा महत्वपूर्ण तथ्य यह भी उभरता है कि ग्रामीण विकास सिर्फ कृषि व्यस्था एवं कृषि उत्पादन के साधन एवं सम्बन्धों में परिवर्तन तक ही सीमित नहीं है बल्कि ग्रामीण परिप्रक्ष्य में सामाजिक, आर्थिक, सांस्कृतिक, प्रौद्योगिक, संरचनात्मक सभी पहलुओं में विकास की प्रक्रियायें ग्रामीण विकास की परिधि में शामिल हैं।

10.4 ग्रामीण पुनर्निर्माण के उपागम एवं रणनीतियाँ

भारत में ग्रामीण विकास की रणनीति अलग-अलग अवस्थाओं में बदलती रही है। इसका कारण यह है कि ग्रामीण विकास के प्रति दृष्टिकोण बदलता रहा है। वस्तुतः ग्रामीण भारत को विकसित करने हेतु राज्य द्वारा अपनाये गये प्रमुख अभिगम (दृष्टिकोण) निम्नलिखित हैं:

बहुद्देशीय अभिगम : बहुद्देशीय अभिगम की प्रमुख मान्यता यह थी कि गावों में लोगों के सामाजिक आर्थिक विकास हेतु यह आवश्यक है कि उनकी प्रवृत्तियों एवं व्यवहारों को बदलने का संगठित प्रयास किया जाय। इस

दृष्टिकोण के आधार पर 1952 में सामुदायिक विकास कार्यक्रम की रणनीति अपनाई गयी जिसमें राज्य के सहयोग से लोगों के सामूहिक एवं बहुद्देशीय प्रयास को शामिल करते हुए उनके भौतिक एवं मानव संसाधनों को विकसित करने का लक्ष्य निर्धारित किया गया। इस प्रकार बहुद्देशीय उपागम के अन्तर्गत एक शैक्षिक एवं संगठनात्मक प्रक्रिया के रुप में सामाजिक आर्थिक विकास के अवरोधों को दूर करने पर बल दिया गया।

जनतांत्रिक विकेन्द्रीकरण अभिगम: इस दृष्टिकोण की प्रमुख मान्यता यह थी कि ग्रामीण विकास के लिए प्रशासन का विकेन्द्रीकरण एवं लोगों की जनतांत्रिक सहभागिता का बढ़ाया जाना आवश्यक है। इस अभिगम के अनुरुप भारत में पंचायती राज संस्थाओं का विकास किया गया एवं क्षेत्रीय स्तर पर स्थानीय विकास कार्यक्रमों के निर्धारण एवं क्रियान्वयन के द्वारा ग्रामीण संरचना में परिर्वन की रणनीति अपनाई गयी।

अधोमुखी रिसाव (ट्रिकल डाउन) अभिगम: स्वतंत्रता के पश्चात् 1950 के आरम्भिक दशक में राज्य की रणनीति इन मान्यताओं पर आधारित थी कि जिस प्रकार बोतल के ऊपर रखी कुप्पी में तेल डालने पर स्वाभाविक रुप से उसकी पेंदी में पहुँच जाता है एवं तेल के रिसने की प्रकिया को कुछ देर जारी रखा जाय तो बोतल भर जाती है उसी प्रकार आर्थिक लाभ भी ऊपर से रिसते हुए ग्रामीण निर्धनों तक पहुँच जायेगा। 1950 के आरम्भ में पाश्चात्य आर्थिक विशेषज्ञों ने यह मत दिया कि ग्रामीण विकास समेत सभी प्रकार का विकास आर्थिक प्रगति पर ही आधारित है इसलिए कुल राष्ट्रीय आय में वृद्धि करके ग्रामीण निर्धनता को दूर किया जा सकता है। एक दशक के अनुभवों के आधार पर उन्हें यह आभास हुआ कि उनकी रणनीति ग्रामीण निर्धनता को दूर करने में असफल रही है। तत्पश्चात् अर्थशास्त्रियों एवं समाजवैज्ञानिकों का दृष्टिकोण बदला। नये दृष्टिकोण की मान्यता यह थी कि आर्थिक प्रगति के अलावा शिक्षा को माध्यम बनाना होगा एवं ग्रामीण जनता को शिक्षित करके उनमें जागरुकता लानी होगी। इस दृष्टिकोण पर आधारित प्रयास का परिणाम यह निकला कि शिक्षित ग्रामीणों ने हल चलाने एवं कृषि कार्य रकने से इन्कार कर दिया, उनकी अभिरुचि केवल श्वेत वसन कार्य (व्हाइट कलर वर्क) करने की बन गयी। तब 1960 में यह दृष्टिकोण पनपा कि लोगों की अभिवृत्तियों एवं उत्प्रेरकों में परिवर्तन किये वगैर ग्रामीण विकास सम्भव नहीं। 1960 के दशक के परिणामके आधार पर यह अनुभव हुआ कि कुछ प्रकार की आर्थिक प्रगति ने सामाजिक न्याय में वृद्धि की है किन्तु अन्य अनेक प्रकार की प्रगति ने सामाजिक असमानता को बढ़ाया है। 1970 के दशक में योजनाकारों एवं समाजवैज्ञानिकों का दृष्टिकोण बदला। इस नये दृष्टिकोण की मान्यता यह थी कि सामाजिक आर्थिक विकास के लाभ स्वतः रिसते हुए ग्रामीण निर्धनों तक पहुँचने की धारणा भ्रामक है। अतः ग्रामीण विकास हेतु भूमिहीनों, लघु किसानों एवं कृषि पर विशेष रुप से ध्यान केन्द्रित करना होगा। इस अभिगम के अन्तर्गत सामाजिक प्राथमिकताओं के निर्धारण एवं आर्थिक प्रगति एवं - सामाजिक न्याय में संतुलन कायम रखने पर बल दिया गया।

जन सहभागिता अभिगम: जन सहभागिता उपागम की प्रमुख मान्यता यह थी कि ग्रामीण विकास की पूरी प्रक्रिया को जन सहभागी बनाना होगा। ग्रामीण विकास की पूरी प्रक्रिया को जन सहभागी बनाना होगा। ग्रामीण विकास के लिए किये जाने वाले प्रशासन को न सिर्फ लोगों के लिए बल्कि लोगों के साथ मिलकर किये जाने वाले प्रशासन के

रुप में परिवर्तित करना होगा। ग्रामीण जनों से आशय यह है कि वे लोग जो विकास की प्रक्रिया से अछूते रह गये हैं तथा जो विकास की प्रक्रिया के शिकार हुए हैं अथवा ठगे गये हैं। सहीागिता का आशय यह है कि ग्रामीण विकास हेतु स्त्रोतों के आवंटन एवं वितरण में इन ग्रामीण समूहों की भागीदारी बढ़ाना। जनसहभागिता अभिगम पर आधारित रणनीति को कियान्वित करने की दिशा में सामुदायिक विकास कार्यक्रमों के विस्तार, विभिन्न प्रकार की सहकारी समितियों के विकास, स्वयंसेवी संस्थाओं, संयुक्त समितियों, ग्राम पंचायतों, आदि को प्रोत्साहित करने के तमाम प्रयास किये गये।

लक्ष्य समूह अभिगम: ग्रामीण विकास कार्यक्रमों के कियान्वयन से प्राप्त परिणामों के आधार पर यह अनुभव हो गया था कि ये कार्यकम ग्रामीण समुदाय में असमानता दूर करने में असफल रहे हैं। ग्रामीण विसंगतियों में सुधार हेतु यह दृष्टिकोण विकसित हुआ कि विविध समूहों- भूमिहीन मजदूरों, ग्रामीण महिलाओं, ग्रामीण शिशुओं, छोटे किसानों, जनजातियों, आदि को लक्ष्य बनाकर तदनुरुप विकास कार्यक्रम चलाने होंगे। इस दृष्टिकोण के आधार पर दो प्रकार के प्रयास किये गयेः (अ) भूमि सुधार के माध्यम से भूमिहीनों को भू-स्वामित्व दिलाने के प्रयास किये गये, एवं (ब) मुर्गीपालन, पशुपालन तथा अन्य सहयोगी कार्यक्रमों के जरिये रोजगार के अवसर विकसित किये गये। ग्रामीण महिलाओं एवं शिशुओं, जनजातियों तथा अन्य लक्ष्य समूहों के लिए पृथक-पृथक कार्यकम चलाये गये।

क्षेत्रीय विकास अभिगम: ग्रामीण विकास के क्षेत्रीय अभिगम की मान्यता यह थी कि भारत के विशाल भौगोलिक क्षेत्रों में अनेक गुणात्मक भिन्नतायें हैं। पर्वतीय क्षेत्र, मैदानी क्षेत्र, रेगिस्तानी क्षेत्र, जनजाति बहुल क्षेत्र आदि की समस्यायें समरुपीय नहीं हैं। अतः ग्रामीण विकास की रणनीति में क्षेत्र विशेष की समस्याओं को आधार बनाया जाना चाहिए। इस उपागम के अनुरुप अलग-अलग ग्रामीण क्षेत्रों के लिए पृथक-पृथक विकास कार्यक्रम निर्धारित किये गये तथा उनका कियान्वयन किया गया।

समन्वित ग्रामीण विकास अभिगम: 1970 के दशक के अन्त तक ग्रामीण विकास की रणनीतियों एवं कार्यक्रमों की असफलता से सबक लेते हुए एक नया दृष्टिकोण विकसित हुआ जो समन्वित ग्रामीण विकास अभिगम के नाम से जाना जाता है। इस अभिगम की मान्यता यह है कि ग्रामीण विकास के परम्परागत दृष्टिकोण में मूलभूत दोष यह था कि वे ग्रामीण निर्धनों के विपरीत ग्रामीण धनिकों के पक्षधर थे तथा उनके कार्यक्रमों एवं कियान्वयन पद्धतियों में कई अन्य कमियों थीं जिसके परिणामस्वरुप अपेक्षित परिणाम नहीं मिल सका। समन्वित ग्रामीण विकास अभिगम के अन्तर्गत जहाँ एक ओर ग्रामीण जनजीवन के विविध पहलुओं- आर्थिक, सामाजिक, शैक्षणिक, स्वास्थ्य, प्रौद्योगिक को एक साथ समन्वित करके ग्रामीण विकास के कार्यक्रमों के निर्धारण पर बल दिया गया वहीं दूसरी ओर विकस के लाभों के वितरण को महत्वपूर्ण माना गया।

इन विविध अभिगमों के अवलोकन से यह स्पष्ट है कि भारत में ग्रामीण विकास के प्रति चिन्तन की दिशायें समय-समय पर बदलती रही हैं। इन परिवर्तित दृष्टिकोणों पर आधारित रणनीतियों एवं ग्रामीण विकास कार्यक्रमों में भी तद्रुप परिवर्तन होता रहा है।

स्वयं सेवा समूह एवं लघु वित्त अभिगम: 1990 के दशक के उत्तरार्द्ध से लेकर वर्तमान में ग्रामीण विकास की मुख्य रणनीति है स्वयं सहायता समूहों का निर्माण करना तथा वित्तीय संस्थाओं जैसे ग्रामीण बैंक, नाबार्ड, आदि द्वारा उन्हें लघु अनुदान प्रदान करते हुए स्वावलम्बी समूह के रूप में उनका विकास करना। इस दृष्टि से ग्रामीण निर्धन महिलाओं एवं पुरुषों के छोटे-छोटे समूह, जिसमें 10-15 सदस्य शामिल हैं, विभिन्न प्रकार के उद्यम में संलग्न हैं तथा एक स्वयं सहायता समूह के रूप में विकसित हो रहे हैं। इस अभिगम में वृहद् परियोजना एवं लागत की बजाय कम पूँजी एवं लघु परियोजनाओं को प्राथमिकता दी गई है।

10.5 ग्रामीण पुनर्निर्माण का गांधीवादी उपागम

ग्रामीण पुनर्निर्माण का आशय है गांवों को विकसित एवं रूपान्तरित करते हुए उसका पुनः निर्माण करना। ग्रामीण विकास के उपागम विविध हैं। मोटे तौर पर इन उपागमों को दो श्रेणियों में बाँटा जा सकता हैः संघर्षवादी एवं प्रकार्यवादी उपागम। संघर्षवादी प्रारूप में ग्रामीण पुनर्निर्माण की प्रक्रिया द्वन्द्वात्मक है। ग्रामीण अर्थव्यवस्था में परिवर्तन के जरिये सम्पूर्ण ग्रामीण संरचना का पुनर्निर्माण संभव है जिसमें सामाजिक संघर्ष की भूमिका महत्वपूर्ण होती है। इसके विपरीत प्रकार्यवादी प्रारूप में सामाजिक संघर्ष की बजाय अनुकूलन एवं सामंजस्य के द्वारा ग्रामीण संरचना का रूपान्तरण एवं पुनर्निर्माण किया जाता है।

महात्मा गाँधी की ग्रामीण पुनर्निर्माण योजना को दो प्रमुख आधारों पर समझा जा सकता है: प्रथम यह कि गांधी किस प्रकार का ग्राम बनाना चाहते थे? दूसरा यह कि उनकी ग्रामीण पुनर्निर्माण योजना वर्तमान समाज में कितनी प्रासंगिक है? वस्तुतः गांधी की ग्रामीण पुनर्निर्माण की परिकल्पना उनके विचारों एवं मूल्यों पर आधारित है। गांधी के विचार, दर्शन एवं सिद्धान्त के प्रमुख अवयव हैंः सत्य के प्रति आस्था, अहिंसा की रणनीति, विध्वंस एवं निर्माण की समकालिकता, साधन की पवित्रता के माध्य से लक्ष्य की पूर्ति, गैर प्रतिस्पर्द्धात्मक एवं अहिंसक समाज का गठन, घरातल बद्धमूल विकास, वृहद् उद्योगों की वजाय कुटीर उद्योगों को प्रोत्साहन, श्रम आधारित प्रौद्योगिकी की महत्ता, ग्रामीण गणराज्य एवं ग्राम स्वराज के आधार पर ग्राम स्वावलम्बन की स्थापना, इत्यादि।

गांधी की दृष्टि में विकेन्द्रित ग्रामीण विकास की रणनीति को ग्रामीण पुनर्निर्माण में आधारभूत बनाना अनिवार्य है। उन्होंने पंचायती राज के गठन पर बल दिया। गांधी ग्रामीण विकास को सम्पोषित स्वरूप प्रदान करना चाहते थे, इसलिए उन्होंने प्रकृति के दोहन की बजाय प्रकृति से तादात्म्य बनाने का सुझाव दिया। उनकी दृष्टि में नैतिक शिक्षा एवं प्रकृति से प्रेम करने की शिक्षा दी जानी चाहिए। सादा जीवन एवं उच्च्च विचार के अपने आदर्शों के अनुरूप उन्होंने लालच से बचने एवं अपनी आवश्यकताओं को सीमित करने का सुझाव दिया। उन्होंने यह कहा कि प्रकृति के पास इतना पर्याप्त स्रोत है कि वह संसार के समस्त प्राणियों की आवश्यकताओं की पूर्ति कर सकती है किन्तु लालच को पूरा कर पाने में सम्पूर्ण पृथ्वी भी अपर्याप्त है।

गांधी की दृष्टि में ग्रामीण रूपान्तरण एवं ग्रामीण पुनर्निर्माण की सम्पूर्ण प्रक्रिया में गांव की स्वाभाविक विशिष्टता सुरक्षित बनाये रखना अनिवार्य है। ग्रामीण औद्योगिकरण के परिप्रेक्ष्य में उन्होंने खादी एवं ग्रामोद्योग को विकसित करने पर बल दिया। अपनी पुस्तक हिन्द स्वराज में गांधी ने ब्रिटिश साम्राज्य द्वारा पोषित आधुनिक सभ्यता को आर्थिक क्लेश का प्रमुख कारक माना तथा इससे मुक्ति हेतु उन्होंने भारत की प्राचीन संस्कृति के मूल्यों-सत्य, अहिंसा, नैतिक प्रगति को पुनर्जीवित करते हुए मानव विकास की परिकल्पना की। खादी आन्दोलन को औपनिवेशिक संघर्ष का माध्यम बनाते हुए उन्होंने महिलाओं एवं समस्त ग्रामीण जनसमूहों को न सिर्फ आर्थिक एवं राजनीतिक संक्रिय भागीदार बनाया बल्कि उन्हें सशक्त एवं स्वावलम्बी बनाने का प्रयास भी किया।

गांधी की परिकल्पना में ग्रामीण उद्योग की परिधि में वे समस्त गतिविधियां, कार्य एवं व्यवसाय सम्मिलित हैं जिसमें ग्राम स्तर पर ग्रामीणों के लिए वस्तुओं का उत्पादन किया जाता है, स्थानीय क्षेत्रों में उपलब्ध कच्चे माल का उपयोग करते हुए सरल उत्पादन प्रक्रिया अपनाई जाती है, केवल उन्हीं उपकरणों का प्रयोग किया जाता है जो ग्रामीणों की सीमित आर्थिक क्षमता में सम्भव हैं, जिसकी प्रौद्योगिकी निर्जीव शक्ति-विद्युत, मोटर, इत्यादि की बजाय जीवित शक्तियों-मनुष्य, पशु, पक्षी द्वारा संचालित होती है तथा जिसमें मानव श्रम का विस्थापन नहीं किया जाता है।

गांधी ने आधुनिक मशीन आधारित उत्पादन प्रणाली की बजाय मानव श्रम आधारित उत्पादन प्रणाली पर बल दिया क्योंकि उनकी दृष्टि में भारत जैसी विशाल आबादी वाले देश में अधिकांश लोगों को रोजगार प्रदान करने का यह सर्वोत्तम विकल्प है। गांधी के ग्रामोद्योग की परिकल्पना ने जहाँ एक ओर हिंसारहित, शोषण विहीन, समानता के अवसर युक्त, प्रकृति को संरक्षित एवं संपोषित करने वाले ग्रामीण उद्योगों के विकास का पथ प्रदर्शित किया वहीं दूसरी ओर उत्पादन की प्रक्रिया में मशीनों के प्रयोग, बाजार एवं साख से जुड़े प्रश्न समेत अनेक वाद-विवाद भी उत्पादन किया। स्वतंत्र भारत में बाजार के अनुभवों के आधार पर इस तरह के प्रश्न उभरे कि खादी एवं ग्रामोद्योग उत्पादों का बाजार अत्यन्त सीमित है, इनके उत्पादकों की आर्थिक दशा दयनीय है क्योंकि मशीन आधारित उत्पादकों से प्रतिस्पर्धा में वे पिछड़े हुए हैं, इत्यादि। इन प्रश्नों के उत्तर समय-समय पर गांधीवादी परिप्रेक्ष्य में संशोधित होते रहे हैं। आरम्भिक अवस्था में खादी हेतु बाजार का प्रश्न गांधी के लिए महत्वपूर्ण नहीं था। उन्होंने भारतीयों को खादी वस्त्र धारण करने का संदेश दिया जिसमें खादी के लिए बाजार से जुड़े प्रश्न का उत्तर सन्निहित था। 1946 में गांधी ने बाजार की मांग के अनुरूप वाणिज्यक खादा एवं हैण्डलूम के अलावे पावरलूम को भी स्वीकृति दी।

स्वतंत्र भारत में 1948 की प्रथम औद्योगिक नीति से लेकर 1991 की नई लघु उद्यम नीति तक ग्रामीण रोजगार सृजन एवं ग्रामीण अर्थव्यवस्था को समृद्ध करने हेतु खादी एवं ग्रामोद्योग को प्रोत्साहित किया गया। किन्तु व्यावहारिक स्तर पर गांधीवादी उपागम पर आधारित ग्रामीण औद्योगिकरण की प्रक्रिया भारत में ग्रामीण निर्धनता एवं बेरोजगारी उन्मूलन में पूर्णतः सफल नहीं हो सकी तथा विविध समस्यायें अभी भी बनी हुई हैं, जैसे-

- खादी उत्पादकों की आय इतनी कम है कि इसके जरिये वे निर्धनता रेखा से उपर उठने में असमर्थ हैं। हाल ही में महिला विकास अध्ययन केन्द्र, गुजरात द्वारा किये गये सर्वेक्षण से प्राप्त तथ्य इस निष्कर्ष की पुष्टि करते हैं।
- खादी उत्पादकों के लिए बाजार एक प्रमुख समस्या बनी हुई है।
- कोआपरेटिव संस्थाओं के जरिये खादी एवं अन्य कुटीर उत्पादों के बाजारीकरण एवं उत्पादक सम्बन्धी संस्थागत प्रयास प्रायः असफल ही रहे हैं।

गांधी के ग्रामीण पुनर्निर्माण की रणनीति का आविर्भाव एक विशिष्ट ऐतिहासिक एवं सामाजिक आर्थिक परिप्रेक्ष्य में हुआ। यद्यपि ग्रामीण औद्योगिकरण की गांधीवादी परिकल्पना व्यवहार में बहुत सफल नहीं रही किन्तु इसका यह आशय नहीं कि गांधी का दृष्टिकोण अप्रासंगिक है। आधुनिकता के पक्षधर पंडित जवाहर लाल नेहरू ने यह स्वीकार किया कि तीव्र प्रगति हेतु आधुनिक मशीनों का उपयोग आवश्यक है किन्तु भारत की बहुसंख्यक आबादी के परिप्रेक्ष्य में गांधी का मानव श्रम पर आधारित प्रौद्योगिकी को प्रोत्साहित करने सम्बन्धी दृष्टिकोण अत्यन्त प्रासंगिक है।

10.6 ग्रामीण विकास के विविध कार्यक्रम एवं उनका मूल्यांकन

राज्य द्वारा ग्रामीण विकास के क्षेत्र में लागू किये गये कार्यक्रमों को मोटे तौर पर चार भागों में बाँटा जा सकता है: (अ) आय बढ़ाने वाले कार्यक्रम (ब) रोजगार उन्मुख कार्यक्रम (स) शिक्षा एवं कल्याण कार्यक्रम (द) क्षेत्रीय कार्यक्रम।

भारत में स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात् विविध पंचवर्षीय योजनाओं के अन्तर्गत अनेकानेक ग्रामीण विकास कार्यक्रम चलाये गये, जिनमें से कुछ मुख्य कार्यक्रमों को तालिका संख्या 1 के आधार पर अवलोकित किया जा सकता है:

तालिका संख्या-1

ग्रामीण विकास कार्यक्रम एवं उनका श्रेणीगत विभाजन

कार्यक्रम	लागू वर्ष
अष्टम पंचवर्षीय योजना	
शिशु संरक्षण एवं सुरक्षित मातृत्व कार्यक्रम	1992
प्रधानमंत्री रोजगार योजना	1993
नियोजन आश्वासन योजना	1993
राष्ट्रीय मानव संसाधन विकास कार्यक्रम	1994

परिवार साख योजना	1994
समन्वित बंजर भूमि विकास परियोजना	1995
राष्ट्रीय सामाजिक सहायता कार्यक्रम	1995
राष्ट्रीय वृद्ध पेंशन कार्यक्रम	1995
राष्ट्रीय परिवार लाभ कार्यक्रम	1995
राष्ट्रीय मातृत्व लाभ कार्यक्रम	1995
पल्स पोलियो टीकाकरण कार्यकम	1995
विद्यालय स्वास्थ्य परीक्षण विशेष कार्यक्रम	1996
परिवार कल्याण कार्यकम	1996
नवम पंचवर्षीय योजना	
गंगा कल्याण योजना	1997
बालिका समृद्धि योजना	1997
स्वर्ण जयन्ती ग्राम स्वरोजगार योजना	1999
जवाहर ग्राम समृद्धि योजना	1999
ग्रामीण आवास हेतु ऋण एवं सहायता योजना	1999
ग्रामीण आवास विकास हेतु उन्मेषीय स्त्रोत योजना	1999
समग्र आवास योजना	1999
प्रधानमंत्री ग्रामोदय योजना	2000
दसवीं पंचवर्षीय योजना	
सार्वजनिक स्वास्थ्य बीमा योजना	2003
कस्तूरबा गांधी बालिका विद्यालय योजना	2004
राष्ट्रीय स्वास्थ्य मिशन कार्यक्रम	2005
महात्मा गांधी राष्ट्रीय रोजगार गारंटी कार्यक्रम	2006

नवीन योजनाएं	
राष्ट्रीय ग्रामीण पेय जल कार्यक्रम	2008
प्रधान मंत्री सुरक्षा बीमा योजना	2015
प्रधान मंत्री जीवन ज्योति बीमायोजना	2015
अटल पेंशन योजना	2015
प्रधान मंत्री आवास योजना	2016
मिशन अमृत सरोवर	2022

ग्रामीण विकास कार्यकमों का मूल्याँकन :भारत में ग्रामीण विकास के विविध प्रयासों की सफलता एवं असफलता की समीक्षा करने पर यह स्पष्ट होता है कि ग्रामीण समाज एवं विशेषकर ग्रामीण निर्धनों पर ग्रामीण विकास कार्यक्रमों की बहुत सीमित सफलता प्राप्त हुई है। ग्रामीण विकास की नीतियों, कार्यक्रमों के निर्धारण एवं कियान्वयन में कमियों के कारण ग्रामीण रुपान्तरण की प्रक्रिया में महत्वपूर्ण परिणाम नहीं दृष्टिगोचर होता। कुछ महत्वपूर्ण कार्यक्रमों के लक्ष्यों एवं उपलब्धियों के आधार पर उनका मूल्यांकन किया जा सकता है।

10.7 ग्रामीण विकास में सहकारी संस्थाओं की भूमिका

सहकारी समिति व्यक्तियों का एक स्वायत्त संगठन है जिसके सदस्य स्वेच्छया संयुक्त होकर अपनी सामान्य आर्थिक, सामाजिक एवं सांस्कृतिक आवश्यकताओं एवं आकांक्षाओं की पूर्ति साझा स्वामित्व एवं जनतांत्रिक रूप से नियंत्रित उद्यमों के आधार पर करते हैं।

भारत में औपचारिक सहकारी समितियों का प्रादुर्भाव 1904 में प्रमुखतः साख समितियों के रूप में हुआ तथा 1912 से गैर साख सहकारी समितियाँ गठित होने लगीं। 1928 में रायल कमीशन ऑन एग्रीकल्चर ने सहकारिता के महत्व को स्पष्ट करते हुए कहा कि यदि सहयोग असफल होगा तो इसका आशय यह है कि ग्रामीण भारत में सर्वोत्तम आकांक्षाएं असफल होंगी। कृषक समाज के सामाजिक-आर्थिक परिवर्तन में सहकारी संस्थाओं को एक महत्वपूर्ण अभिकरण माना गया।

स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात् सहकारिता को भारत की नियोजित आर्थिक विकास प्रक्रिया की रणनीति में शामिल किया गया तथा विभिन्न पंचवर्षीय योजनाओं में सहकारी क्षेत्रों का विस्तार होता गया। प्रथम पंचवर्षीय योजना में कृषि, बाजार, कुटीर उद्योग, प्रसंस्करण उद्योग तथा आन्तरिक व्यापार, इत्यादि क्षेत्रों में सहकारी संगठन विविध आर्थिक गतिविधियों के माध्यम बने। प्रथम पंचवर्षीय योजना में सहकारी योजना समिति के इस सुझाव को स्वीकार किया गया

कि भारत के 50 प्रतिशत गांवों में 30 प्रतिशत ग्रामीण आबादी को आगामी दस वर्षों में सहकारी क्षेत्रों से सम्बद्ध किया जाय। द्वितीय पंचवर्षीय योजना में कोआपरेटिव क्रेडिट सोसायटीज की संख्या 5 मिलियन से बढ़कर 15 मिलियन तक हो गई। तृतीय पंचवर्षीय योजना में सामाजिक स्थायित्व एवं आर्थिक संवृद्धि हेतु सहकारिता को महत्वपूर्ण कारक के रूप में स्वीकारा गया। चतुर्थ पंचवर्षीय योजना में कृषि सहकारी समितियों एवं उपभोक्ता सहकारी समितियों ने सहकारिता आन्दोलन को प्रमुख रूप से आगे बढ़ाया। पंचम पंचवर्षीय योजना में क्षेत्रीय असंतुलन को दूर करने, सीमांत कृषकों एवं दुर्बल समूहों आदि लक्ष्यों पर केन्द्रीकरण करके सहकारी संस्थाओं को सुदृढ़ बनाने का प्रयास किया गया। छठवीं पंचवर्षीय योजना में सहकारी संस्थाओं की सफलताओं एवं असफलताओं के मिश्रित परिणाम परिलक्षित हुए। सातवीं पंचवर्षीय योजना में सहकारी इकाईयों के गठन, पिछड़े राज्यों में विशेष कार्यक्रम बनाने तथा लोक वितरण प्रणाली का विस्तार करने की रणनीति बनाई गई। आठवीं पंचवर्षीय योजना में यह अनुभव किया गया कि सरकार की आर्थिक नीतियों में कृषि सहकारी समितियों की भूमिका महत्वपूर्ण बनी रहेंगी। नवीं एवं दसवीं पंचवर्षीय योजनाओं में कृषि उत्पादों के बाजारीकरण, बाजार की संरचना के निर्माण, कृषि प्रसंस्करण इकाईयों की स्थापना से लेकर गैर कृषि क्षेत्रों में सहकारी संस्थाओं की भूमिका का विस्तार हुआ। ग्यारहवीं पंचवर्षीय योजना में भी सहकारी समितियों ग्रामीण क्षेत्रों की विविध गतिविधियों में संलग्न हैं।

वैश्वीकरण के नये दौर की चुनौतियों से निबटने हेतु भारत सरकार ने अप्रैल 2002 में सहकारिता की राष्ट्रीय नीति बनाई जिसमें देश भर में सहकारी समितियों के चतुर्दिक विकास हेतु सहायता प्रदान करने को प्रमुखता दी गई है। इस नीति के अनुसार जनसहभागिता एवं सामुदायिक प्रयास की आवश्यकता वाले सहकारी संस्थाओं को स्वायत्त, जनतांत्रिक एवं उत्तरदायी बनाने हेतु आवश्यक सहकारी सहायता की जायेगी। सरकार का हस्तक्षेप सहकारी समितियों में समय से चुनाव कराने, लेखा जोखा करने तथा इसके सदस्यों के हितों की सुरक्षा करने तक ही सीमित रहेगा। सहकारी समितियों के प्रबन्धन एवं कार्यों में कोई सरकारी दखलन्दाजी नहीं होगी। भारत सरकार ने सन् 2002 में नया बहुराज्यीय सहकारी समिति अधिनियम पारित किया है जिसका लक्ष्य सहकारी संस्थाओं को पूर्ण प्रकार्यात्मक स्वायत्तता प्रदान करना तथा इनका जनतांत्रिक प्रबन्धन करना है। भारत की सहकारी नीति अन्तर्राष्ट्रीय सहकारिता के मान्य नियमों एवं आदर्शों-पंजीकरण को सरल बनाने, संशोधन करने, आदि को प्रतिबिम्बित करती है। वर्तमान परिप्रेक्ष्य में सहकारी समितियाँ अपने स्रोतों एवं संसाधनों को बढ़ाने हेतु स्वतंत्र हैं तथा उनका दायित्व भी अपेक्षाकृत बढ़ गया है।

ग्रामीण विकास में सहकारी संस्थाओं की भूमिका महत्वपूर्ण है। सहकारी संस्थाएं कृषि एवं गैर कृषि समेत विविध क्षेत्रों में उल्लेखनीय उपलब्धियाँ हासिल की हैं। उदाहरणार्थ 1940 के दशक में दुग्ध के वितरक व्यापारियों एवं ठेकेदारों द्वारा दुग्ध उत्पादकों का शोषण किया जाता था। इस शोषण के विरोध में गुजरात के कैरा जिला में सहकारी आन्दोलन शुरू हुआ, जिसके सुखद अनुभवों से प्रभावित होकर देश के विभिन्न हिस्सों में अबतक 75000 डेयरी कोपरेटिव सोसायटी की स्थापना हो चुकी है, जिसमें लगभग 10 मिलियन सदस्य हैं। विविध अध्ययनों से प्राप्त तथ्य

यह प्रदर्शित करते हैं कि डेयरी कोआपरेटिव ने रोजगार के श्रृजन, बाजारीकरण एवं वितरण सभी दृष्टि से ग्रामीण क्षेत्र में संपोषित विकास किया है। सहकारी संस्था के अनुशासन, परिश्रम, सफाई, उन्नत प्रौद्योगिकी, महिलाओं की सक्रिय भागीदारी, जनतांत्रिक नियंत्रण, इत्यादि विशेषताओं के आधार पर अमूल डेयरी सफलता का पर्याय बन गया। इसी प्रकार कृषि एवं अन्य क्षेत्रों में भी कोआपरेटिव सोसायटी का उल्लेखनीय योगदान रहा है। किन्तु दूसरी ओर यह भी एक तथ्य है कि उपभोक्ता क्षेत्रों से जुड़ी अनेक सहकारी समितियाँ सीमित व्यक्तियों को ही लाभान्वित करती रही हैं, आम जनों को इनका लाभ अपेक्षित रूप में नहीं मिल सका है।

वैश्वीकरण के नये दौर में सहकारी संस्थाओं के समक्ष नई चुनौतियाँ उत्पन्न हुई हैं। उदाहरणार्थ डेयरी उद्योग में बहुराष्ट्रीय कम्पनियों एवं निजी पूँजीपतियों द्वारा अत्यधिक पूँजीनिवेश के परिणामस्वरूप बाजार की नियंत्रण प्रणाली पर डेयरी सहकारी समितियों का प्रभूत्व नहीं रह गया बल्कि गुणवत्ता, सफाई, प्रसंस्करण के मानदंड, इत्यादि में प्रतिस्पर्द्धा बढ़ी है तथा बाजार व्यवस्था पर निजी पूँजी का वर्चस्व बढ़ा है। इस नये परिप्रेक्ष्य में सहकारी संस्थाओं को और अधिक सक्षम बनना होगा ताकि वे प्रतिस्पर्द्धा में अपना अस्तित्व सुरक्षित रख सकें।

10.8 ग्रामीण विकास से सम्बंधित मुद्दे

ग्रामीण विकास एक बहुआयामी प्रक्रिया है। भारत में ग्रामीण विकास के अबतक के प्रयास के बावजूद कुछ समस्यायें बनी हुई हैं, जैसे- पर्यावरण का क्षरण, अशिक्षा / निरक्षरता, निर्धनता, ऋणग्रस्तता, उभरती असमानता, इत्यादि। इन मुद्दों को भलीभाँति विश्लेषित कर ग्रामीण विकास की भावी रणनीति को अनुकूल बनाया जा सकता है।

(क) पर्यावरण का क्षरण

विकास के भौतिकवादी प्रारूप ने भूमि. वनों, प्राकृतिक संसाधनों के अंधाधुंध उपभोग एवं दोहन को बढ़ाया है जिसके परिणाम स्वरुप पर्यावरण का संतुलन बिगड़ा है। मानव एवं अन्य प्राणियों-पशु, पक्षी आदि के समक्ष पर्यावरण के क्षरण के परिणामस्वरूप कई समस्यायें उभरी हैं एवं पर्यावरण को संरक्षित करने हेतु वैश्विक एवं राष्ट्रीय प्रयास किये जा रहे हैं। मानव द्वारा पर्यावरण के दोहन ने निम्न समस्यायें उत्पन्न की हैं: वैश्विक गर्मी, ओजोन परत में छिद्र होना, ग्रीन हाउस गैसों का उत्सर्जन, समुद्र के स्तरों में उभार, जल प्रदूषण, उर्जा संकट, वायु प्रदूषण से जुड़ी ब्याधियाँ जैसे अस्थमा में वृद्धि, लीड का विषाणुपन, जेनेटिक इंजीनियरिंग द्वारा संशोधित खाद्यानों के उत्पादन सम्बन्धी विवाद, प्लास्टिक एवं पोलीथिन के प्रयोग, गहन खेती, रासायनिक उर्वरकों के अधिकाधिक प्रयोग के परिणामस्वरूप भूमि का प्रदूषण एवं बंजर होना, नाभिकीय अस्त्र एवं नाभिकीय प्रकाश से जुड़ी दुर्घटनाएँ, अति जनसंख्या की त्रासदी, ध्वनि प्रदूषण, बड़े-बड़े बांध के निर्माण से उत्पन्न पर्यावरणीय प्रभाव, अति उपभोग की पूँजीवादी संस्कृति, वनों का कटाव, विषैली धातुओं के प्रयोग, क्षरण न होनेवाले कूड़े करकट का निस्तारण, इत्यादि। भारत में चिपको आन्दोलन, नर्मदा बचाओ आन्दोलन जैसे अनेक जनआन्दोलन किये गये हैं जिनमें पुरुषों एवं महिलाओं दोनों की सक्रिय

भागीदारी परिलक्षित होती है। सुन्दरलाल बहुगुणा, मेधा पाटकर, गौरा देवी, सुनीता नारायण आदि के वैयक्तिक योगदान के अतिरिक्त कुछ स्वयंसेवी संगठनों की भूमिका उल्लेखनीय है।

(ख) अशिक्षा/निरक्षरता: अशिक्षा वस्तुतः सामाजिक-आर्थिक विकास से सम्बन्धित सभी मुददों की जननी है जिसके परिणामस्वरूप निर्धनता, बेकारी, बाल श्रम, बालिका भ्रूण हत्या, अति जनसंख्या, जैसी अनेक समस्यायें गहरी हुई हैं। सामाजिक विकास के पैमाने में शिक्षा को एक महत्वपूर्ण सूचक के रूप में स्वीकारा गया है। भारत में हाल के दशकों में राष्ट्रीय साक्षरता मिशन, सर्वशिक्षा अभियान, निःशुल्क प्राथमिक शिक्षा का अधिकार अधिनियम, अपरान्ह भोजन, दुर्बल समूहों को स्कालरशीप, वित्तीय सहायता, दाखिला में आरक्षण, जैसे अनेक सरकारी प्रयास किये गये हैं। दूसरी ओर अनेक गैर सरकारी संस्थाएं भी शिक्षा अभियान में सक्रिय भूमिका निभा रही हैं। इन सबके बावजूद विविध अध्ययनों से प्राप्त तथ्य यह प्रदर्शित करते हैं कि भारत, टर्की, इरान जैसे देशों में अभी भी निरक्षरों की संख्या काफी अधिक है जबकि श्रीलंका, म्यांमार, वियतनाम जैसे देशों ने अल्प समय में उच्च साक्षरता दर हासिल कर लिया है।

(ग) ग्रामीण निर्धनता: दुर्बल समूहों के उत्थान एवं गरीबी निवारण के विविध प्रयासों के बावजूद भारत में निर्धनता का उन्मूलन नहीं हो सका है। सन 2005 के विश्व बैंक के आकलन के अनुसार भारत में 41.6 प्रतिशत अर्थात 456 मिलियन व्यक्ति अन्तर्राष्ट्रीय गरीबी रेखा से नीचे (प्रतिदिन 1.25 डालर से कम आय वाले) हैं। 1981 में भारत में निर्धन व्यक्तियों की संख्या अन्तर्राष्ट्रीय मानकों के अनुसार 60 प्रतिशत थी जो 2005 तक घटकर 41 प्रतिशत हुई है। भारत सरकार के योजना आयोग के आंकड़े यह दर्शाते हैं कि भारत में निर्धनों की आबादी 1977-78 में 51.3 प्रतिशत थी जो 1993-94 में घटकर 36 प्रतिशत हुई तथा 2004-05 में 27.5 प्रतिशत आबादी ही निर्धन है। नेशनल काउंसिल फार एप्लायड इकोनोमिक रिसर्च के आकलन के अनुसार सन् 2009 में यह पाया गया कि भारत के कुल 222 मिलियन परिवारों में से पूर्णरूपेण निर्धन (जिनकी वार्षिक आय 45000 रूपये से कम थी) 35 मिलियन परिवार हैं, जिनमें लगभग 200 मिलियन व्यक्ति सम्मिलित हैं। इसके अतिरिक्त 80 मिलियन परिवारों की वार्षिक आय 45000 से 90000 रूपये के बीच है। हाल ही में जारी की गई विश्व बैंक की रिपोर्ट में यह अनुमान लगाया गया है कि भारत में निर्धनता उन्मूलन के प्रयासों के बावजूद सन् 2015 तक 53 मिलियन व्यक्ति (23.6 प्रतिशत आबादी) पूर्णरूपेण निर्धन बने रहेंगे जिनकी आय 1.25 मिलियन डालर प्रतिदिन से कम होगी।

भारत में निर्धनता के तथ्य यह भी प्रदर्शित करते हैं कि निर्धनता की आवृत्ति जनजातियों, अनुसूचित जातियों में सर्वाधिक हैं। यद्यपि इस निष्कर्ष पर आम सहमति है कि भारत में हाल के दशकों में निर्धनों की सख्या घटी है किन्तु यह तथ्य अभी भी विवादस्पद बना हुआ है कि निर्धनता कहाँ तक कम हुई है। इस विवाद का मूल कारण विभिन्न अभिकरणों के द्वारा आकलन की पृथक-पृथक रणनीति अपनाया जाना है। न्यूयार्क टाइम्स ने अपने अध्ययन में यह दर्शाया है कि भारत में 42.5 प्रतिशत बच्चे कुपोषण के शिकार हैं। विश्व स्वास्थ्य संगठन के आकलन के आधार पर

विश्व बैंक ने यह निष्कर्ष दिया कि विश्व के सामान्य से कम भार वाले शिशुओं का 49 प्रतिशत तथा अवरूद्ध विकास वाले शिशुओं का 34 प्रतिशत भारत में रहता है।

इन तथ्यों से यह स्पष्ट है कि भारत में ग्रामीण विकास के तमाम प्रयासों के बावजूद ग्रामीण निर्धनता की समस्या का उन्मूलन नहीं हो पाया है। ग्रामीण विकास की भावी रणनीति में निर्धनता की समस्या को प्राथमिकता प्रदान करते हुए विकास कार्यक्रमों का क्रियान्वयन करना होगा।

(घ) स्वास्थ्य समस्यायें : ग्रामीण विकास के तमाम प्रयास के बावजूद ग्रामीण जनों हेतु स्वास्थ्य एवं चिकित्सा की पर्याप्त सुविधाएँ उपलब्ध नहीं है। ग्रामीण दूर दराज के क्षेत्रों में न सिर्फ विशेषज्ञ चिकित्सकों बल्कि सामान्य चिकित्सकों का भी अभाव है। परिणामस्वरूप ग्रामीण जनों की स्वास्थ्य की दशाएं दयनीय हैं। लगभग 75 प्रतिशत स्वास्थ्य संरचना, चिकित्सक एवं अन्य स्वास्थ्य सम्बन्धी स्रोत नगरों में उपलब्ध हैं जहाँ 27 प्रतिशत आबादी निवास कर रही है।

भारत में सन् 2000 तक सबके लिए स्वास्थ्य का लक्ष्य निर्धारित किया गया था, किन्तु यह लक्ष्य अभी तक प्राप्त नहीं किया जा सका है। नेशनल रूरल हेल्थ मिशन जैसे कार्यक्रमों के जरिये भारत के ग्रामीण क्षेत्रों में स्वास्थ्य सेवाएं प्रदान की जा रही हैं। समाजकार्य की दृष्टि से ग्रामीण आबादी की स्वास्थ्य की आवश्यकताओं को पूरा करने हेतु वर्तमान जीव चिकित्सा प्रारूप (बायोमेडिकल माडल) की बजाय समाज सांस्कृतिक स्वरूप (सोसियोकल्चरल माडल) अपेक्षाकृत अधिक प्रासंगिक होगा। राष्ट्रीय स्वास्थ्य नीति के विस्तृत संशोधित प्रारूप में ग्रामीण नगरीय असमान संरचना के पहलुओं को ध्यान में रखते हुए दीर्घकालीन योजना बनानी होगी तथा ग्रामीण स्वास्थ्य सेवाओं को अधिक सशक्त करना होगा।

(ड.) ग्रामीण ऋणग्रस्तता: भारतीय ग्रामीण अर्थव्यवस्था में ग्रामीण ऋणग्रस्तता एक गम्भीर समस्या है। ऋणग्रस्तता का आशय है ऋण से ग्रस्त व्यक्ति के लिए ऋण चुकाने की बाध्यता का होना। ग्रामीण भारत में निर्धन किसानों एवं मजदूरों द्वारा अपनी आवश्यकताओं के कारण लिया जाने वाला कर्ज जब बढ़ जाता है एवं वे अपनी कर्ज अदायगी में असमर्थ हो जाते हैं तो यह स्थिति ग्रामीण ऋणग्रस्तता की समस्या उत्पन्न करती है। ग्रामीण ऋणग्रस्तता वस्तुतः हमारी कमजोर वित्तीय संरचना की सूचक है जो यह प्रदर्शित करती है कि हमारी आर्थिक व्यवस्था जरूरतमंद किसानों, भूमिहीनों एवं कृषक मजदूरों तक पहुँचने में दुर्बल है।

ग्रामीण ऋणग्रस्तता का प्रादुर्भाव कैसे होता है? इस प्रश्न का विश्लेषण यह है कि ग्रामीण कृषक एवं मजदूर कृषि कार्य हेतु अथवा अपने परिवार के भरण-पोषण, शादी-विवाह, बीमारी के इलाज एवं अन्य कार्य हेतु ऋण लेते हैं। अल्प आय, पारिवारिक व्यय, इत्यादि के कारण वे ऋण को चुकाने में असमर्थ हो जाते हैं तथा उन ऋणों पर सूद बढ़ता जाता है। वित्तीय संस्थाओं की जटिल औपचारिकताओं को पूरा न कर पाने एवं समय पर तत्काल ऋण प्राप्त न होने, आदि कारणों की वजह से निर्धन किसान एवं मजदूर निजी सूदखोरों एवं महाजनों से कर्ज लेते हैं जिनके द्वारा मनमाना

सूद लेने, बेगार कराने, जैसे अनेक शोषण किया जाता है तथा ऋणग्रस्तता की समस्या पीढ़ी दर पीढ़ी बनी रहती है। रायल कमीशन ऑन लेबर, 1928 ने ब्रिटिश काल में किसानों की दशा पर अपनी रिपोर्ट में यह व्यक्त किया कि "भारतीय किसान ऋण में पैदा होता है, ऋण में जीवन व्यतीत करता है तथा अपनी आगामी पीढ़ी को भी ऋणग्रस्तता की विरासत सौंप जाता है।"

मोटे तौर पर ग्रामीण ऋणग्रस्तता के निम्नलिखित कारक हैं-

1. कम आय

2. शिक्षा का अभाव

3. ऋण का अनुत्पादक व्यय एवं उपभोग में अपव्यय

4. विरासत में प्राप्त ऋणग्रस्तता

5. विवादों में धन की बर्बादी

6. दुर्बल वित्तीय समावेश

7. बैंकिग सुविधाओं एवं सेवाओं की दुर्बल बाजार प्रणाली

8. कर्ज देने की दोषपूर्ण प्रणाली

9. मॉनसून की अनिश्चितता

10. सामाजिक प्रथाओं / रीति-रिवाजों में अपव्यय

11. कृषि उत्पादों की उच्च लागत

ऋणग्रस्तता के परिणाम

1. बंधक जमीन अथवा वस्तुओं को बेचने की बाध्यता

2. सूदखोरों द्वारा शोषण

3. श्रम की क्षमता में कमी

4. ग्रामीण समाज में भेदभाव का बढ़ना

5. सामाजिक विघटन जैसे आत्म हत्या एवं अपराध में वृद्धि

6. भूस्वामी एवं भूमिहीन के रूप में समाज का विभाजन

7. सामाजिक-आर्थिक विकास में बाधा

8. बधुआ मजदूरी की समस्या का उद्भव

9. भारतीय अर्थव्यवस्था का हास

ऋणग्रस्तता पर नियंत्रण हेतु किये गये प्रयास

- समय-समय पर राज्य एवं केन्द्र सरकारों ने ऋण माफ किया। कृषि ऋण माफी योजना, 2008 के अन्तर्गत भारत सरकार ने बैंक एवं वित्तीय संस्थाओं को 10000 करोड़ रूपये का अनुदान दिया ताकि वे देश भर में कृषि ऋण को माफ करते हुए अपनी भरपाई भी कर सकें।
- केन्द्र सरकार द्वारा सन् 1990-91 में कृषि एवं ग्रामीण ऋण सहायता योजना लागू की गई।
- ग्रामीण क्षेत्रों में कोआपरेटिव सोसाइटी, क्षेत्रीय ग्रामीण बैंक, वाणिज्यिक बैंक, इत्यादि समेत कई संस्थागत वित्तीय एवं साख एजेन्सी विकसित की गई।
- सूदखोरी पर वैधानिक एवं प्रशासनिक रूप से नियंत्रण किया गया।
- सन् 1985 में विस्तृत फसल बीमा योजना लागू की गई।
- सन् 1998 में किसान क्रेडिट कार्ड कार्यक्रम चलाया गया।
- सन् 2000 में राष्ट्रीय कृषि बीमा योजना क्रियान्वित की गई।
- सन् 2004 में कृषि क्षेत्र आय बीमा योजना लागू किया गया।
- सन् 2004 में राष्ट्रीय कृषक आयोग गठित किया गया।
- लघु किसान विकास अभिकरण कार्यक्रम चलाया गया।
- राज्य स्तर पर किसान ऋण माफी योजना लागू की गई।
- लघु वित्त योजना, स्वयं सहायता समूहों को बैंक से जोड़ने का प्रयास किया गया।
- ग्रामीण निर्धनों एवं भूमिहीन श्रमिकों के आर्थिक उत्थान हेतु महात्मा गांधी नेशनल रूरल इम्प्लायमेंट गारंटी कार्यक्रम (मनरेगा) सन् 2006 में लागू किया गया।

भारत सरकार के श्रम एवं नियोजन मंत्रालय से जारी प्रपत्र यह प्रदर्शित करते हैं ग्रामीण ऋणग्रस्तता वस्तुतः ग्रामीण विकास में एक महत्वपूर्ण बाधा / अवरोध है। ग्रामीण ऋणग्रस्तता न सिर्फ सामाजिक आर्थिक अवसरों में असमानता को बढ़ाती है बल्कि ग्रामीण क्षेत्रों में संवृद्धि प्रक्रिया को बाधित करती है तथा ऋणग्रस्त परिवारों में कुंठा एवं अवसाद के कारण जनतांत्रिक प्रक्रियाओं में सहभागिता हेतु उनमें अन्तरपीढ़िगत विकलांगता उत्पन्न करती है।

(च) उभरती असमानताएँ: वैश्वीकरण (1991) के दौर में पूँजी के वर्चस्व ने भारत समेत विश्व के स्तर पर असमानता की खाई को बढ़ाया है। भारत के आम जन निर्धन हैं किन्तु भारत को उभरती आर्थिक एवं राजनीतिक शक्ति के रूप मे

पहचान मिली है। कम आय के बावजूद भारत के दक्ष तकनीकी समूह ने विकसित एवं पूजीपति देशों के समक्ष एक विकट चुनौती उत्पन्न किया है।

उच्च विकास दर के बावजूद संगठित उद्योगों में रोजगार के नये अवसर स्थिर हो गए हैं, असंगठित क्षेत्र में रोजगार के अवसर अवश्य बढ़े हैं किन्तु असंगठित क्षेत्रों से अर्जित की गई आय इतनी अल्प है कि निर्धनता रेखा से ऊपर लाने में असमर्थ है।

1. ग्रामीण विकास का आशय है:

अ. ग्रामीण क्षेत्रों का विकास करना ब. कृषि उत्पादन के साधन एवं सम्बन्धों में परिवर्तन करना

स. ग्रामीण उद्योग को विकसित करना द. ग्रामीण जनों के जनजीवन में गुणात्मक उन्नति करना

2. सामुदायिक विकास कार्यक्रम ग्रामीण विकास के निम्नलिखित में से किस अभिगम पर आधारित है?

अ. बहुद्देशीय अभिगम ब. जनतांत्रिक विकेन्द्रीकरण अभिगम स. क्षेत्रीय विकास अभिगम

द. लक्ष्य समूह अभिगम

3. पंचायती राज योजना कब क्रियान्वित की गई थी?

अ. 1954 ब. 1959 स. 1964 द. 1992

4. गांधी की ग्रामीण पुनर्निर्माण योजना में निम्नलिखित में से कौन सा तत्व महत्वपूर्ण नहीं है?

अ. ग्राम स्वराज की स्थापना ब. पूँजी आधारित प्रौद्योगिकी की महत्ता

स. गैर प्रतिस्पर्धात्मक समाज का निर्माण द. विकेन्द्रीकृत ग्रामीण विकास की रणनीति

10.9 सारांश

सूचना प्रौद्योगिकी के नये दौर में कम्प्यूटर, इंटरनेट, मोबाइल जैसे अत्याधुनिक उपकरणों ने असमानता का नया प्रतिमान उभारा है, जिसे डिजिटल डिवाइड के रूप में पुकारा जाता है। सूचना प्रौद्योगिकी में कुशलता के आधार पर एक नया अभिजन वर्ग उभरा है जो इंटरनेट का उपयोग न कर पाने वाले समूहों की अपेक्षा विकास का वास्तविक लाभार्थी बना है। सूचना प्रौद्योगिकी में दक्ष एवं कुशल व्यक्तियों को अकुशल व्यक्तियों की अपेक्षा कई गुणा अधिक वेतन पर बहुराष्ट्रीय कम्पनियों में नौकरियाँ उपलब्ध हुई हैं। सूचना प्रौद्योगिकी ने सामाजिक असमानता के परम्परागत आधारों जमीन जायदाद, औद्योगिक स्वामित्व, सम्पत्ति एवं पूँजी आदि में एक नया आयाम जोड़ा है।

10.10 अध्यास प्रश्नों के उत्तर

1. द; 2. अ; 3. ब; 4. ब

10.11 निबंधात्मक प्रश्न

1. ग्रामीण विकास से आपका क्या आशय है? भारत में ग्रामीण विकास के विविध उपागमों एवं रंणनीतियों की विवेचना कीजिए।

2. महात्मा गांधी की ग्रामीण पुनर्निर्माण की योजना वर्तमान सन्दर्भ में कितनी प्रासंगिक है? विवेचना कीजिए।

3. ग्रामीण विकास में सहकारी संस्थाओं की भूमिका का मूल्यांकन कीजिए।

4. भारत में ग्रामीण विकास से सम्बद्ध प्रमुख समस्याओं की विवेचना कीजिए।

5. भारत में ग्रामीण विकास कार्यक्रमों का मूल्यांकन कीजिए।

10.12 संदर्भ सूची

Deaton, A. and Dreze, J. (2002) "Poverty and Inequality in India", Econimic and Political Weekly, September 7, 3729-48

Dreze, Jean and Sen, Amartya (2002) India: Development and Participation, New Delhi: Oxford University Press.

Desai, Vasant (1988) Rural development: Experiment in Rural Development, Bombay: Himalaya Publishing House.

Harris, John (1986) Rural Development: Theories of Peasant Economy and Agrarian Change, Hutchinson, ELBS.

Kothari, Rajani (1974) India and the Alternative framework for Rural Development, Development Dialogue, Uppasala: DHF.

Mohanty, Siba Sankar (2007) "Rural Indebtedness in India: An Obstacle for Development, Counter Currents, Org. 13 July, 2007.

इकाई 11- नगरीय विकास

इकाई की रूपरेखा

11.1 प्रस्तावना

11.2 उद्देश्य

11.3 नगरीयता एवं नगरीकरण की अवधारणा

11.4 नगर नियोजन, नगरीय नीति एवं नगरीय विकास

11.5 नगरीय सामाजिक समूहों के लिए कल्याण कार्यक्रम

11.6 नगरीय विकास से सम्बद्ध समस्यायें

11.7 समीक्षात्मक मूल्यांकन

11.8 सारांश

11.9 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

11.10 निबंधात्मक प्रश्न

11.11 संदर्भ ग्रन्थ सूची

11.1 परिचय

भौगोलिक एवं प्राकृतिक भू-भाग को समाज वैज्ञानिकों ने विविध आधारों पर बाँटा है: महाद्वीप एवं महादेशीय आधार पर वर्गीकरण, राष्ट्र राज्यों के आधार पर वर्गीकरण, सामाजिक-आर्थिक प्रणालियों के आधार पर वर्गीकरण, इत्यादि। समाज ऐतिहासिक विकास की प्रक्रिया को आधार बनाकर विश्व के भू-भागों को दो श्रेणियों में विभक्त किया जा कसता है: ग्रामीण क्षेत्र एवं नगरीय क्षेत्र।

11.2 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के उपरान्त आप-

1. नगर, नगरीयता एवं नगरीकरण का आशय समझ सकेंगे।

2. भारत में नियोजन एवं नगरीय विकास के स्वरूप को जान सकेंगे।

3. विविध नगरीय सामाजिक समूहों महिलाओं, शिशुओं, युवाओं के लिए कल्याण कार्यक्रमों से परिचित होंगे।

4. नगरीय विकास की विविध समस्याओं के स्वरुप को समझ सकेंगे।

5. भारत में नगरीय विकास का समाजवैज्ञानिक मूल्यांकन कर सकेंगे।

11.3 नगर, नगरीयता एवं नगरीकरण की अवधारणा

आज वैश्विक स्तर पर दुनिया की लगभग आधी आबादी नगरीय क्षेत्रों में निवास कर रही है। लेकिन विश्व के नगरीय रुपान्रतण का प्रतिमान अलग-अलग राष्ट्रों में समरुपीय नहीं है। एक ओर जहाँ विकसित देश-अमेरिका, यूरोप की भाँति लैटिन अमरीका एवं कैरिबियन द्वीप समूह में लगभग तीन चौथाई आबादी नगरीय क्षेत्रों में रह रही है वहीं दूसरी ओर भारत, चीन, इंडोनेशिया एवं अफ्रीका में लगभग दो-तिहाई आबादी अभी ग्रामीण क्षेत्रों में ही रह रही है। अरब राष्ट्रों की लगभग आधी आबादी ग्रामीण एवं शेष आधी नगरीय आबादी का प्रतिमान अलग-अलग क्षेत्रों में भिन्न-भिन्न है।

नगर : 'नगरीय क्षेत्र' या 'नगर' कया है? इस शब्द का प्रयोग दो अर्थ में होता है-जनसांख्यिकीय रुप में और समाजशास्त्रीय रुप में। पहले अर्थ में जनसंख्या के आकार, जनसंख्या की सघनता, और दूसरे अर्थ में विषमता, अवैयक्तिकता, अन्योन्याश्रय, और जीवन की गुणवत्ता पर ध्यान केन्द्रित रहता है। जर्मन समाजशास्त्री टोनीज (1957) ने ग्रामीण और नगरीय समुदायों में भिन्नता सामाजिक संबंधो और मूल्यों के द्वारा बताई है। ग्रामीण गेमिनशेफ्ट समुदाय वह है जिसमें सामाजिक बन्धन कुटुम्ब और मित्रता के निकट के व्यक्तिगत बंधनों पर आधारित होते हैं और परम्परा, सामंजस्य और अनौपचारिकता पर बल दिया जाता है जबकि नगरीय गैसिलशेफ्ट समाज में अवैयक्तिक और द्वितीयक संबंध-प्रधान होते हैं और व्यक्तियों में विचारों का आदान-प्रदान औपचारिक, अनुबन्धित और विशेष कार्य या नौकरी जो वे करते हैं उन पर आधारित होते हैं। गैसिलशेफ्ट समाज में उपयोगतावादी लक्ष्यों और सामाजिक संबंधों के प्रतिस्पर्द्धा के स्वरुप पर बल दिया जाता है।

मैक्स वेबर (1961:381) और जार्ज सिमल (1950) जैसे अन्य समाजशास्त्रियों ने नगरीय वातावरण में सघन आवासीय परिस्थितियों, परिवर्तन में तेजी, और अवैयक्तिक अन्तःकिया पर बल दिया है। लुईस वर्थ ने कहा है कि समाजशास्त्रीय उद्देश्यों के लिये एक नगर की यह कह कर परिभाषा की जा सकती है कि वह सामाजिक रुप से पंचमेल / विषमरुप व्यक्तियों की अपेक्षाकृत बड़ी, सघन, और अस्थाई बस्ती है। रुथ ग्लास (1956) जैसे विद्वानों ने नगर को जिन कारकों द्वारा परिभाषित किया है वे हैं जनसंख्या का आकार, जनसंख्या की सघनता, प्रमुख आर्थिक व्यवस्था, प्रशासन की सामान्य रचना, और कुछ सामाजिक विशेषतायें।

भारत में 'कस्बे की जनगणना की परिभाषा 1950-51 तक लगभग एक ही रही, परन्तु 1961 में एक नई परिभाषा अपनाई गई। 1951 तक, 'कस्चे' में सम्मिलित थेः (1) मकानों का संग्रह जिनमें कम से कम 5000 व्यक्ति स्थाई रुप से निवास करते हैं, (2) प्रत्येक म्युनिसिपेलिटि / कार्पोरेशन / किसी भी आकार का अधिसूचित क्षेत्र, और (3) सब सिविल लाइनें जो म्यूनिसिपल इकाईयों में सम्मिलित नहीं हैं। इस प्रकार कस्बे की परिभाषा में प्रमुख फोकस जनसंख्या के आकार पर न होकर प्रशासनिक व्यवस्था पर अधिक था। 1961 में किसी स्थान को कस्बा कहने के लिये कुछ मापदण्ड लगाये गये। ये थेः (अ) कम से कम 5000 की जनसंख्या, (ब) 1000 व्यक्ति प्रति वर्ग मील से कम की सघनता नहीं, (स) उसकी कार्यरत जनसंख्या का तीन चौथाई गैर-कृषिक गतिविधियों में होनी चाहिये, और (द) उस स्थान की कुछ अपनी विशेषतायें होनी चाहिये और यातायात और संचार, बैंकें, स्कूलों, बाज़ारों, मनोरंजन केन्द्रों, अस्पतालों, बिजली, और अखबारों आदि की नागरिक सुख सुविधायें होनी चाहिये। परिभाषा में इस परिवर्तन के फलस्वरुप 812 क्षेत्र (44 लाख व्यक्तियों के) जो 1951 की जनगणना में कस्बे घोषित किये गये थे उन्हें 1961 की जनगणना में कस्बा नहीं माना गया।

1961 का आधार 1971, 1981, 1991 की जनगणनाओं में भी कस्बे की परिभाषा करते समय अपनाया गया। अब जनसांख्यिकीय रुप में उन क्षेत्रों को जिनकी जनसंख्या 5000 और 20000 के बीच है छोटा कस्बा माना जाता है, जिनकी 20000 और 50000 के बीच है उन्हे बड़ा कस्बा माना जाता है।, जिनकी जनसंख्या 50000 और एक लाख के बीच है, उन्हें शहर कहा जाता है, जिनकी एक लाख और 10 लाख के बीच उन्हे बड़ा शहर कहा जाता है, जिसकी 10 लाख और 50 लाख के बीच है उसे विशाल नगर कहा जाता है और जिसमें 50 लाख से अधिक व्यक्ति हैं उसे महानगर कहा जाता है।

नगरीयता : लुईस वर्थ (1938:49) ने नगरीयता की चार विशेषतायें बतलाई हैं:

- स्थायित्वः एक नगर निवासी अपने परिचितों को भूलता रहता है और नये व्यक्तियों से संबन्ध बनाता रहता है। उसके पड़ोसियों से एवं क्लब आदि जैसे समूहों के सदस्यों से अधिक मैत्रीपूर्ण संबन्ध नहीं होते इसलिये उनके चले जाने से उसे कोई चिन्ता नहीं होती।
- सतहीपनः एक नागरिक कुछ ही व्यक्तियों से बातचीत करता है और उनसे भी उसके संबन्ध अवैयक्तिक और अनौपचारिक होते हैं। व्यक्ति एवं दूसरे से अत्यन्त अलग-अलग भूमिकाओं में मिलते हैं। वे अपने जीवन की आवश्यकतों की पूर्ति के लिये अधिक व्यक्तियों पर निर्भर होते है।
- गुमनामीः नगरवासियों के एक दूसरे से घनिष्ट संबन्ध नहीं होते। वैयक्तिक पारस्परिक परिचितता, जो अड़ोस-पड़ोस के व्यक्तियों में निहित होती है, नगर में नहीं होती।
- व्यक्तिवादः व्यक्ति अपने निहित स्वार्थों को अधिक महत्व देते हैं।

रुथग्लास (1956:32) ने नगरीयता की निम्नलिखित विशेषतायें बतलाई हैं: गतिशीलता, गुमनामीपन, व्यक्तिवाद, अवैयक्तिक संबन्ध, सामाजिक भेदीकरण, अस्थायित्व, और यांत्रिक एकता। एन्डर्सन (1953:2) ने नगरीयता की तीन विशेषताओं को सूचीबद्ध किया हैः समंजननीयता, गतिशीलता, और फैलाव। मार्शल क्लिनार्ड (1957) ने द्रुतगामी सामाजिक परिवर्तन, प्रतिमानों और मूल्यों के बीच संघर्ष, जनसंख्या की बढ़ती हुई गतिशीलता, भौतिक वस्तुओं पर बल, और अभिन्न अन्तर-वैयक्तिक सम्पर्क में अवनति को नगरीयता की महत्वपूर्ण विशेषताऐं बतलाया है। के. डेविस (1953) ने नगरीय सामाजिक व्यवस्था की आठ विशेषताओं का उल्लेख किया हैः सामाजिक विषमता (नगरीय क्षेत्रों में विभिन्न धर्मों, भाषाओं, जातियों, और वर्गों के व्यक्ति रहते हैं और वहां पर व्यवसाय में भी विशेषज्ञता होती है), द्वैतीयक संबंध, सामाजिक गतिशीलता. व्यक्तिवाद, स्थान संबंधी पृथक्करण, सामाजिक सहनशीलता, द्वैतीयक नियन्त्रण, और स्वयंसेवी संस्थायें।

लूईस वर्थ (1938:1-24) ने नगरीयता की चार विशेषतायें बतलाई हैं: जनसंख्या में भिन्नता, कार्य की विशेषज्ञता, गुमनामी, अवैयक्तिकता, और जीवन और व्यवहार का मानकीकरण।

नगरीकरण : जनसंख्या का ग्रामीण क्षेत्रों से नगरीय क्षेत्रों में जाना 'नगरीकरण' कहलाता है। इसके परिणामस्वरुप जनसंख्या का बढ़ता हुआ भाग ग्रामीण स्थानों में रहने की बजाय शहरी स्थानों में रहता है। थौमसन वारन (एनसाइक्लोपीडिया ऑफ सोशल साइन्सेज) ने इसकी परिभाषा इस प्रकार की है: "यह ऐसे समुदायों के व्यक्तियों, जो प्रमुखरुप से या पूर्णरुप से कृषि से जुड़े हुये हैं, का उन समुदायों में जाना है जो साधारणतया (आकार में) उनसे बड़े हैं

और जिनकी गतिविधियां मुख्यरुप से सरकार, व्यापार, उत्पादन या इनसे सम्बद्ध कारबारों पर केन्द्रित हैं। एन्डर्सन (1953:11) के अनुसार नगरीकरण एकतरफा प्रक्रिया न होकर दोतरफा प्रक्रिया है। इसमें केवल गांवो से शहरों में जाना नहीं होता, परन्तु इसमें प्रवासी के रुखों, विश्वासों, मूल्यों और व्यवहार के संरुपों में भी परिवर्तन होता है। उसने नगरीकरण की पांच विशेषतायें बताई हैंः मुद्रा अर्थव्यवस्था, सरकारी प्रशासन, सांस्कृतिक परिवर्तन, लिखित अभिलेख, और अभिनव परिवर्तन।

11.4 नगर नियोजन, नगरीय नीति एवं नगरीय विकास

सन् 2011 तक भारत की नगरीय आबादी लगभग 410 मिलियन हो गई है जो कुल आबादी का एक तिहाई हिस्सा है। विगत पाँच दशकों में जहीं भारत में आबादी की वृद्धि 2.5 गुणा रही है वहीं नगरीय आबादी में पाँच गुणा तक हो जायेगी। 1901 में भारत में छोटे बड़े 1827 नगरीय क्षेत्र थे जिनकी संख्या 2001 में 5061 हो गई है।

नगरीकरण वह प्रक्रिया है जिसका प्रादुर्भाव आर्थिक वृद्धि के परिणामस्वरूप होता है तथा यह आर्थिक संवृद्धि का निर्धारक भी है। इसके बावजूद भारत में आर्थिक वृद्धि की तुलना में नगरीकरण की वृद्धि दर धीमी रही है जिसके विविध कारक हैं: ग्रामीण उत्पादकता में अपर्याप्त वृद्धि, उद्योगों में मानव श्रम की बजाय मशीन एवं पूँजी आधारित प्रतिकूल प्रौद्योगिकी का विकास, श्रम विधानों की कठोर प्रकृति एवं लघु उद्योगों के विस्तार की अपर्याप्त नीति, नगरीय अधिसंरचना पर अपर्याप्त व्यय, नगरीय भूमि हदबंदी अधिनियम एवं नगरीय भूमि नीति की कठोरता, इत्यादि।

भारत में नगर नियोजन एवं नगरीय विकास की नीति की निम्नलिखित विशेषताएं परिलक्षित होती हैं-

नगर नियोजन की राष्ट्रीय आर्थिक नियोजन प्रक्रिया से पृथकता

भारत में नियोजन की अवधारणा प्रायः एक स्थिर धारणा के रुप में प्रयुक्त होती आ रही है जिसके अन्तर्गत राष्ट्रीय आर्थिक नियोजन एवं नगरीय नियोजन पृथक-पृथक प्रक्रियायें हैं। इस मान्यता के अनुसार नगर की मास्टर योजना का निर्माण करना नगरीय विकास का प्रमुख दायित्व है। वास्तविकता यह है कि ग्रामीण एवं नगरीय संरचना की बदलती हुई परिस्थिति में नगर नियोजन की प्रक्रिया को गतिशील, अनुकूलक, अन्तःकियात्मक एवं निरन्तर जारी रखने की आवश्यकता है ताकि राष्ट्र के आर्थिक विकास, सामाजिक-आर्थिक परिवर्तन एवं प्रबन्धन को नगरीय योजना से सम्बद्ध किया जा सके। नगर नियोजन की मूल समस्या केवल क्षेत्रीय नहीं है बल्कि प्रकार्यात्मक भी है। इस दृष्टि से नगर नियोजन के अन्तर्गत केवल कृषि भूमि के गैर कृषि क्षेत्रों में रचनात्मक उपयोग पर ही ध्यान केन्द्रित करने की बजाय सामाजिक-आर्थिक परिवर्तन की प्रकिया की जटिलताओं को अन्तःसम्बन्धित करने के प्रकार्यों को महत्व देना होगा।

नगर नियोजन में समय एवं दूरी जैसे कारकों की उपेक्षा

नगरों के मास्टर प्लान के अन्तर्गत सम्पूर्ण नगरीय परिधि को कई उपभागों में बाँटने, नियोजन कार्यालय क्षेत्र एवं आवासीय क्षेत्र को अलग-अलग स्थान आवंटित करने के अभियान के परिणामस्वरुप नगरवासियों का अधिकांश समय घर से कार्यालय आने जाने में ही व्यतीत हो जाता है तथा नगरीय यातायात पर भी दबाव बढ़ जाता है। अतः नगर योजना में विभिन्न परिधियों के विभाजन की प्रकिया में समय एवं दूरी जैसे आधारभूत कारकों को महत्व देना होगा।

नगर योना के क्रियान्वयन में शिथिलता

भारत में नियोजन की प्रमुख समस्या यह है कि योजनाओं के क्रियान्वयन की प्रक्रिया में शिथिलता बरती जाती है जिसका परिणाम नगरीय अराजकता में वृद्धि, नगरों के हास एवं मलिन बस्तियों के विकास के रुप में परिलक्षित होता है। इस शिथिलता का प्रमुख कारण यह है कि नगर नियोजकों की प्रस्थिति प्रशासन की दृष्टि में प्रशासक की अपेक्षा निम्न मानी जाती है तथा किसी समस्या पर नगर नियोजक की बजाय प्रशासक का निर्णय ही सर्वोपरि बन जाता है। आवश्यकता है कि नगर नियोजकों को उचित महत्व दिया जाय ताकि नगरीय योजनाओं के क्रियान्वयन को प्रभावी बनया जा सके।

नगर को प्रकार्यात्मक बनाने की आवश्यकता की उपेक्षा

नगर नियोजन का वर्तमान स्वरुप अभिजात्यपूर्ण दृष्टि पर प्रमुखतः आधारित है जिसके अन्तर्गत समृद्ध समूहों के हितों को प्राथमिकता देने तथा निर्धनों को प्रायः अपने बलबूते पर विकसित करने की योजना बनाई जाती है। मलिन बस्तियों में रहने वाले निर्धन नगरवासियों को शामिल करते हुए नगर को अधिक प्रकार्यात्मक एवं सुन्दर बनाने की आवश्यकता है।

स्थानीय स्वायत्त प्रशासन की उपेक्षा

नगर महापालिका अथवा नगर निगम प्रशासन की भूमिका नगरीय विकास में महत्वपूर्ण है। वित्तिय संकट, कार्य के प्रति निष्ठा का अभाव, भ्रष्टाचार, आदि के वर्तमान परिप्रेक्ष्य में स्थानीय प्रशासन की भूमिका प्रायः निष्क्रिय हो गयी है। हाल ही में 74वें संवैधानिक संशोधन के माध्यम से सरकार ने स्थानीय प्रशासन को जन प्रतिनिधित्वपूर्ण बनाने का प्रयास किया है। किन्तु स्थानीय प्रशासन में चुने जाने वाले ये जन प्रतिनिधि सभासद जब तक जन कल्याण हितों के प्रति समर्पित नहीं होंगे तब तक प्रतिनिधिपूर्ण स्थानीय स्वशासन को अर्थपूर्ण नहीं बनाया जा सकता।

प्रशासन की दृष्टि में नगरपालिका अथवा नगर निगम प्रशासन का कार्य सामान्य प्रशासन की अपेक्षा कम महत्वपूर्ण है। इसलिए इन स्थानीय क्षेत्रों में प्रायः वही प्रशासक भेजे जाते हैं जिन्हें राज्य प्रशासन में उपयुक्त स्थान नहीं मिलता। प्रशासन की यह परम्परागत दृष्टि वर्तमान परिप्रेक्ष्य में बदलनी होगी। कुशल, प्रशिक्षित एवं प्रबंधन की योग्यता वाले प्रशासकों को स्थीनीय प्रशासन में नियोजित करके नगरीय प्रशासन को अधिक सक्षम एवं उत्तरदायी बनाया जा सकता है।

11.5 नगरीय सामाजिक समूहों के लिए कल्याण कार्यक्रम

एक कल्याणकारी राज्य के रूप में भारत अपने नागरिकों, विशेष रूप से दुर्बल समूहों जैसे- अनुसूचित जातियों, अनुसूचित जनजातियों, पिछड़े वर्गों, अल्पसंख्यकों, विकलांगों आदि के कल्याण एवं सामाजिक-आर्थिक विकास हेतु प्रतिबद्ध है। वृद्ध, युवा, महिला, शिशु समेत लगभग 85 प्रतिशत आबादी राज्य के समाज कल्याण कार्यक्रम की परिधि में शामिल हैं। राष्ट्रीय अनुसूचित जाति एवं अनुसूचित जनजाति वित्त एवं विकास निगम जैसे अभिकरण का गठन किया गया है जो इन समूहों में उद्यम एवं अन्य कौशल के विकास हेतु 100 प्रतिशत सरकारी अनुदान प्रदान करती है। संसद एवं विधानसभाओं से लेकर ग्राम स्तर तक इन दुर्बल समूहों के लिए स्थान आरक्षित किये गये हैं। शैक्षणिक संस्थाओं में भी इन समूहों के लिए आरक्षण, छात्रवृत्ति, ऋण/अनुदान के प्राविधान बनाये गये हैं। अन्य

पिछड़े वर्ग के लिए 27 प्रतिशत आरक्षण का प्राविधान पृथक रूप से क्रियान्वित किया गया है। 1994 में अल्पसंख्यक वित्त एवं विकास निगम की स्थापना के साथ अल्पसंख्यक वर्ग के पिछड़े समूहों हेतु नये 15 सूत्रीय कल्याण कार्यक्रम क्रियान्वित किये गये हैं। 1974 में शिशुओं के लिए गठित राष्ट्रीय नीति में शिशुओं का पालनपोषण राज्य का दायित्व माना गया है। संयुक्त राष्ट्र द्वारा शिशुओं के अधिकार की घोषणा के प्रारूप का अनुसरण करते हुए भारत 1986 में शिशु न्याय अधिनियम पारित करने वाला प्रथम देश बन गया है। देश भर में 450 से अधिक शिशुओं की देखभाल केन्द्र, वृद्ध आश्रम एवं गतिशील चिकित्सा इकाइयाँ स्थापित की गई हैं। लगभग 60 से अधिक इकाईयों निराश्रित शिशुओं के कल्याण हेतु कार्यरत हैं। इस प्रकार मद्य व्यसन सेवियों की रोकथाम एवं उनमें जागरूकता पैदा करने हेतु 359 सरकारी परामर्श केन्द्र कार्यरत हैं तथा 250 गैरसरकारी संगठन, जो इस दिशा में कार्यरत हैं उन्हें सरकार द्वारा अनुदान प्रदान किया जा रहा है। शिशु मत्यु दर को कम करने हेतु सुरक्षित प्रसव एवं मातृत्व कार्यक्रम, टीकाकरण, सामुदायिक स्वास्थ्य केन्द्रों के विस्तार, लघु वित्त योजना जैसे विविध कार्यक्रमों के माध्यम से नगरीय निर्धनों के स्वास्थ्य संवर्द्धन, परिवार कल्याण एवं आर्थिक स्वावलम्बन के प्रयास किये जा रहे हैं।

भारत में नगरीय विकास की नीति एवं कार्यक्रम विविध अवधियों में संशोधित होते रहे हैं। आरम्भिक अवस्था में नगरीय संरचना के विकास पर बल दिया गया। कालान्तर में नगरीय संरचना के विकास के साथ नगरीय जीवन शैली की गुणवत्ता को समृद्ध करने के प्रयास किये गये।

सन 2005 से जवाहर लाल नेहरू नगरीय पुनर्नवीकरण मिशन सर्वाधिक प्रभावी कार्यक्रम लागू किया गया जिसके माध्यम से भारत के सैकड़ों छोटे-बड़े नगरों को शामिल करते हुए नगरवासियों के जीवन को उन्नत बनाने का अभियान जारी है। नगरीय पुनर्नवीकरण मिशन कार्यक्रम के परिणामस्वरूप अन्य नीतिगत कार्यक्रम भी प्रभावित हुए हैं। मसलन ग्रामीण क्षेत्रों की जल प्रबंधन एवं सिंचाई परियोजनायें क्रमशः नगरों की ओर हस्तान्तरित हो रही हैं। वृहद् संयुक्त विनियोग के जरिये प्राकृतिक स्रोतों (लोहा, बाक्साइड, गैस इत्यादि) के दोहन कार्यक्रमों का विस्तार ग्रामीण क्षेत्रों से नगरों तक हो रहा है। नगरीय पुनर्नवीकरण मिशन कार्यक्रम के परिप्रेक्ष्य में कुछ बिन्दुओं पर गम्भीरतापूर्ण विचार करने की आवश्यकता है जैसे नगरों में वाणिज्यिक संरचनाओं के विस्तार विशेषकर भूमि अधिग्रहण की परियोजनाओं एवं नगरीय जीवन को समृद्ध करने हेतु आर्थिक विनियोग कार्यक्रमों में अन्तर करना होगा। कृषि योग्य भूमि का वाणिज्यिक हितों के लिए अधिग्रहण करने की प्रक्रिया को नियंत्रित करने की आवश्यकता है। इसके अतिरिक्त गांवों में यातायात, संचार एवं अन्य मौलिक संरचनाओं के विस्तार करते हुए उन्हें नगरीय व्यवस्था से समन्वित करना भी समीचीन होगा। नगरीय क्षेत्रों को महज जनसंख्या के घनत्व एवं व्यवसाय के प्रारूपों के आधार पर परिभाषित करने की बजाय ग्रामीण एवं नगरीय क्षेत्रों में वस्तुओं, सेवाओं एवं व्यक्तियों के आर्थिक विनिमय जैसे पहलुओं से भी समन्वित करते हुए पुनर्परिभाषित करने की आवश्यकता है।

11.6 नगरीय विकास से सम्बद्ध समस्याएं

भारत में नगरीय विकास की प्रक्रिया ने जहाँ एक ओर नगरों की भौतिक संरचना एवं जीवन की गुणवत्ता को समृद्ध किया है वहीं दूसरी ओर विविध समस्यायें भी उत्पन्न किया है, मसलन अपराध, मलिन बस्तियों की वृद्धि, अत्यधिक जनसंख्या का संचय, निर्धनता, कूड़े कचरे के निस्तारण की समस्या, इत्यादि।

(क) मलिन बस्तियों में वृद्धि

संयुक्त राष्ट्र की एजेन्सी यू०एन० हैबिटाट ने मलिन बस्ती को नगर की निम्न स्तरीय आवास, गंदगी युक्त, अनौपचारिक रूप से विकसित एवं अस्थायी अवधि वाली बस्ती के रूप में परिभाषित किया है। संयुक्त राष्ट्र के सर्वेक्षण के अनुसार विकासशील देशों में 1990 से 2005 की अवधि में नगरीय मलिन बस्तियों के रिहायशियों की संख्या 47 प्रतिशत से घटकर 37 प्रतिशत हुई है। मोटे तौर पर यह कहा जा सकता है कि मलिन बस्ती वह है जिसमें रहने वाले व्यक्तियों के लिए न सिर्फ शुद्ध पेयजल, शौचालय एवं वैध विद्युत आपूर्ति, मैले के निकास इत्यादि का पर्याप्त अभाव है बल्कि वहाँ का पर्यावरण भी आरोग्यकर नहीं है। भारत में नगरीकरण में वृद्धि के साथ-साथ मलिन बस्तियों की आबादी में भी तीव्र वृद्धि हो रही है।

विगत दो दशकों में मलिन बस्तियों में रहने वालों की संख्या दोगुनी बढ़ी है। 1981 में भारत में मलिन बस्तियों में रहने वालों की संख्या 27.9 मिलियन थी जो 2001 में बढ़कर 40 मिलियन हो गई है। 2001 की जनगणना के अनुसार भारत के 640 नगरों में मलिन बस्तियाँ विद्यमान हैं। नगर में रहने वाला हर चौथा व्यक्ति मलिन बस्ती में रहता है। नेशनल सैम्पल सर्वे आरगाइनजेशन ने 2002 में नगरीय क्षेत्रों में 51688 मलिन बस्तियों की पहचान की थी जिसमें 50.6 प्रतिशत मलिन बस्तियों को सूचित मलिन बस्ती के रूप में घोषित किया गया। 2002 के इस राष्ट्रीय सर्वेक्षण में यह पाया गया कि 84 प्रतिशत मलिन बस्तियों में जल आपूर्ति का प्रमुख श्रोत नल है किन्तु अलग-अलग राज्यों में नल के द्वारा जल आपूर्ति की स्थिति समान नहीं है। मसलन, बिहार की मलिन बस्तियों में नल के माध्यम से जल आपूर्ति लगभग नगण्य है। जबकि छत्तीसगढ़, गुजरात एवं उत्तर प्रदेश में लगभग 35 प्रतिशत मलिन बस्तियों में नल के माध्यम से जल आपूर्ति हो रही है। इसी प्रकार लगभग 44 प्रतिशत गैर सूचित मलिन बस्तियों में पानी एवं मैले के निकास की व्यवस्था नहीं है जबकि केवल 15 प्रतिशत सूचित मलिन बस्तियों में पानी एवं मैले के निकास की व्यवस्था नहीं है। लगभग आधी गैर सूचित मलिन बस्तियों में किसी भी प्रकार का शौचालय उपलब्ध नहीं है जबकि केवल 17 प्रतिशत सूचित मलिन बस्तियों में शौचालय अनुपलब्ध है। विश्व बैंक एवं यू० एन० हैबीटाट का लक्ष्य है मलिन बस्ती विहीन नगरीय विकास करना, जिसे महज मलिन बस्तियों को उखाड़ने की रणनीति की बजाय व्यवस्थित एवं नियोजित नगरीय विकास की रणनीति के जरिये प्राप्त करना अधिक प्रासंगिक होगा।

(ख) अति संचयन

विगत कुछ दशकों में भारतीय नगरों में जनसंख्या वृद्धि एवं दो पहिये, तीन पहिए एवं चार पहिये वाले मोटर वाहनों में अत्यधिक वृद्धि के कारण अति संचयन की समस्या भी ज्वलंत रूप से उभरी है। वाहनों की वृद्धि के कारण यातायात की गति एवं समय प्रभावित हुआ है तथा यातायात जाम होना नगरीय जीवन शैली की आम विशेषता बन गई है। यातायात संचयन के कई नकारात्मक परिणाम हैं जैसे वाहन चालकों एवं सवारियों के समय की बर्बादी, शिक्षालयों, कार्यालयों, व्यावसायिक प्रतिष्ठानों अथवा अन्य स्थानों पर पहुँचने में विलम्ब होना, उत्पादक गतिविधियों का हास, ईंधन की बर्बादी, वायु एवं ध्वनि प्रदूषण में वृद्धि, बारम्बर ब्रेक, गियर बदलने आदि के कारण वाहनों की क्षतिग्रस्तता में वृद्धि, वाहन चालकों के स्वास्थ्य पर दुष्प्रभाव, इत्यादि। विश्व में सर्वाधिक सड़क दुर्घटनाएं भारत में होती हैं। नगरों के विकास प्रारूप में वाहनों की बढ़ती हुई मांग एवं आपूर्ति को ध्यान में रखते हुए यातायात के प्रबन्धन एवं नगर नियोजन को प्राथमिकता देनी होगी। निजी वाहनों की बजाय साईकिल के प्रयोग को बढ़ाने, फ्लाई ओवर पुल निर्मित करने, वाहनों के पार्किंग एवं अन्य ट्रैफिक नियमों को दुरूस्त करने, आदि कार्यक्रमों को यातायात नीति में महत्वपूर्ण बनाना होगा।

(ग) नगरीय निर्धनता

नगरीय विकास की वर्तमान प्रक्रिया ने जहाँ एक ओर नव धनिकों को उत्पन्न किया है वहीं दूसरी ओर निर्धनता को अधिक बढ़ाया है। निर्धनता की समस्या आवश्यक रूप से केवल कुल राष्ट्रीय उत्पाद की ही समस्या नहीं है अपितु वितरण की भी है। नगरीय निर्धनता में होने वाली क्रमिक वृद्धि को रोकने हेतु आर्थिक नियोजन एवं नगरीय विकास नीति को प्रभावी रूप से संशोधित करने तथा प्राथमिकताओं को बदलने की आवश्यकता है जिससे धनी एवं निर्धनों की असमानता को कम किया जा सके। औद्योगिक क्षेत्र में विनियोजन का प्रारूप इस प्रकार विकसित करना होगा जिससे अधिकांश व्यक्तियों को रोजगार प्राप्त हो सके। शहरी विकास परियोजनायों की प्रभावपूर्ण कार्यान्वति के लिए गैर सरकारी संस्थाओं की भागीदारी बढ़ाने की आवश्यकता है। इसके अतिरिक्त औद्योगिक एकाधिकारों की समाप्ति, अनावश्यक सरकारी खर्च / राष्ट्रीय अपव्यय पर नियंत्रण, उद्यमों के लोकतांत्रिक प्रबन्धन जैसे विविध प्रयास नगरीय निर्धनता को कम करने में सहायक सिद्ध होंगे।

(घ) कूड़ा निस्तारण एवं प्रबंधन

भारत के नगरों में सड़कों पर जमा कूड़े-कचरे, नालियों से मलमूत्र के उभड़ने, अस्पतालों एवं अन्य सार्वजनिक स्थलों के आसपास बिखरी हुई गंदगी जैसे दृश्य सहजता से दिखाई पड़ते हैं। भारत में प्रतिदिन प्रति व्यक्ति 0.2 से लेकर 0.6 किलोग्राम तक कूड़ा निस्तारित करता है। भारतीय परिप्रेक्ष्य में कूड़ा निस्तारण एक समस्या इसलिए बन गया है क्योंकि व्यवहार में कूड़े को एक स्थल से उठाकर दूसरे स्थल पर फेंक देने की वर्तमान प्रणाली कूड़े का व्यवस्थित निष्पादन नहीं कर पाती। उर्जा अनुसंधान संस्थान के आकलन के अनुसार सन् 2047 तक भारत में नगरीय कूड़ों के निस्तारण हेतु 1400 स्क्वायर किलोमीटर स्थल की आवश्यकता पड़ेगी। खुले गड्ढों में कूड़ा निस्तारित करने के कारण भूमि प्रदूषण तथा वायु प्रदूषण एवं नदियों में कूड़ा-कचरा तथा मल-मूत्र बहाने के कारण जल प्रदूषण की समस्या उत्पन्न होती है। पोलिथीन एंव प्लास्टिक जैसे अ-क्षरणीय कूड़े के परिणामस्वरूप मृदा एवं जल जहरीली होती है तथा टाक्सिक की वृद्धि होती है।

1. नगरीय स्थानीय प्रशासन को निम्नलिखित में से किस संवैधानिक संशोधन के द्वारा जनप्रतिनिधित्वपूर्ण बनाया गया है?

अ. 72 वाँ संवैधानिक संशोधन ब. 73 वाँ संवैधानिक संशोधन

स. 74 वाँ संवैधानिक संशोधन द. 86 वाँ संवैधानिक संशोधन

2. जवाहर लाल नेहरू नगरीय पुनर्नवीकरण मिशन कार्यक्रम कब लागू किया गया?

अ. 1995 में ब. 2001 में स. 2003 में द. 2005 में

3. म्यूनिसिपल कूड़ा प्रबंधन एवं निस्तारण नियम कब बनाया गया?

अ. 2000 में ब. 2005 में स. 2007 में द. 2009 में

4. नगरीयता को एक जीवन शैली के रूप में किसने विश्लेषित किया?

अ. आशीष बोस व. लूईस वर्थ स. मोहन राकेश द. सोरोकिन

11.7. समीक्षात्मक मूल्यांकन

नगरीकरण आर्थिक वृद्धि की प्रक्रिया का एक अभिन्न अंग है। विश्व के अन्य देशों की भाँति भारत के नगरों का भी देश की अर्थव्यवस्था में महत्वपूर्ण योगदान है। भारत में नगरीय विकास की विविध समस्यायें हैं- दुर्बल स्थानीय स्वशासन, कमजोर नगरीय अर्थव्यवस्था, अनिर्दिष्ट नगर नियोजन, आधारभूत नगरीय सुविधाओं जैसे जल एवं विद्युत आपूर्ति का अभाव, पर्यावरण का तीव्र क्षरण, इत्यादि।

प्रमुख नगरीय चुनौतियाँ

(क) नियोजन

- अधिकांश नगरीय शासन में आधुनिक नियोजन एवं स्वरूप का अभाव है।
- क्षेत्रीय विविधताएँ सक्षम नियोजन एवं भूमि के उपयोग को बाधित करती है।
- कठोर मास्टर प्लान एवं प्रतिबंधित भूकटिबन्ध अधिनियमों के कारण नगरों में बढ़ती हुई आवश्यकताओं के अनुरूप भवन निर्माण एवं शहरी क्षमताओं के विस्तार हेतु भूमि की उपलब्धि का अभाव है।

(ख) आवास

- भवन निर्माण के नियमों एवं प्रतिबंधों के कारण नगरों में भवन की उपलब्धि सीमित है तथा नगरीय भू सम्पत्ति मूल्य बढ़ा है।
- प्राचीन किरायेदारी नियंत्रण अधिनियमों के कारण नगरों में किराये पर भवन की उपलब्धि घटी है तथा नगरीय निर्धनों के समक्ष आवासीय विकल्प सीमित हो गये हैं।
- अल्प आय वाले व्यक्तियों को घर खरीदने, निर्माण करने अथवा पुनरूद्धार करने हेतु लघु वित्त एवं रेहन वित्तीय उपलब्धि का अभाव है।
- नीति, नियोजन एवं नियंत्रण की अपूर्णताओं के कारण मलिन बस्तियों का विस्तार हुआ है।
- नगरीय स्थानीय स्वशासन एवं सेवा प्रदाताओं की दुर्बल अर्थव्यवस्था के कारण नये क्षेत्रों में भवन निर्माण की संरचना का विस्तार नहीं हो पा रहा है।

(ग) सेवा प्रतिपादन

- नगरीय शासन द्वारा प्रदत्त अधिकांश सेवाओं में स्पष्ट लेखा जोखा का अभाव है।
- संपोषित वित्तीय एवं पर्यावरणीय सेवाएं प्रदान करने की वजाय भौतिक संरचनाओं को बढ़ाने पर बल दिये जाने की प्रवृत्ति है।
- सेवा प्रदाताएँ क्रियान्वयन एवं रख-रखाव सम्बन्धी व्यय वहन करने में अक्षम हैं तथा वित्तीय सहायता हेतु सरकार पर आश्रित हैं।

- टैरिफ निर्धारण, सहायता का निर्णय एवं सेवा की गुणवत्ता पर बल देने जैसी स्वतंत्र नियामक सत्ता का सामान्यतया अभाव है।

(घ) मौलिक संरचना

- अधिकांश नगरीय अभिकरणों में नगरीय संरचना के पुनर्नवीकरण हेतु वित्त उत्पादन का अभाव है।
- नगरीय यातायात नीति को पूर्णतावादी बनाने की आवश्यकता है जिसमें सिर्फ गाड़ियों के संचालन के अतिरिक्त बहुसंख्यक पैदल चलने वालों एवं साईकिल सवारों की आवश्यकताओं को भी पूरा करने का लक्ष्य शामिल है।

(ड) पर्यावरण संरक्षण

- नगरों में बढ़ते हुए प्रदूषण के कारण नगरीय व्यक्तियों का स्वास्थ्य, उत्पादकता एवं जीवन की गुणवत्ता का हास हुआ है।
- नगरों में उपभोगवादी संस्कृति के प्रसार के परिणामस्वरूप परम्परागत सामाजिक एवं सांस्कृतिक मानदंडों एवं मूल्यों का क्षरण हुआ है।
- दूसरों से आगे बढ़ने की प्रतिस्पर्धा ने नगरीय जीवन शैली में व्यक्ति निष्ठता को बढ़ाया है तथा पारस्परिक समन्वय एवं समरसता को घटाया है।

11.8 सारांश

इन नगरीय समस्याओं के समाधान हेतु नगरीय योजनाओं को सुधारने, नगरीय केन्द्रों का योजनाबद्ध विकास करने, रोजगार के अवसरों का सृजन करने, पिछड़े क्षेत्रों में उद्योगों को प्रोत्साहित करने, नगरपालिकाओं को अपने वित्तीय संसाधन का विकल्प बढ़ाने, व्यावहारिक आवासीय नीति बनाने तथा संरचनात्मक विकेन्द्रीकरण करने जैसे विविध उपाय कियान्वित करने की आवश्यकता है।

11.9 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1. स 2. द 3. अ 4. ब

11.10 निबंधात्मक प्रश्न

1. नगर, नगरीयता एवं नगरीकरण की अवधारणा का विश्लेषण कीजिए।

2. भारत में नगर नियोजन की विशेषताएं बताइये।

3. नगरीय सामाजिक समूहों के कल्याण के लिए प्रयासों का मूल्यांकन कीजिए।

4. नगरीय विकास से उत्पन्न विविध समस्याओं की विवेचना कीजिए।

5. नगरीय समस्याओं के समाधान के उपाय बताइये।

11.11 संदर्भ सूची

Andrew Downie (2008) "The World's Worst Traffic Jams" (21.04.2008) Time Retrieved 2008-06-20.

Bose, Ashish (1979) India's Urbanization 1901-2001, New Delhi.

Rakesh, Mohan (1996) "Urbanization in India: Patterns and Emerging Policy Issues" in Guglar, Joseph (ed) The Urban Transformation of the Developing World, Oxford University Press, Inc, New York.

Sorokin and Zimmerman (1962) Principles of Rural Urban Society.

Wirth, Louis (1938) " Urbanism as a Way of Life", American Journal of Sociology, vol. 44.

इकाई 12 जनजातीय विकास : नीतियां, भारत में जनजातीय विकास हेतु संवैधानिक प्रयास, उत्तराखण्ड की जनजातियाँ

इकाई की रूपरेखा

12.1 परिचय

12.2 उद्देश्य

12.3 जनजातीय विकास की अवधारणा

12.4 जनजातीय विकास के उपागम एवं नीतियाँ

12.5 उत्तराखण्ड की जनजातियाँ

12.6 भारत में जनजातीय विकास हेतु संवैधानिक प्रयास

12.7 भारत में जनजातीय विकास के विविध कार्यक्रम

12.8 जनजातीय विकास के विभिन्न मुद्दे एवं चुनौतियां

12.9 सारांश

12.10 अभ्यास प्रश्न

12.11 संदर्भ ग्रन्थ सूची

12.1 परिचय

जनजातीय विकास का आशय है जनजातीय आबादी की अधिकारहीनता की प्रस्थिति को सुधारते हुए उनके जीवन में गुणात्मक उन्नति करना। भारत का संविधान अनुसूचित जनजातियों को वैधानिक संरक्षण एवं सुरक्षा प्रदान करता है ताकि उनकी सामाजिक निर्योग्यताएं हटाई जा सकें तथा उनके विविध अधिकारों को बढ़ावा मिल सके। संवैधानिक प्राविधानों के अतिरिक्त जनजातियों के सामाजिक–आर्थिक उन्नयन हेतु विविध कार्यक्रम क्रियान्वित किये गये हैं। ये समस्त प्रयास जनजातीय विकास के प्रयास के रूप में जाने जाते हैं। इस आधार पर हम कह सकते हैं कि जनजातीय विकास द्विकोण उपागम पर आधारित है: (अ) जनजातीय हितों की कानूनी एवं प्रशासनिक सहायता द्वारा सुरक्षा एवं (ब) विकास की गतिविधियों को प्रोत्साहित करना जिससे कि जनजातियों का जीवन स्तर उँचा उठ सके।

12.2 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के उपरान्त हम निम्नलिखित तथ्यों से अवगत हो पायेंगे-

- जनजातीय विकास से हमारा क्या आशय है?
- भारत में जनजातीय विकास के विविध अभिगम एवं नीतियाँ क्या हैं?

- उत्तराखण्ड में किन-किन जनजातियों का प्रतिनिधित्व है तथा उनका सामाजिक–आर्थिक एवं सांस्कृतिक जनजीवन कैसा है?
- भारत में जानजातीय हितों के संरक्षण का संवैधानिक प्रारूप क्या है?
- भारत में जनजातियों के विकास हेतु कौन-कौन से कार्यक्रम क्रियान्वित किये गये हैं तथा उनके क्या परिणाम निकले हैं?
- जनजातीय विकास की प्रमुख समस्यायें एवं चुनौतियाँ कौन-कौन सी हैं?

12.3 जनजातीय विकास की अवधारणा

जनजातीय आबादी कुल भारतीय जनसंख्या की लगभग आठ प्रतिशत का प्रतिनिधित्व करती है। वैसे तो आदिम जनजातियाँ पूरे भारत के विविध भौगोलिक क्षेत्रों में बिखरी हुई हैं किन्तु उनकी आबादी का 70% हिस्सा भारत के सात राज्यों- छत्तीसगढ़ महाराष्ट्र, उड़ीसा, झारखण्ड, आंध्र प्रदेश, गुजरात एवं उत्तरांचल में अवस्थित है। सामाजिक-आर्थिक विकास के विभिन्न सूचक यह प्रदर्शित करते हैं कि भारत की औसत गैर जनजातीय आबादी की अपेक्षा जनजातियों का विकास बहुत कम हुआ है। मसलन राष्ट्रीय साक्षरता का औसत 52% है जबकि जनजातियों में साक्षरता का औसत 29.06% है। 1993-43 के योजना आयोग के अनुसार ग्रामीण क्षेत्रों में 51.92% एवं शहरी क्षेत्रों में 41.4% अनुसूचित जनजातियाँ गरीबी रेखा से नीचे की जिन्दगी गुजार रही हैं।

के.एस.सिंह के नेतृत्व में भारत में मानवशास्त्रीय सर्वेक्षण द्वारा भारतीय जनों के अध्ययन में बताया गया कि भारत के कुल 2800 समुदायों में कुल 461 अनुसूचित जनजातियाँ हैं। जनजातियों को प्रशासनिक सूची में अनुसूचित करने की प्रक्रिया में कई विसंगति भी परिलक्षित होती है। उदाहरणार्थ 'गुजर' जम्मू एवं काश्मीर राज्य में अनुसूचित जनजाति में शामिल नहीं किया गया है जबकि पड़ोसी राज्य हिमाचल प्रदेश में अनुसूचित श्रेणी में रखा गया है।

12.4 जनजातीय विकास के उपागम एवं नीतियाँ

ऐतिहासिक दृष्टि से भारत में जनजातीय विकास की विविध अवस्थाओं के अन्तर्गत अलग–अलग दृष्टिकोण अपनाये गये एवं तद्रुप नीतियों एवं कार्यक्रमों का क्रियान्वयन भी किया गया। स्वतंत्रता से पूर्व भारत में जनजातीय विकास के दो प्रमुख उपागम (दृष्टिकोण) थेः पृथक्करण एवं सात्मीकरण । औपनिवेशक काल में जनजातीय विकास के प्रति ब्रिटिश शासन का आरम्भिक दृष्टिकोण पृथक्करण की नीति पर आधारित था। जनजातियों को समाज की मुख्य धारा से पृथक रखने के पीछे दो मुख्य तर्क थे। पहला यह कि जनजातियों को अलग-अलग रखकर शासन करना आसान था। ब्रिटिश शासन के विरुद्ध जन असंतोष कहीं जन आन्दोलन न बन जाय तथा जनजातीय आबादी उस जन आन्दोलन में शामिल होकर उसे सशक्त न बना सके इसलिए उन्हें सामान्य जन से पृथक रखना ही श्रेयष्कर होगा। विभिन्न अवसरों पर विभिन्न क्षेत्रों में जनजातियों के द्वारा किये जाने वाले प्रतिरोध एवं विद्रोह के आधार पर वे जनजातीय शक्ति क्षमता से परिचित थे, अतः वे इन्हें पृथक रखना चाहते थे। पृथक्करण के पीछे दूसरा तर्क यह है कि जनजातियों को पृथक रखकर उन्हें बाहरी हस्तक्षेप से बचाया जा सकता है ताकि उनकी परम्परा, सहज जीवन शैली, उनकी विशिष्टता एवं अस्मिता को सुरक्षित रखा जा सके। पृथक्करण की नीति के अन्तर्गत 1870 में भारत सरकार अधिनियम, 1874 में अनुसूचित जिला अधिनियम, 1919 में भारत सरकार अधिनियम, 1935 में भारत सरकार

अधिनियम के अन्तर्गत जनजातीय बहुल कुछ क्षेत्रों को पिछड़े क्षेत्र, अनुसूचित भू–भाग, स्वायत्त क्षेत्र के रुप में पृथक किया गया। वेरियर एल्विन ने इस पृथक्करण की नीति को बौद्धिक आधार प्रदान किया। उन्होंने यह मत व्यक्त किया कि जनजातियों के राष्ट्रीय उत्थान के रुप में उनको बाहरी दुनिया से पृथक रखकर नियंत्रित करना श्रेयष्कर होगा।

जनजातीय पृथक्करण की ब्रिटिश नीति के प्रति सामान्य जनों में संदेह पनपने लगा। एल्विन जैसे मानवशास्त्री भी पृथक्करण की नीति के पक्षधर थे, इसलिए मानवशास्त्रियों के विरुद्ध भी सुगबुगाहट होने लगी। जनमत में यह धारणा प्रबल होने लगी कि पृथक्करण की नीति के आधार पर ब्रिटिश शासन अपना आधिपत्य स्थापित करने की साजिश कर रहा है तथा मानवशास्त्रीय जनजातीय क्षेत्र को अजायबघर बनाना चाहते हैं जहाँ वे अपना अध्ययन व अनुसंधान वगैर हस्तक्षेप के करते रहें। इस परिप्रेक्ष्य में जनजातीय विकास के दूसरे उपागम– सात्मीकरण की नीति को स्वीकारने एवं क्रियान्वित करने का आधार निर्मित हुआ।

<u>सात्मीकरण की नीति</u> की मूल मान्यता यह थी कि जनजातियों एवं जनजातीय क्षेत्रों को पृथक रखना व्यावहारिक दृष्टि से न तो वांछीनय है और न ही सम्भव, इसलिए उन्हें समाज की मुख्य धारा में आत्मसात कर लेना चाहिए। घूरिये ने अपने जनजातीय अध्ययन में पृथक्करण की नीति की आलोचना करते हुए कहा कि लगभग सभी जनजातीय समूह किसी न किसी रुप में मुख्य हिन्दू संस्कृति के सम्पर्क में आ गये हैं केवल कुछ ही जनजातियाँ इस सम्पर्क से अछूती हैं। अतः इनका भविष्य पृथकता की बजाय वृहद समाज में इनके सात्मीकरण की प्रक्रिया पर निर्भर करेगा तथा इनके पिछड़ेपन को पृथकता के आधार पर दूर नहीं किया जा सकेगा।

सात्मीकरण की प्रक्रिया के अन्तर्गत स्वतंत्रतापूर्व एवं स्वातंत्र्योत्तर भारत में विविध प्रयास हुए। इस प्रयास में विविध समाज सुधारकों- महात्मा गांधी, ए.वी. ठक्कर, आदि ने जनजातीय कल्याण के विविध प्रयास किये। समाजसेवी संस्थाओं विशेषकर ईसाई मिशनरी के द्वारा जनजातीय क्षेत्रों में शिक्षा, चिकित्सा, सामाजिक जागरुकता, आदि की दिशा में उल्लेखनीय कार्य किये गये। किन्तु जनजातियों के धर्मान्तरण की प्रक्रिया एवं अन्य आधारों पर ईसाई धर्मावलम्बी जनजातियों एवं गैर ईसाई जनजातीय समूहों पर सात्मीकरण का अलग-अलग परिणाम उत्पन्न हुआ जिसके कारण जनजातीय समूहों में विभेदीकरण पनपा। इसके अतिरिक्त सात्मीकरण की प्रक्रिया ने गैर आदिवासी समूहों- साहूकार, ठेकेदार, जमींदार, बिचौलिया, आदि को जनजातियों के शोषण का अवसर दिया। इन आधारों पर सात्मीकरण की प्रकृति को ऊपर से लादी गयी आरोपित प्रक्रिया के रुप में विश्लेषित करते हुए इसकी आलोचना की गयी।

इन आलोचनाओं के परिप्रेक्ष्य में कालान्तर में भारत में जनजातीय विकास का तीसरा दृष्टिकोण उभरा जिसे समन्वय की नीति की संज्ञा दी गयी। समन्वयवादी नीति - के अन्तर्गत जहाँ एक ओर जनजातीय समूह एवं वृहद गैर जनजातीय समूह के बीच रचनात्मक सामंजस्य के आधार पर उनके विकास का प्रयास किया गया है वहीं दूसरी ओर जनजातीय विशिष्टता एवं अस्मिता को सँजोये रखने का आग्रह भी शामिल है। इस दृष्टिकोण से जनजातीय संस्कृति एवं मुख्य धारा की संस्कृति के बीच पारस्परिक लेन-देन एवं एक दूसरे के सम्मान को बल दिया गया है। समन्वयवादी दृष्टिकोण पर आधारित जनजातीय विकास की वर्तमान नीति को अतीत में अपनाई गयी पृथक्करण एवं सात्मीकरण की नीति की अपेक्षा श्रेयष्कर माना गया है किन्तु इसकी सफलता भविष्य में इस तथ्य पर निर्भर करेगी कि जनजातीय एवं गैर जनजातीय समुदाय दोनों एक दूसरे के प्रति कितना अनुकूल व्यवहार अपनाते हैं।

12.5 उत्तराखण्ड की जनजातियाँ

उत्तराखण्ड नृजातीय विविधताओं से भरा क्षेत्र है जो भौगोलिक दृष्टि से दो प्रमुख क्षेत्रों गढ़वाल एवं कुमायूँ में बँटा हुआ है। उत्तराखण्ड के निवासियों को सामान्यतः पहाड़ी अर्थात् पहाड़ों पर रहने वाले की संज्ञा दी गई है। उत्तराखण्ड में जाढ, मारचा, टोलचा, शौका, बुक्सा, थारू, जौनसारी, मोटिया, राजी तथा गुज्जर नृजातीय समूह रहते हैं। मानवशास्त्रीय दृष्टि से उत्तराखण्ड में प्रोटो आस्टोलायड, मंगोलायड, नार्डिक एवं द्रविडियन प्रजाति के लोग पाये जाते हैं जो विभिन्न जनजातियों के रूप में अपनी अस्मिता बनाये हुए हैं।

यह माना जाता है कि भारत की कुल जनजातीय आबादी में उत्तराखण्ड की जनजातियाँ महज 0.16 प्रतिशत का ही प्रतिनिधित्व करती हैं। मोटे तौर पर उत्तराखण्ड में पाँच जनजातियाँ (जौनसारी, थारू, मोटिया, बुक्सा एवं राजी) विद्यमान हैं जिसमें ग्रामीण क्षेत्रों में 94.5 प्रतिशत तथा शेष 5.5 प्रतिशत नगरीय क्षेत्रों में रहती हैं। ऐतिहासिक साक्ष्य यह प्रदर्शित करते हैं कि उत्तराखण्ड की ये जनजातियाँ वस्तुतः उत्तर भारत के इस क्षेत्र की आदिवासी आबादी रही है। अतीत में ये दूरस्थ पहाड़ी एवं जंगलों क्षेत्रों तक ही सीमित थी किन्तु कालान्तर में इनका विस्तार होता गया। इन सभी जनजातियों की विशिष्ट परम्परायें, प्रथाएँ, संस्कृति अभी भी सुरक्षित हैं जिनके द्वारा उनकी अस्मिता एवं नृजातीयता निर्धारित होती है।

(अ) जौनसारी जनजाति : जौनसार बवार जनसमूह, जो देहरादून के ऊपरी हिस्से एवं उत्तरकाशी में बसे हुए हैं, वे अपनी वेश भूषा एवं विशिष्ट रीतिरिवाजों, परम्पराओं, प्रथाओं एवं संस्कृति में अपने पड़ोसी गढ़वाली समूह से पृथक हैं। छोटे-छोटे समूहों के संग्रह के रूप में जौनसारी प्रमुखतः स्तरीकृत समूह हैं जिनमें कोल्टास प्रमुख सेवा करने वाली जाति है तथा खस ब्राह्मण एवं राजपूत मुख्य रूप से कृषक हैं। जौनसारी एक बहुपति विवाही समूह है यद्यपि बहुपति विवाह की प्रथा अब क्रमशः कम हुआ है। इस समूह में विवाह एवं यौन सम्बन्ध के नियम अपेक्षाकृत उदार हैं तथा स्त्रियों को जीवनसाथी के चयन करने एवं तलाक देने की अधिक स्वतंत्रता है। जौनसारी स्त्रियों की वेशभूषा एवं उत्सवों में विविध रंग परिलक्षित होता है। जौनसारी जनजाति उत्तराखण्ड की सबसे अधिक आबादी वाली जनजाति है जो कुल जनसंख्या के 38.78 प्रतिशत का प्रतिनिधित्व करती है। इनकी आबादी उत्तराखण्ड के सभी हिस्सों में 365 गांवों में फैली हुई है।

(ब) भोटिया : भोटिया परम्परागत रूप से तिब्बत की सीमा पर उँची हिमालय पर्वतमाला की निवासी जनजाति है जो 291 गांवों तक फैली हुई है। भोटिया की ब्युत्पत्ति तिब्बती भाषा के बो शब्द से हुई है जो तिब्बत वासियों के लिए प्रयुक्त की जाती है। शरद ऋतु में भोटिया जनसमूह हिमालय के दक्षिणी भांग में प्रवास कर जाते हैं। यद्यपि हाल के दशकों में वे हिमालय के मध्य क्षेत्र में स्थायी रूप से बस गये हैं। भोटिया जनजाति मुख्यतः तीन समूहों में बँटी है- उत्तरकाशी के जाढ, चमौली के मारचा (जो पहले प्रमुखतः व्यापारी थे) तथा पिथौरागढ़ (धारचुला के निकट) के शौका। सांस्कृतिक भिन्नताओं के बावजूद तीनों भोटिया समूह की शारीरिक बनावट, तिब्बती मंगोलायड प्रजाति की समान विशेषता के रूप में परिलक्षित होती है। इनमें जाढ समूह बौद्ध धर्मावलम्बी है जबकि शौका जनसमूह की अपनी विशिष्ट संस्कृति है जो हिन्दू–बौद्ध आस्था पर आधारित हे। ये दोनों समूह अपनी धार्मिक क्रियाओं के परिचालन में लामा पर आश्रित है। मारचा / टोलचा जनसमूह प्रायः हिन्दू धर्मावलम्बी हैं जो अपने गढ़वाली पड़ोसियों राजपूत वंशजों के सहभागी हैं। भोटिया जनजाति में गढ़वालियों एवं कुमायूँ वासियों की भाँति जाति व्यवस्था के कुछ पहलू प्रदर्शित होते हैं तथा वे विभिन्न सेवाओं के लिए निम्न जातियों प्रमुखतः डोम पर आश्रित हैं।

(स) थारू जनजाति : थारू प्रजाति नेपाल की सीमा के पूर्वी तराई क्षेत्र की मूल निवासी है जो 141 गांवों में फैली हुई है। यह जनजाति अनेक उपसमूहों में बँटी हुई है जो नैनीताल के उधम सिंह नगर में बसी हुई है। यह कृषक समूह है जिनके परिवार का आकार बड़ा है। परम्परागत रूप से एक ही आवास में सभी भाइयों का आवास है। अन्य पर्वतवासियों की भाँति थारू भी प्राचीन आस्थावान है तथा शमनवाद में विश्वास करते हैं यद्यपि हिन्दू देवी देवताओं में भी उनकी आस्था परिलक्षित होती है। पारिवारिक मामलों में थारू स्त्रियों का वर्चस्व है तथा चित्तौड़ की राजपूत रानियों के वंशज के रूप में उन्हें सामाजिक प्रतिष्ठा मिली हुई है।

थारू जनजाति की अर्थव्यवस्था पहले शिकार करने, जंगलों से फल, कन्दमूल, शहद एवं खाने योग्य अन्य पदार्थों के संकलन करने से सम्बन्धित थी। वर्तमान में इस जनजाति की आजीविका का मुख्य स्रोत कृषि एवं मछलियों का शिकार है। थारू स्त्रियाँ दस्तकारी के लिये प्रसिद्ध हैं। इनके द्वारा बनायी गई टोकरियाँ, बर्तन, रस्सियाँ, आदि अत्यधिक कलात्मक होती हैं।

थारू सामाजिक संरचना में परम्परागत रूप से स्त्रियों की स्थिति पुरूषों से उँची रही है लेकिन व्यवस्था के दृष्टिकोण से यह एक पितृसत्तात्मक जनजाति है। सम्पत्ति का उत्तराधिकार पिता से पुत्र को प्राप्त होता है किन्तु व्यावहारिक रूप से परिवार की आय तथा उसके उपयोग पर स्त्रियों का अधिकार पुरूषों से अधिक है। परम्परागत रूप से थारू देवी की उपासक है लेकिन देवी के रूप में भुइया की पूजा और उपासना का विशेष महत्व है। थारूओं का प्रमुख त्यौहार चढ़ाई है जो वर्ष में दो बार चैत और बैशाख में गाँव के बाहर स्थापित देवी को केन्द्र मानकर मनाया जाता है। यह सच है कि आज वाह्य समूहों से सम्पर्क बढ़ने के कारण थारू धर्म एवं संस्कृति का हिन्दूकरण होता जा रहा है लेकिन आन्तरिक अंचलों में बसे हुए गाँवों में आज भी परम्परागत संस्कृति के तत्व प्रभावपूर्ण बने हुए हैं।

(द) बुक्सा जनजाति : बुक्सा जनजाति उत्तराखण्ड के पूर्वी तराई क्षेत्रों नैनिताल के पश्चिमी छोर एंव उधम सिंह नगर के तराई क्षेत्र में हुई है। बुक्सा जनजाति अपना उद्गम राजपूत वंशज के रूप में मानते हैं। यद्यपि विभिन्न कालक्रमों में उनकी विभिन्न जातियों का विलय हो गया है तथापि वर्तमान में उनके परिवारों में गोत्र वंश परम्परा परिलक्षित होती है। बुक्सा जनजाति में आज 46 गोत्र पाये जाते हैं जो 15 गोत्र समूहों में संगठित है। इन गोत्रों का सम्बन्ध किसी वंश परम्परा से न होकर व्यवसाय, क्षेत्र तथा गांव पर आधारित है। बुक्सा जनजाति का आर्थिक संगठन कृषि, पशुपालन, दस्तकारी, मछलियों के शिकार जैसी मिश्रित अर्थव्यवस्था पर आधारित है। 1950 एवं 1960 के दशक में अन्य राज्यों से प्रवासियों के आगमन के परिणामस्वरूप बुक्सा जनसमूह का परम्परागत भू स्वामित्व कम हुआ है तथा उनमें से अधिकांश इन प्रवासी भूस्वासियों के कृषक मजदूर बन गये हैं। बुक्सा हिन्दू देवी देवताओं के उपासक हैं।

(इ) राजी जनजाति : राजी जंगलों में रहने वाली अल्पसंख्यक जनजाति है जो वनरावत के रूप में भी जानी जाती है। वन विभाग द्वारा लागू प्रतिबन्धों के पूर्व तक ये लोग स्थानान्तरित खेती करते रहे हैं। उनकी कृषि कभी भी पूर्णतः विकसित नहीं थी तथा उनका भरण पोषण खाद्य जड़ों तथा फलों जैसे वन्य उत्पादों के उपयोग एवं लकड़ी के उपकरणों की शिल्पकारी पर आधारित था। राजी जनजाति की धार्मिक आस्था विशिष्ट है जो उन्हें अन्य जनजातियों से पृथक करती है। उनके अपने इष्ट देवता हैं जिनमें कुछ हिन्दू देवी देवता भी शामिल हैं। राजी लोग खुले आकाश में वेदी (पूजा का उँचा स्थान) का निर्माण करते हैं तथा वृक्षों के आसपास कपड़े का पताका बनाकर पूजा अर्चना करते हैं। इनकी विवाह की रीति भी अत्यन्त सरल है जिसमें किसी ब्राह्मण अथवा पुजारी की आवश्यकता नहीं पड़ती।

वर्तमान में जनसंचार के विकास के कारण उनका सम्पर्क बाह्य समूहों से बढ़ा है तथा अपने जीवन मूल्यों के लिए उन्हें संघर्षशील बनना पड़ा है। नये वन अधिनियमों ने उनका जीवन दुरूह बनाया है। वे लकड़ी के उपकरणों के व्यापार के जरिये जीविकोपार्जन करते हैं। यह मातृ वंशीय जनजाति है जिसमें महिला को प्रमुखता मिली हुई है।

12.6 भारत में जनजातीय विकास हेतु संवैधानिक प्रयास

भारत के संविधान की धारा 46 में राज्य के नीति निर्देशक तत्वों में यह स्पष्ट रूप से उल्लेख किया गया कि राज्य कमजोर समूहों, विशेषकर अनुसूचित जातियों एवं जनजातियों के शैक्षणिक एवं आर्थिक हितों को विशेष रुप से ध्यान रखेगा एवं उन्हें सामाजिक अन्याय एवं सभी प्रकार के शोषण से संरक्षण प्रदान करेगा। धारा 146 के अन्तर्गत जनजातीय हितों की देखभाल हेतु कुछ राज्यों में पृथक मंत्रियों की नियुक्ति का प्राविधान बनाया गया। धारा 244 के अन्तर्गत अनुसूचित एवं जनजातीय क्षेत्रों के प्रशासन एवं धारा 275 के अन्तर्गत केन्द्र द्वारा कुछ राज्यों को विशेष आर्थिक अनुदान का प्राविधान बनया गया। धारा 330ए 332 एवं 334 के माध्यम से अनुसूचित जनजातियों के लोक सभा व विधान सभा में प्रतिनिधित्व हेतु विशेष आरक्षण की व्यवस्था की गयी। धारा 335 के आधार पर उन्हें सरकारी सेवाओं एवं पदों पर आरक्षण दिया गया है। धारा 339 के माध्यम से अनुसूचित जनजातीय क्षेत्रों एवं 342 के अन्तर्गत यह प्राविधान बनाया गया कि सम्बद्ध राज्य के राज्यपाल से सलाह लेकर राष्ट्रपति किसी विशेष क्षेत्र को अनुसूचित श्रेणी में शामिल कर विशेष कल्याणकारी सुविधा प्रदान कर सकते हैं। धारा 275 के माध्यम से जनजातीय समूहों के कल्याण एवं विकास हेतु आर्थिक अनुदान की सुरक्षा प्रदान की गयी।

इन संवैधानिक प्राविधानों के अतिरिक्त विविध संवैधानिक आयोग एवं समितियों का गठन किया गया जिसने जनजातीय समस्या एवं विकास के विविध पक्षों पर अपना प्रतिवेदन प्रस्तुत किया। 1959-60 में वेरियर एल्विन के नेतृत्व में विशेष बहुद्देशीय जनजातीय प्रखण्ड समिति, यू.एन. ढेबर के नेतृत्व में अनुसूचित क्षेत्र एवं अनुसूचित जनजाति आयोग (1960-61), हरि सिंह के नेतृत्व में जंगली क्षेत्रो में जनजातीय अर्थव्यवस्था समिति (1965-67) की स्थापना की गयी। पी.शीलू आओ के नेतृत्व में 1966-69 की अवधि में एक अध्ययन दल ने जनजातीय विकास कार्यक्रमों की रुपरेखा प्रस्तुत किया। 1950 की अवधि से ही अनुसूचित जाति एवं अनुसूचित जनजाति के कमिश्नर प्रतिवर्ष संसद में अपनी रिपोर्ट प्रस्तुत करते आ रहे हैं जिसे सम्बद्ध संसदीय समिति द्वारा अवलोकन एवं आकलन करके तद्रुप जनजातीय विकास कार्यक्रमों का क्रियान्वयन किया जाता रहा है।

12.7 भारत में जनजातीय विकास के विविध कार्यक्रम

जनजातीय विकास कार्यक्रम की दिशा में स्वतंत्रता के उपरान्त पहला महत्वपूर्ण प्रयास था जनजातीय विकास प्रखण्ड की स्थापना करना। अक्टूबर 1952 में सामुदायिक विकास कार्यक्रम एवं राष्ट्रीय विस्तार सेवा कार्यक्रम के क्रियान्वयन के उपरान्त इसी श्रृंखला में जनजातीय क्षेत्रों के लिए 1954 में बहुद्देशीय जनजातीय विकास प्रखण्ड की स्थापना की गयी। किन्तु इन प्रखण्डों द्वारा जनजातीय विकास कार्यक्रमों का प्रभावपूर्ण क्रियान्वयन नहीं किया जा सका। ढेबर आयोग की रिपोर्ट में इनके क्रियान्वयन के प्रति असंतोष व्यक्त किया गया।

जनजातीय विकास को तीव्र करने हेतु पाँचवीं योजना के अन्तर्गत 1978 में भारत सरकार ने जनजातीय उपयोजना रणनीति बनाई। इसके दो प्रमुख उद्देश्य थेः **(अ)** जनजातियों को अन्य गैर जनजातीय समूहों के बराबर लाना तथा **(ब)** उन्हें विभिन्न स्वार्थ समूहों से सुरक्षित रखना। जनजातीय क्षेत्र विकास योजना को दो भागों में बाँटा गयाः **(क)**

जनजातीय बहुल क्षेत्र तथा **(ख)** बिखरा हुआ जनजातीय क्षेत्र। बहुल जनजातीय आबादी वाले क्षेत्रों में भौतिक एवं सामुदायिक विकास के विशिष्ट कार्यक्रम चलाये गये जबकि बिखरी हुई जनजातीय आबादी वाले क्षेत्रों में अन्य सभी गैर जनजातीय समुदायों के साथ जनजातीय समूहों के विकास का समन्वित प्रयास किया गया।

1975 में राष्ट्रपति के आध्यादेश के माध्यम से जनजातियों को ऋणों की दासता एवं ऋणग्रस्तता के दुष्चक से मुक्त करने का प्रयास किया गया। 50 प्रतिशत से अधिक जनजातीय आबादी वाले क्षेत्रों में प्रखण्ड स्तर पर 194 समन्वित जनजातीय विकास परियोजनाओं को क्रियान्वित किया गया। 10000 अथवा 50 प्रतिशत से अधिक जनजातीय आबादी वाले ग्राम समूहों मे संशोधित क्षेत्रीय विकास दृष्टिकोण केन्द्रों की स्थापना किये जा चुके हैं। जनजातीय उपयोजना के तहत जनजातीय कल्याण के विविध पहलुओं- कृषि, बागवानी, पशुपालन, वन शिक्षा, सहकारिता, मत्स्य पालन, ग्रामीण एवं लघु उद्योग तथा न्यूनतम आवश्यकता कार्यक्रम के अन्तर्गत पारिवारिक आय बढ़ाने हेतु कल्याण मंत्रालय द्वारा राज्यों एवं केन्द्रशासित प्रदेशों में विशेष आर्थिक अनुदान दिये गये हैं। इस प्रकार प्रथम पंचवर्षीय योजना से नवम् पंचवर्षीय योजना तक जनजातीय विकास हेतु अनेक प्रयास परिलक्षित होते हैं।

12.8 जनजातीय विकास के विभिन्न मुद्दे एवं चुनौतियाँ

भारत के विविध जनजातीय क्षेत्रों की समस्यायें समरुपीय नहीं हैं। राय बर्मन ने जनजातीय समस्याओं के प्रति उनकी अभिव्यक्तियों के निम्न स्वरुप बतायाः (क) आवास को खोने की चुनौती (ख) उत्पादन के श्रोतों पर नियंत्रण खोने की चुनौती (ग) मनुष्य, प्रकृति एवं समाज के सहसम्बन्धों में परिवर्तन को आत्मसात करने की चुनौती (घ) विविध स्तरों पर सामुदायिक शक्तियों के संगठन की संतोषजनक व्यवस्था की तलाश (ड.) जनजातीय पहचान एवं अस्मिता को सँजोने एवं स्थापित करने के प्रयास (च) राजनैतिक विचारधारा के आधार पर उभरे असंतोष एवं आन्दोलन।

डी.एन. मजूमदार (1968) ने जनजातीय समस्याओं के निराकरण के दो उपागम बताया-सुधारवादी उपागम _एवं प्रशासकीय उपागम। सुधारवादी उपागम के अन्तर्गत जनजातीय कल्याण समाज सुधारकों के प्रयासों के आधार पर किया गया जबकि प्रशासकीय उपागम के अन्तर्गत सरकारी एवं समाजसेवा अभिकरणों के माध्यम से किया गया। उन्होंने सुधारवादी उपागम की आलोचना करते हुए यह निष्कर्ष दिया कि इसमें जनजातियों के विश्वासों एवं रीति-रिवाजों को बदलने का दृष्टिकोण शामिल है, अतः यह दृष्टिकोण सकारात्मक नहीं। इसके अतिरिक्त उन्होनें यह भी कहा कि सुधारवादियों को स्वयं में सुधार करने की आवश्यकता है। प्रशासकीय उपागम की कमियों का उल्लेख करते हुए उन्होंने बताया कि इसके अन्तर्गत जनजातीय समस्याओं को सभी क्षेत्रों में समरुपीय माना गया, उनकी भिन्नताओं एवं प्राथमिकताओं को नजरअन्दाज किया गया।

एस.सी. दूबे (1968) ने जनजातीय समस्याओं के प्रति चार प्रमुख अभिगमों की विवेचना की हैः समाजसेवा अभिगम, राजनीतिक अभिगम, धार्मिक अभिगम एवं मानवशास्त्रीय अभिगम। उनकी दृष्टि में समाज सेवा अभिगम के अन्तर्गत विभिन्न स्वयंसेवी संदठनों द्वारा जनजातीय क्षेत्रों में अनेक कार्य किय गये किन्तु यह दृष्टिकोण इसलिए असफल रहा क्योंकि इसमें यह महसूस नहीं किया गया कि सुधार के विविध प्रयास जनजातियों के सामाजिक-सांस्कृतिक समन्वय पर किस प्रकार सकारात्मक एवं नकारात्मक प्रभाव उत्पन्न करते हैं राजनीतिक अभिगम के अन्तर्गत ब्रिटिश काल में जनजातियों को पृथक्करण की नीति के आधार पर विकसित किया गया जबकि स्वतंत्रता के उपरान्त मुख्य धारा में उनके समन्वय पर बल दिया गया है। फिर भी क्षेत्रीय असमान विकास की विसंगतियों ने विविध जनजातीय क्षेत्रों में स्वायत्तता एवं नृजातीय (एथनिक) आन्दोलन को उभारा है। धार्मिक अभिगम के अन्तर्गत

जनजातियों के धर्मपरिवर्तन के माध्यम से उनके विकास का प्रयास यदि उन्हें अपने समुदाय से पृथक नहीं करती तब तो उचित है किन्तु यदि धर्मानतरण उनकी सामाजिक सुदृढ़ता को नष्ट करती है एवं उन्हें संतोषजनक विकल्प दिये वगैर अपने समुदाय से पृथक करती है तो यह दृष्टिकोण भी आलोचना की परीधि में आता है। मानशास्त्रीय अभिगम के अन्तर्गत जनजातियों की संस्कृति के अध्ययन पर बल दिया गया ताकि राष्ट्रीय मुख्य धारा में उन्हें शामिल करने के प्रयास में उनके प्रतिरोध की बजाय उनका समर्थन, सहयोग एवं सहभागिता प्राप्त की जा सके। वाल्टर फर्नाडीस ने यह निष्कर्ष दिया कि आधुनिकीकरण एवं जनजातीय विकास के वे समस्त प्रयास जो उन्हें निर्धनता, अधिकारविहीनता, विसथापन एवं अन्य नकारात्मक परिणाम की ओर अग्रसारित करे उसका परित्याग कर ऐसे विकल्प की तलाश करनी चाहिए जो जनोन्मुख हो एवं उन्हें स्वावलम्बी बना

सके।

मोटे तौर पर जनजातीय विकास की प्रमुख चुनौतियाँ निम्नलिखित हैं-

- उनके पास अलाभकर ज़मीनें होती हैं जिससे उनकी पैदावार कम होती है और इस कारण वे सदैव कर्जे में डूबे रहते हैं।
- जनसंख्या का केवल एक छोटा सा प्रतिशत ही व्यावसायिक गतिविधियों के द्वितीय एवं तृतीय क्षेत्रों में भाग लेता है।
- आदिवासी क्षेत्रों में ज़मीन का काफी बड़ा हिस्सा कानून के ज़रिये गैर-आदिवासियों को हस्तान्तरित कर दिया गया है। आदिवासियों की मांग है कि ये ज़मीन उन्हें वापस की जाये। दरअसल में आदिवासी जंगल का उपयोग करने और उसके जानवरों का शिकार करने में अधिक स्वतंत्र थे। जंगल ने केवल मकान बनाने के लिये सामग्री उपलब्ध कराते हैं बल्कि उन्हें ईधन, बीमारियों को ठीक करने के लिये जड़ी बूटियां, फल, जंगली शिकार इत्यादि भी देते हैं। उनका धर्म उन्हें विश्वास दिलाता है कि उनकी कई आत्माएं (वन देवता और वन देवी) पेड़ो और जंगलों में रहती हैं। उनकी लोक गाथाओं में मानवों और आत्माओं के संबंधों का प्रायः वर्णन मिलता है। इस प्रकार वन के प्रति भौतिक और भावनात्मक लगाव के कारण आदिवासियों ने सरकार द्वारा उनके पारंपरिक अधिकारों पर लगाये गये अंकुशों पर गहरी प्रतिक्रिया व्यक्त की है।
- जनजाति विकास कार्यक्रमों ने आदिवासियों के आर्थिक स्तर को उठाने में अधिक सहायता नहीं की। अंग्रजों की नीति ने आदिवासियों का कई प्रकार से भीषण शोषण किया क्योंकि उसने ज़मीदारों, भूस्वामियों, साहूकारों, जंगल के ठेकेदारों और आबकारी, राजस्व और पुलिस अधिकारियों का पक्ष लिया।
- बैकिंग सुविधाएं आदिवासी क्षेत्रों में इतनी अपर्याप्त हैं कि आदिवासियों को प्रमुखतया साहूकारों पर निर्भर रहना पड़ता है। आदिवासियों की इसलिये यह मांग है कि कृषि ऋण राहत कानून बनाये जायें जिससे कि उन्हें गिरवी रखी हुई ज़मीन वापस मिल सके।
- आदिवासियों में से 90% खेती करते हैं और उनमें से अधिकांश भूमिहीन हैं और स्थान बदल कर स्थानान्तरित कृषि करते हैं। उन्हें खेती के. नये तरीके अपनाने में मदद करनी चाहिये बेरोज़गार और अल्प-

रोज़गार वाले व्यक्तियों की आय के अनुपूरक स्त्रोतों का पता लगाने में सहायता की आवश्यकता है, जैसे पशुपालन, मुर्गीपालन, हाथकर्घा, बुनाई और दस्तकारी क्षेत्र का विकास।

- अधिकांश आदिवासी बहुत कम जनसंख्या वाली पहाड़ियों पर रहते है और आदिवासी क्षेत्रों में संचार और यातायात बहुत कठिन होते हैं। इसलिये आदिवासियों को कस्बों और शहरों से दूर एकाकी जीवन जीने से रोकने के लिए नई सड़कों का जाल बनाना चाहिये।
- आदिवासियों का ईसाई मिशनरी शोषण करते हैं। कई आदिवासी क्षेत्रों में ब्रिटिश काल में व्यापक धर्म परिवर्तन हुआ था। यद्यपि मिशनरी आदिवासी क्षेत्रों में शिक्षा के क्षेत्र में अग्रगामी रहे हैं और उन्होंने अस्पताल भी खोले हैं परन्तु वे आदिवासियों को अपनी संस्कृति से विमुख करने के लिए भी उत्तरदायी है। ईसाई मिशनरियों ने कई बार उन्हें भारत सरकार के विरुद्ध विद्रोह के लिये भी भड़काया है।

आदिवासियों और गैर-आदिवासियों के बीच सम्बन्ध बिगड़ रहे हैं और ग़ैर-आदिवासी अपनी सुरक्षा हेतु अधिकाधिक रुप से अर्द्धसैनिक बलों पर निर्भर हो रहे हैं। आदिवासियों के लिये पृथक राज्यों की मांग ने मिज़ोरम, नागालैण्ड, मेघालय, मनीपुर, अरुणाचल प्रदेश और त्रिपुरा में विद्रोह का रुप ग्रहण कर लिया है। पड़ोसी देश, जो भारत के विरुद्ध हैं, इन भारत विरोधी भावनाओं का अनुचित लाभ उठाने में सक्रिय हैं। इन राज्यों में जो आदिवासी क्षेत्रों से घिरे हुए हैं विदेशी नागरिकों की घुसपैठ, बन्दूकों की तस्करी, मादक पदार्थो का व्यापार और तस्करी बहुत भीषण समस्याएं हैं। संक्षेप में, आदिवासियों की प्रमुख समस्याएं हैं: निर्धनता, ऋणग्रस्तता, निरक्षरता, बंधुआपन, बीमारी, और बेरोज़गारी ।

जनजातीय कल्याण सेवाओं की गुणवत्ता निम्न श्रेणी की है एवं उनका प्रबंधन भी कुशलतापूर्वक नहीं किया गया है। जनजातीय विकास से सम्बद्ध प्रशासकीय व्यय का अधिकांश हिस्सा सरकारी दफ्तर के भवन, सरकारी कर्मियों के आवास, नौकरशाहों के वाहन, वेतन एवं अन्य भत्ते के रुप में हुआ, जनजातियों - को सीधे लाभान्वित करने हेतु योजनाओं एवं धनों का प्रायः अभाव ही रहा। • जनजातियों की शिक्षा, स्वास्थ्य एवं अन्य समस्याओं के निराकरण की दिशा में किये गये सरकारी प्रयास उनकी उदासीनता प्रदर्शित करते हैं। आधुनिक दवाओं एवं चिकित्सा प्रणाली ने जनजातीय समूहों में विश्वसनीयता का भाव नहीं उत्पन्न किया है क्योंकि जनजातीय क्षेत्रों में जनस्वास्थ्य केन्द्रों का अभाव ही रहा है। जनजातीय क्षेत्रों में खोले गये शिक्षा आश्रमों में शिक्षकों उपस्थिति को नियमित बनाये रखने के प्रयास का अभाव परिलक्षित होता है, परिणामतः आदिवासी बच्चों को अधिकाधिक संख्या में आकर्षित करने में ये शिक्षा आश्रम असफल रहे हैं।

अभ्यास प्रश्न

1. जनजातीय पृथक्करण की नीति का प्रतिपादन किसने किया था?

अ. जी० एस० घूरिये ब. वेरियर एल्विन

स. एस० सी० दूबे द. डी० एन० मजूमदार

2. भारतीय संविधान के किस अनुच्छेद के आधार पर अनुसूचित जनजातियों हेतु सरकारी सेवाओं में आरक्षण का प्राविधान बनाया गया है?

अ. अनुच्छेद 330 ब. अनुच्छेद 332

स. अनुच्छेद 335 द. अनुच्छेद 339

3. अनुसूचित क्षेत्र एवं अनुसूचित जनजाति आयोग (1960-61) के चेयरमैन कौन थे?

अ. हरि सिंह ब. शीलू आओ

स. ए० वी० ठक्कर द. यू० एन० ढेबर

4. जनजातीय सात्मीकरण की नीति को निम्नलिखित में से किसने वांछनीय माना?

अ. मालिनोवस्की ब. जी० एस० घूरिये

स. के० एस० सिंह द. रेडक्लिफ ब्राउन

5. के0 एस0 सिंह के सर्वेक्षण के अनुसार भारत में कुल कितनी अनुसूचित जनजातियां हैं?

अ. 360 ब. 450

स. 461 द. 570

12.9 सारांश

जनजातीय विकास के मूल्याँकन सम्बन्धी अध्ययन यह प्रदर्शित करते हैं कि जनजातीय विकास की नीतियों में जनजातियों की अज्ञानता, असंगठन की प्रकृति तथा क्षेत्रीय निर्णय प्रक्रिया में उनकी सकिय सहभागिता जैसे मुद्दों को पर्याप्त महत्व नहीं दिया गया। नीतियों एवं कार्यक्रमों के क्रियान्वयन में कमी, जैसे- वितरण व्यवस्था में छिद्र के कारण आर्थिक लाभ के वाजिब हिस्से से वंचित रहने की उनकी विवशता बनी हुई है। इन परिस्थितियों में जनजातीय विकास की भावी रणनीति में नये विकल्प तलाशने की आवश्यकता है। इन नये विकल्प को सूत्रों में 'COP' की संज्ञा दी जा सकती है जिसके अलग–अलग शब्दों के अभिप्राय हैं: चेतनीकरण, संगठन, एवं सहभागिता।

चेतनीकरण की प्रक्रिया का आशय है जनजातियों को अपने अधिकार, सुवधाओं के प्रति जागरुक बनाना। सरकारी, निजी एवं स्वयंसेवी संस्थाओं द्वारा प्राप्त स्त्रोतों, सेवाओं एवं लाभों से उन्हें अवगत कराना, इस प्रक्रिया का आधारभूत लक्ष्य है। जागरुकता के प्रयास में विविध तत्व शामिल हैं: यथा भूमि सुधार के प्राविधानों, न्यूनतम मजदूरी, विविध वित्तीय रियायतें एवं अनुदान आदि। महज जागरुक होना ही पर्याप्त नहीं। अपने अधिकारों से अवगत होने के बावजूद जनजातीय समूह कोई दबाव नहीं कायम कर सकता क्योंकि उनमें संगठन का अभाव है। पीढ़ी दर पीढ़ी के अनुभवों के आधार पर अपनी विपन्नता को ही अपनी नीयति के रुप में स्वीकार करने की भावना उनमें अपनी प्रस्थिति में उन्नयन की उम्मीद जगाने में असफल रही हैं। इस परिप्रक्ष्य में स्वयंसेवी संस्थाओं द्वारा उचित निर्देशन एवं प्रशिक्षण के आधार पर उन्हें संगठित करना आवश्यक है।

जागरुकता बढ़ाने एवं संगठित करने का उद्देश्य यह है कि जनजातीय समूहों को विकास कार्यक्रमों के निर्धारण एवं क्रियान्वयन में सक्रिय रुप से सहभागी बनाया जा सके। फिलहाल इन विकास कार्यक्रमों से पृथकता के परिणामस्वरुप

अधिकांश सदस्य लाभ अर्जित करने से वंचित हैं। अतः आवश्यकता है कि क्षेत्रीय स्तर पर समितियों के गठन के माध्यम से उन्हें सार्थक एवं सक्रिय सहभागिता के पर्याप्त अवसर मिलें ताकि वे न सिर्फ लाभार्थी बनें बल्कि सम्पूर्ण विकास की प्रक्रिया से अपने आपको अभिन्न रुप से जोड़ सकें।

12.10 अभ्यास प्रश्न के उत्तर

1. ब, 2. स, 3. द, 4. ब, 5. स

12.11 संदर्भ सूची

1. Berreman, G. (1963) Hindus of Himalayas, University of California Press, Berkeley.
2. Dube, S.C. (1968) " Approaches to the Tribal Problems in India" an article in Vidyarthi, L.P. (ed) Applied Anthropology in India, Kitab Mahal Agencies, Allahabad.
3. Negi, S.S. (1995) Uttarakhand: Land and People, M.D. Publications, New Delhi.
4. Roy, Burman (1970) " Challenges and Responses in Tribal India", an article in Rao, M.S.A. (ed) Social Movement in India.
5. Vidyarthi, L.P. (1984) Tribal Development and its Administration, Allahabad: Kitab Mahal

12.12 निबंधात्मक प्रश्न

1. भारत में जनजातीय विकास के विविध उपागमों की समीक्षा कीजिए।

2. उत्तराखण्ड में बसने वाली जनजातियों के सामाजिक-आर्थिक जनजीवन की विवेचना कीजिए।

3. भारत में जनजातियों को संविधान के द्वारा किस प्रकार संरक्षित किया गया है? क्या ये संरक्षण उनकी निर्योग्यताओं को दूर करने में समर्थ हैं?

4. भारत में जनजातियों के कल्याण एवं विकास हेतु कौन-कौन से कार्यक्रम क्रियान्वित किये गये हैं? इनके परिणामों का मूल्यांकन कीजिए।

5. जनजातीय विकास की वर्तमान चुनौतियाँ कौन-कौन सी हैं? वैश्वीकरण की नीति ने जनजातियों के समक्ष कौन-कौन सी समस्याएं उत्पन्न की हैं?

इकाई 13 विकास के परिवर्तन के कारक एवं प्रभाव

इकाई की रूपरेखा

13.1 परिचय

13.2 उद्देश्य

13.3 परिवर्तन के कारक

13.4 नगरीकरण

13.5 प्रवास

13.6 औद्योगिकरण

13.7 प्रकृति एवं मानव सम्बन्धों का परिवर्ती स्वरूप

13.8 उदारीकरण, निजीकरण एवं वैश्वीकरण के प्रभाव

13.9 सारांश

13.10 बोध प्रश्न एवं उत्तर

13.11 संदर्भ ग्रन्थ सूची

13.1 परिचय

समाज एक परिवर्तनशील व्यवस्था है। प्रत्येक समाज में परिवर्तन की प्रक्रिया अनिवार्य रूप में चलती रहती है। परिवर्तन की गति एवं स्वरूप सभी समाजों में एक समान नहीं रहती। सामाजिक परिवर्तन का तात्पर्य सामाजिक संगठन अर्थात् समाज की संरचना एवं प्रकार्यों में परिवर्तन है। परिवर्तन या तो समाज के समस्त ढाँचे में आ सकता है अथवा समाज के किसी विशेष पक्ष तक ही सीमित हो सकता है। एन्थनी गिडेन्स (1998) ने यह निष्कर्ष दिया कि 18वीं सदी में सामाजिक परिवर्तन की गति मानव इतिहास में सापेक्षिक रूप से सबसे तेज रही है और 20वीं सदी के उत्तरार्द्ध में सामाजिक परिवर्तन की गति कुछ और भी ज्यादा तेज हो गई।

13.2 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के उपरान्त आप निम्नलिखित तथ्यों से अवगत हो सकेंगे:

- सामाजिक परिवर्तन के विविध कारण कौन-कौन से हैं?
- नगरीकरण क्या है तथा इसने जीवन शैली को किस रूप में प्रभावित किया है?
- प्रवास क्या है तथा इसका क्या प्रभाव पड़ा है?
- औद्योगिकरण का क्या आशय है तथा औद्योगिक विस्तार ने भारतीय समाज को किस रूप में प्रभावित किया है?

- उपभोक्तावादी संस्कृति ने मानव एवं प्रकृति के सामंजस्य को किस तरह बिगाड़ा है?
- उदारीकरण, निजीकरण एवं वैश्वीकरण के परिणाम क्या हैं?

13.3 परिवर्तन के कारक

विज्ञान और प्रौद्योगिकी की तरक्की ने सामाजिक परिवर्तन की गति को तेज करने में सबसे अधिक महत्वपूर्ण योगदान दिया है।

समाज वैज्ञानिकों ने सामाजिक परिवर्तन के विविध स्रोत बताया है: आविष्कार, खोज प्रसार एवं आन्तरिक विभेदीकरण इत्यादि । विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी ने विविध आविष्कारों के जरिये मानव समाज में एक युगान्तकारी एवं क्रांतिकारी परिवर्तन लाया है। मनुष्य एक खोजी प्रवृत्ति का प्राणी है और वह सदैव नई-नई खोजों में लगा रहता है, उदाहरणार्थ शरीर में रक्त संचालन, बीमारियों के कारण एवं निदान, खनिज एवं खाद्य पदार्थों के उपयोग, जैसे अनेक खोज के परिणामस्वरूप मानव के भौतिक एवं अभौतिक जीवन में काफी परिवर्तन आया है। प्रसार की प्रक्रिया ने एक स्थान पर किये गये आविष्कार एवं खोज को दूसरे स्थान एवं समाज में पहुँचाया है। पश्चिमीकरण, आधुनिकीकरण, भूमंडलीकरण जैसी प्रक्रियाओं के विस्तार का मुख्य आधार प्रसार ही रहा है। प्रत्येक समाज अपनी स्वाभाविक उद्विकासीय प्रक्रिया, आन्तरिक विभेदीकरण एवं अपनी आवश्यकताओं के अनुरूप विशेष स्थिति में परिवर्तित होता रहता है। इस प्रकार परिवर्तन के इन विविध स्रोतों के अनुसार समाज की संरचना एवं प्रकार्यों में फेरबदल होता रहता है।

सामाजिक परिवर्तन के अनेक कारक हैं किन्तु विभिन्न कारकों की महत्ता देश और काल से प्रभावित होती हे। समय के साथ-साथ परिवर्तन के कारक एवं स्वरूप बदलते रहते हैं। एच०एम० जानसन ने परिवर्तन के कारकों को तीन भागों में बाँटा है: आन्तरिक कारक, वाह्य कारक एवं गैर सामाजिक कारक । आन्तरिक कारक का आशय है जब किसी विशेष समाज के लोग अपनी परम्परागत व्यवस्था से असंतुष्ट हो जाते हैं तो उसमें फेरबदल की कोशिश करते हैं जैसे धार्मिक कुरूतियों को दूर करने हेतु हिन्दू समाज में धर्म सुधार आन्दोलन हुए जिन्होंने हिन्दू समाज में आंशिक परिवर्तन लाया। वाह्य कारक वे हैं जिसमें अपने समाज के बाहर के स्रोतों द्वारा अपने समाज में परिवर्तन आता है, जैसे— पश्चिमी सभ्यता से सम्पर्क के आधार पर भारतीय समाज पाश्चात्य मूल्यों एवं व्यवहारों से प्रभावित एवं परिवर्तित हुआ । गैर सामाजिक कारक का आशय है भौगोलिक, प्राकृतिक एवं भौतिक दशाएँ भी समाज को परिवर्तित करती रहती हैं जैसे भूकम्प, तूफान, जल प्लावन जैसी प्राकृतिक घटनाएँ पूरे समाज का उथल पुथल करती रहती हैं।

ऐन्थनी गिडेन्स ने परिवर्तन के कारकों को स्रोत की बजाय स्वरूप के आधार पर तीन भागों में बाँटा है: भौतिक वातावरण, राजनीतिक व्यवस्था एवं संस्कृति। भौतिक वातावरण में बदलाव समाज को परिवर्तित करने में आधारभूत हैं। जैसे प्रौद्योगिक अनुसंधानों, ज्ञान एवं विज्ञान की तरक्की ने उद्योग धन्धों का विस्तार किया, भौतिक सुख सुविधाओं के अनेक विकल्प उत्पन्न किया तथा सामाजिक गतिशीलता को बढ़ाया जिन सबकी समन्वित परिणति सामाजिक परिवर्तन के रूप में घटित हुई। राजनीतिक व्यवस्था में होने वाले परिवर्तन ने सामाजिक–आर्थिक व्यवस्था में भी परिवर्तन लाया है। कबीलाई सरदार, दास एवं मालिक, राजा एवं सामंती प्रभुत्व वाले युग से लेकर प्रजातंत्र एवं राज्य के विकास प्रक्रिया के दौर में सामाजिक संस्तरण, सामाजिक सम्बन्ध का स्वरूप बदलता रहा है। इसी तरह

संस्कृति के विकास ने मानव समाज में महत्वपूर्ण परिवर्तन उत्पन्न किया है क्योंकि संस्कृति एवं समाज के बीच एक सहजीवी सम्बन्ध है। मैक्सवेबर ने यह विश्लेषित किया कि बुद्धिवादी प्रक्रिया ने हमारे जीवन के दार्शनिक, वैचारिक एवं धार्मिक पहलुओं में उल्लेखनीय परिवर्तन लाया है। सांस्कृतिक प्रसार, परसंस्कृतिग्रहण, संस्कृतिकरण, पश्चिमीकरण, आधुनिकीकरण जैसी सांस्कृतिक प्रक्रियाओं ने समाज को परिवर्तित किया है।

सैद्धान्तिक रूप से सामाजिक परिवर्तन के कारकों की व्याख्या करने में आरम्भिक समाजशास्त्रियों ने एक विशिष्ट कारक सिद्धान्त प्रतिपादित किया। अगस्त कोंत ने मस्तिष्क के विकास के आधार पर धार्मिक, तात्विक एवं प्रत्यक्षवादी अवस्थाओं के विकासक्रम का विश्लेषण किया। हरबर्ट स्पेंसर ने ऐहिक विभेदीकरण के आधार पर सामाजिक उद्विकास की प्रक्रिया की विवेचना की। कार्ल मार्क्स ने उत्पादन के स्वरूप एवं अर्थव्यस्था को सामाजिक परिवर्तन का आधारभूत कारण माना। किन्तु कालान्तर में विभिन्न समाजशास्त्रियों हाबहाउस, टायनबी, सोरोकिन इत्यादि ने सामाजिक परिवर्तन के बहुल कारक सिद्धान्तों का प्रतिपादन किया।

मोटे तौर पर सामाजिक परिवर्तन के विविध कारक है: जनसंख्यात्मक कारक, प्रौद्योगिकीय कारक, आर्थिक कारक, सांस्कृतिक कारक, वैधानिक कारक एवं नियोजन। जनसंख्या का आकार, लैंगिक विभाजन का स्वरूप, जन्म एवं मृत्यु दर, बालकों, युवाओं एवं वृद्धों का अनुपात, इत्यादि। जनसंख्यात्मक कारक समाज को परिवर्तित करने में आधारभूत हैं जैसे अति जनसंख्या वाले समाज में कम से कम बच्चे पैदा करने को प्रोत्साहित किया जाता है जबकि अल्प जनसंख्या वाले समाजों में अधिक बच्चे को पैदा करने पर प्रोत्साहन मिलता है। प्रौद्योगिकीय कारक समाज एवं संस्कृति को बदलने में आधारभूत है। पहिया से लेकर प्रिंटिंग प्रेस, इंजन, मोटर, हवाई जहाज, परमाणु बम, दूरसंचार, कम्प्यूटर, आदि के आविष्कार ने भौतिक संरचना, सामाजिक गतिशीलता, फैशन, रीतिरिवाज, वैचारिकी सभी को परिवर्तित किया है। आर्थिक कारक भी समाज को परिवर्तित करने में आधारभूत हैं। आदिम गैरकृषक अर्थव्यवस्था से लेकर कृषक, औद्योगिक एवं उत्तर औद्योगिक अर्थव्यवस्था के विविध स्वरूप समाज में श्रम विभाजन, उत्पादन के सम्बन्ध, सामाजिक संस्तरण के स्वरूप को बदलते रहे हैं। जैसे परम्परागत अर्थव्यवस्था में उद्यम की भूमिका एक व्यापारी, बनिया, दलाल एवं सूदखोर के रूप में हुआ करती थी जबकि आधुनिक औद्योगिक एवं कारपोरेट अर्थव्यस्था में वाणिज्यिक उद्यमी की बजाय औद्योगिक उद्यमी की भूमिका महत्वपूर्ण हो गई है।

सांस्कृतिक कारक सामाजिक–आर्थिक व्यवहार को प्रभावित करते हैं। मैक्सवेबर ने प्रोटेस्टेट धर्म की आचार संहिता एवं पूँजीवाद के विकास के सहराम्बन्ध का विश्लेषण किया। अमेरिकी मनोवैज्ञानिक मैक्कलिलैंड ने निष्कर्ष प्रतिपादित किया कि जब अर्जन की आवश्यकता पर बल दिया जाता है तब आर्थिक वृद्धि होती है तथा जब अर्जन की आवश्यकता का ह्रास होता है तब आर्थिक विकास अवरूद्ध होता है। आगबर्न ने सांस्कृतिक विलम्बना सिद्धान्त प्रतिपादित करते हुए यह निष्कर्ष दिया कि भौतिक एवं अभौतिक संरकृति में परिवर्तन एक समान नहीं होता बल्कि असमान रूप में एक संस्कृति दूसरे से आगे बढ़ जाती है जिसे सांस्कृतिक पिछाड़ कहा जाता है। इस सांस्कृतिक पिछाड़ अथवा विलम्बना के परिणामस्वरूप दूसरी संस्कृति में भी परिवर्तन करने की प्रेरणा एवं आवश्यकता उत्पन्न होती है जिसके परिणामस्वरूप समाज में परिवर्तन आता है। जैसे मोटर वाहनों के आविष्कार के पश्चात सड़क पर दुर्घटना की रोकथाम हेतु यातायात के नियम बनाने की आवश्यकता पड़ी एवं ट्रैफिक सम्बन्धी नियम बनाये गये। कानून एवं विधान सामाजिक परिवर्तन के कारक हैं क्योंकि कानून के परिमापन का आशय है नये मूल्यों एवं विधानों के अनुरूप व्यवहार का संस्थाकरण किया जाना। कानून में एक सामाजिक शक्ति समाहित हो जाती है जिससे उसकी अवहेलना करना दण्डनीय अपराध बन जाता है।

नियोजन का आशय है पूर्व निर्धारित लक्ष्यों के अनुरूप सामाजिक–आर्थिक विकास के कार्यक्रमों का क्रियान्वयन करना। भारत में संविधान के प्राविधानों के अन्तर्गत जनतंत्र, समानता के अवसर, सामाजिक न्याय, विचार एवं अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता तथा व्यक्ति को सम्मान प्रदान करने के लक्ष्य के अनुरूप पंचवर्षीय योजनाएं क्रियान्वित करते हुए सामाजिक आर्थिक विकास के प्रयास किये जा रहे हैं, जो नियोजित विकास के उदाहरण हैं।

13.4 नगरीकरण

नगरीकरण एक प्रक्रिया है जिसके अन्तर्गत शहर की संख्या में गुणात्मक वृद्धि होती है तथा शहर विशेष के आकार में वृद्धि होती है। डी० एफ0 पोकॉक ने यह प्रतिपादित किया कि नगरीकरण की प्रक्रिया में ग्रामीण लोग शहर की ओर प्रवास करते हैं तथा नगरों के प्रभाव में उनके तौर तरीकों में बदलाव आता है। नगरीकरण के साथ एक प्रकार की जीवन शैली के प्रसार की भी प्रक्रिया जुड़ी हुई है। इस आधार पर नेल्स एंडर्सन ने यह कहा कि यदि गाँव के लोग वहीं रहकर नगरीय जीवन शैली को अपनाते हैं तो उसे भी नगरीकरण कहा जायेगा। स्मेलसर ने भौगोलिक दृष्टिकोण से नगरीकरण को भूदृश्य एवं आवासीय वातावरण को बदलने वाली प्रक्रिया के रूप में परिभाषित किया। मिचेल ने नगरीकरण की प्रक्रिया में पेशे में परिवर्तन को महत्वपूर्ण मानते हुए यह कहा कि कृषि पर आधारित व्यवसाय को छोड़कर गैर कृषि / औद्योगिक व्यवसाय को अपनाना नगरीकरण है। इस प्रकार नगरीकरण की प्रक्रिया को समग्र दृष्टि से समझा जाना चाहिए।

नगरीकरण की प्रक्रिया ने हमारे समाज एवं संस्कृति को क्रांतिकारी ढंग से परिवर्तित किया है। लोगों के जीवन के मानदंड एवं मूल्य बदल गये हैं। परम्परावादी विचारधारा की जगह वैज्ञानिक दृष्टि का विकास हुआ है। नगरों में मिश्रित संस्कृति में वृद्धि हुई है। यह सही है कि शहरों में जातिवाद, नृजातिवाद एवं प्रजातिवाद देखने को मिलता है, इसके बावजूद यह भी सही है कि विभिन्न जातियों, संप्रदायों एवं प्रजातियों के बीच सामाजिक एवं सांस्कृतिक दूरी में काफी कमी आई है तथा उनके बीच सामाजिक अंतःक्रिया बढ़ी है। आधुनिक नगरीकरण ने मेधा पलायन, अर्थ पलायन तथा आर्थिक साम्राज्यवाद या आर्थिक नवउपनिवेशवाद को बढ़ावा दिया है। आज विभिन्न देशों के लोग एक दूसरे से इतना करीब होते जा रहे हैं कि अब भूमण्डलीय गाँव की भी कल्पना की जा रही है।

13.5 प्रवास

प्रवास का आशय है एक भौगोलिक क्षेत्र/स्थान से दूसरे भौगोलिक क्षेत्र/स्थान में जाना। मोटे तौर पर प्रवास के दो स्वरूप हैं: आन्तरिक प्रवास एवं देशान्तर प्रवास। आन्तरिक प्रवास का अर्थ है अपने देश के अन्तर्गत विभिन्न क्षेत्रों में स्थानान्तरित होना जबकि देशान्तर प्रवास अपने देश की सीमाओं से बाहर अन्य देश में स्थानान्तरित होने की प्रक्रिया है।

आन्तरिक प्रवास के चार स्वरूप हैं- ग्रामीण से ग्रामीण, ग्रामीण से नगरीय, नगरीय से नगरीय तथा नगरीय से ग्रामीण। भारत में आन्तरिक प्रवास का सर्वाधिक विद्यमान स्वरूप है ग्रामीण से ग्रामीण प्रवास, जिसमें महिलाओं के विवाह के पश्चात होने वाले प्रवास की संख्या सबसे अधिक है। पुरूषों में प्रवास का सर्वाधिक कारण आर्थिक है। युवा पुरूषों (15 से 30 वर्ष की अवस्था) में प्रवास की प्रवृत्ति अधिक परिलक्षित होती है क्योंकि प्रवास की आरम्भिक अवधि की अनिश्चितताओं से अभियोजन करने की क्षमता उनमें अधिक होती है। यद्यपि प्रवास की पूर्ववर्ती अवधि में रोजगार

हेतु भूमिहीन एवं अशिक्षित युवाओं की संख्या अधिक हुआ करती थी किन्तु कालान्तर में शिक्षा एवं नियोजन के उद्देश्य से भूस्वामी परिवारों से युवाओं के प्रवास की आवृत्ति बढ़ी है।

कई अध्ययनों से प्राप्त निष्कर्ष यह भी प्रतिपादित करते हैं कि आर्थिक कारक के अतिरिक्त सामाजिक एवं सांस्कृतिक कारक-जाति, धर्म आदि प्रवास के लिए महत्वपूर्ण हैं। नगरीय मलिन बस्तियों में अधिकांश प्रवासी अनुसूचित एवं निम्न जातियों से हैं जो ग्रामीण क्षेत्रों से जाति आधारित शोषण एवं सामाजिक संरचनात्मक असमानताओं के कारण नगरों की ओर उन्मुख हुए हैं। इसके अतिरिक्त संयुक्त परिवार में होने वाले झगड़े आदि के परिणामस्वरूप भी लोग नये क्षेत्रों में प्रवास करते हैं।

प्रवास के कारक

प्रवास का सर्वाधिक प्रमुख कारण है: आर्थिक। आर्थिक आधार पर भरण पोषण वाली खेती के दबावमूलक कारक एवं प्रवासी क्षेत्रों में अपेक्षाकृत उच्च मजदूरी प्राप्त करने की प्रत्याशा सम्बन्धी आकर्षणमूलक कारक प्रवास के लिए उत्तरदायी है। लेविस, फाई एवं रेनिस के अध्ययन यह प्रतिपादित करते हैं कि ग्रामीण क्षेत्रों से कम उत्पादक खेती के कारण अतिरिक्त मजदूर नगरीय भूभागों के अधिक श्रम शक्ति की आवश्यकता वाले औद्योगिक उत्पादक क्षेत्रों में हस्तान्तरित होते हैं। किन्तु नगरों में विद्यमान बेरोजगारी की विसंगतियों के परिप्रेक्ष्य में इस प्रकार के सिद्धान्त के औचित्य को विश्लेषित करते हुए यह सिद्धान्त प्रतिपादित किया कि प्रवास वस्तुतः वास्तविक कमाई की प्राप्ति की बजाय आंकाक्षी कमाई के कारण होता है। ग्रामीण प्रवासी किसी समय विशेष में ग्रामीण क्षेत्रों में विद्यमान औसत आमदनी की तुलना नगरों में संभावित आमदनी से करते हैं तथा यदि सम्भावित आमदनी ज्यादा प्रतीत होती है तो वे नगरीय क्षेत्रों में प्रवास करते हैं। इस प्रकार नगरीय बेरोजगारी के बावजूद ग्रामीण एवं नगरीय आकांक्षी आमदनी के अन्तराल के कारण नगरों में प्रवास होता रहता है। टोडारो के इस सिद्धान्त की आलोचना करते हुए ओबराय एवं सिंह (1983) ने यह निष्कर्ष दिया कि ग्रामीण एवं नगरीय आय का अन्तराल वस्तुतः प्रवासियों की आकांक्षा की बजाय गांवों और नगरों की संरचनात्मक असमानताओं-स्रोतों के असमान वितरण, भूस्वामित्व का अन्तराल, असंगत प्रौद्योगिकी आदि पर आधारित है।

ग्रामीण क्षेत्रों से प्रवास के सामाजिक आर्थिक कारक है— ग्रामीण बेरोजगारी, ग्रामीण निर्धनों की आय में प्रवाहहीनता एवं ह्रास, भूमि पर बढ़ता दबाव, गैर कृषि क्षेत्रों में रोजगार की कमी, भूमि एवं अन्य उत्पादक स्रोतों के असमान वितरण, इत्यादि।

ब्रेमेन (1985) ने दक्षिणी गुजरात के प्रवासी आदिवासियों के अध्ययन के आधार पर यह निष्कर्ष दिया कि प्रवासी व्यवहार अत्यन्त विवेकपूर्ण है। उसकी दृष्टि में स्थानान्तरण की प्रेरणा आदिवासियों की आमदनी की परम वृद्धि की बजाय जीवन अस्तित्व की रणनीति तक सीमित है क्योंकि वे प्रवास के बावजूद न तो बहुत समृद्ध हो पाते और न ही आधुनिकीकरण के प्रतिनिधि बन पाते हैं|

फिन्डले (1977) ने यह निष्कर्ष दिया कि नगरों की चमक दमक के कारण लोग उसकी ओर प्रवास करते हैं जहाँ शिक्षा, मनोरंजन, स्वास्थ्य केन्द्र एवं अन्य स्रोत उपलब्ध होते हैं।

प्रवास के कारकों का विश्लेषण मजूमदार ने दो आधारों पर किया हैः **(अ)** सूक्ष्म प्रवास प्रकार्य तथा **(ब)** वृहद् प्रवास प्रकार्य। पहले प्रकार के अन्तर्गत स्थानान्तरण के चयन सम्बन्धी निर्णय, व्यक्ति की आयु, वैवाहिक प्रस्थिति, परिवार की संरचना, मजदूरी की भिन्नता, आदि प्रकार्य शामिल हैं। दूसरे प्रकार के अन्तर्गत वे समस्त प्रकार्य शामिल हैं जिनमें

यह विश्लेषण किया जाता है कि रोजगार के नये अवसरों की उपलब्धि की वजह से लोग प्रवास करते हैं अथवा प्रवासियों के प्रवाह के उपरान्त रोजगारों का सृजन होता है।

प्रवास के परिणाम

प्रवास विविध परिणाम उत्पन्न करता है। ओबराय एवं सिंह ने यह निष्कर्ष दिया कि प्रवास के कारण मजदूरी की दर प्रभावित होती है, औद्योगिकरण की ग्रति तीव्र होती है, नगरीय अनौपचारिक क्षेत्रों में गतिशीलता आती है। बर्ग (1965) ने यह प्रतिपादित किया कि प्रवास के परिणामस्वरूप आर्थिक प्रगति की गति तीव्र होती है। दूसरी ओर नगरीय जीवन में आवास, सामाजिक सेवाओं आदि की समस्या उत्पन्न होती है तथा जीवन की गुणात्मकता का स्तर गिरता है।

प्रवास के परिणामस्वरूप नगरों में खाद्यानों की मांग बढ़ती है जिसके कारण नगर एवं ग्राम के वाणिज्यिक शर्तों में संशोधन होता है जो ग्रामीण अर्थव्यवस्था के लिए सकारात्मक एवं सहायक परिणाम उत्पन्न करती है एवं कृषि में नवाचार को प्रोत्साहित करती है। किन्तु दूसरी ओर गांवों में श्रमिकों की कमी, कृषक मजदूरी की बढ़ोत्तरी आदि के परिणामस्वरूप कृषि कम लाभकारी व्यवसाय बन जाती है।

प्रवास का ग्रामीण आय के वितरण पर अलग-अलग प्रभाव पड़ता है। ओबराय एवं सिंह ने यह पाया कि यदि प्रवास समृद्ध एवं निर्धन ग्रामीणों तक सीमित होता है तो आय की असमानता क्रमशः बढ़ती जाती है। किन्तु यदि बहुत निर्धन व्यक्ति दबावमूलक कारकों की वजह से प्रवास करते हैं तो इसके परिणामस्वरुप मजदूरी में वृद्धि होती है जो असमानता को कम करती है।

सिंह (1995) के अध्ययन में यह भी पाया गया कि पिछड़े कृषि वाले क्षेत्रों बिहार एवं उत्तर प्रदेश आदि से पूँजीवादी कृषि वाले क्षेत्र पंजाब, एवं हरियाणा में प्रवासी मजदूरों के कारण स्थानीय मजदूरों को स्थानापन्न किया गया तथा प्रचलित मजदूरी की दर कम हो गई। स्टार्क (1991) ने नगरीय रोजगार का प्रजनन, शिक्षा, आय के वितरण, आदि पर प्रभाव का विश्लेषण करते हुए यह निष्कर्ष दिया कि नगरों की दुरूह जीवन शैली के कारण प्रजनन की दर घटती है। पापोला (1981) ने गुजरात के प्रवासियों पर आधारित अपने अध्ययन में यह पाया कि यद्यपि अधिकांश प्रवासी असंगठित क्षेत्र में नियोजित थे किन्तु उनकी आय नगरों में प्रवास के पूर्व उनकी ग्रामीण आय से लगभग दो गुनी थी।

प्रवास के परिणाम विविध स्वरूपय हैं तथा वे प्रवास - की प्रकृति, प्रतिमान एवं क्षेत्रीय भिन्नताओं पर आधारित है। उभरते नगरीय केन्द्रों में प्रवासीगण जहाँ एक ओर मजदूरों की बढ़ती हुई मांग की पूर्ति करते हैं वहीं दूसरी ओर प्रवाहहीन नगरीय क्षेत्रों में प्रवासियों के परिणामस्वरूप श्रम बाजार एवं सामान्य नागरिक सुविधाओं एवं सेवाओं पर अतिरिक्त भार बढ़ता है।

13.6 औद्योगिकरण

औद्योगिकरण एक प्रक्रिया है जिसके अन्तर्गत औद्योगिक क्रांति, नये-नये उद्योग धन्धों के विकास एवं आधुनिक प्रौद्योगिकी के उपयोग जैसे पहलू शामिल हैं। उद्योगीकरण मूलतः एक आर्थिक प्रक्रिया है जिसके अन्तर्गत मशीनों के माध्यम से उत्पादन में वृद्धि की जाती है। उद्योगीकरण की प्रक्रिया कल कारखानों तक ही सीमित नहीं बल्कि खेत खलिहानों में भी जहाँ आधुनिक मशीनों के प्रयोग के जरिए उत्पादन हो रहा है, वहाँ तक व्यापक है।

उद्योगीकरण से समाज में विभिन्न प्रकार के परिवर्तन आये हैं । एवरक्रामी के अनुसार ये परिवर्तन हैं: **1.** एक संशक्तिशील राज्य की स्थापना **2.** उत्पादन का व्यापारीकरण एवं जीवन निर्वाह अर्थव्यवस्था की समाप्ति **3.** मशीन उत्पादन की प्रधानता **4.** खेती पर निर्भर श्रमिकों के अनुपात में गिरावट **5.** नगरीकरण **6.** जनशिक्षा का प्रचार **7.** मताधिकार एवं दल आधारित जनतांत्रिक राजनीति की स्थापना **8.** जीवन के विविध क्षेत्रों में विज्ञान के प्रयोग में वृद्धि ।

उद्योगीकरण से उत्पन्न सामाजिक समस्याओं के विषय में समाजशास्त्रियों के विभिन्न विचार रहे हैं। स्पेंसर, दुर्खिम जैसे आरम्भिक समाजशास्त्रियों ने उद्योगीकरण से उत्पन्न श्रम विभाजन को सहयोगी एवं समाकलानात्मक माना है तो समकालीन प्रकार्यवादियों ने औद्योगिक समाज को विभेदीकृत एवं सुसंगत माना है। दूसरी तरफ संघर्ष सिद्धान्त के समर्थक समाजशास्त्रियों के अनुसार उद्योगीकरण ने समाज को बहुत संघर्षशील बनाया है क्योंकि इसके अन्तर्गत उत्पादन के सम्बनध शोषण पर आधारित होते हैं तथा पूँजीपतियों के स्वार्थ की पूर्ति मजदूरों के शोषण से ही संभव होता है। मार्क्सवादी विचारकों ने यह निष्कर्ष प्रतिपादित किया कि पूँजीवादी अर्थव्यवस्था के अन्तर्गत मजदूर एवं उत्पादन के साधनों के बीच दूरी बढ़ जाती है तथा वर्ग संघर्ष उत्पन्न होता है। निष्कर्षतः यह कहा जा सकता है कि औद्योगिकरण के कारण जहाँ एक ओर लोगों का जीवन स्तर उँचा उठा है एवं भौतिक सुख सुविधाओं का विस्तार हुआ है वहीं दूसरी ओर बहुत सी नई नई प्रकार की समस्याओं- निर्धनता, शोषण, मलिन बस्तियों का विकास, बेरोजगारी, अपराध, मद्यपान एवं द्रव्यव्यसन, आतंकवाद, भ्रष्टाचार एवं कालाधन इत्यादि का आविर्भाव एवं विकास हुआ है।

औद्योगिकरण एवं नगरीकरण के परिणाम का विश्लेषण दा प्रारूपों में किया गयाः विघटन प्रारूप एवं अनुकरण प्रारूप। विघटन प्रारूप में जहाँ औद्योगिकीकरण एवं नगरीकरण की प्रक्रिया को परम्परागत सामाजिक संरचनाओं की समाप्ति के लिए उत्तरदायी माना गया वहीं अनुकरण प्रारूप में परिवर्तन की प्रक्रिया को संरचनात्मक सहवर्धक माना गया है जिसमें परम्परागत एवं आधुनिक सामाजिक संरचनाओं, मूल्यों, मान्यताओं, प्रतिमानों का गठजोड़ परिलक्षित होता है। इन दोनों सैद्धान्तिक परिप्रेक्ष्यों के अतिरिक्त अनुभवाश्रित तथ्यों के आधार पर भारत में औद्योगिकरण एवं नगरीकरण के परिलक्षित परिणाम हैं : जातिगत पेशे के एकाधिकार का हास, छूआछूत में कमी, जातिवाद की भावना का विस्तार, संयुक्त एवं विस्तृत परिवार का विघटन, ग्रामीण नगरीय सातत्यता, प्राथमिक समूहों के विघटन एवं द्वितीयक समूहों के प्रभाव में वृद्धि, कृषि का व्यवसायीकरण, गाँवों में उपभोक्ता संस्कृति का प्रसार, आधुनिक शिक्षा के महत्व में वृद्धि, परम्परागत पेशों का लौकिकीकरण, आधुनिकीकरण एवं भौतिकवादी संस्कृति को बढ़ावा, नारियों की सामाजिक प्रस्थिति में परिवर्तन, इत्यादि। यह भी एक तथ्य है कि ये समस्त परिवर्तन सिर्फ औद्योगिकरण एवं नगरीकरण के परिणाम नहीं हैं बल्कि अन्य कई कारक - विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी का विकास, आधुनिक शिक्षा का प्रसार, पश्चिमीकरण, आधुनिकीकरण, इत्यादि भी समान रूप से उत्तरदायी हैं। परिवर्तन के सभी कारकों के बीच अन्तः निर्भरता का सम्बन्ध परिलक्षित होता है।

13.7 प्रकृति एवं मानव सम्बन्धों का परिवर्ती स्वरूप

परम्परागत रूप से मानव एवं प्रकृति के बीच सहजीवी सम्बन्ध रहा है। किन्तु औद्योगिक क्रांति, जनसंख्या वृद्धि, विकास की असीमित आंकाक्षा एवं लिप्सा, प्राकृतिक संसाधनों के अन्धाधुन्ध उपभोग के कारण परिस्थितिकी

असंतुलन पैदा हुआ है। पर्यावरण संकट के वर्तमान दौर में विकास की अस्थिर प्रकृति (जो सिर्फ वर्तमान पीढ़ी के लिए उपयोगी है एवं भावी पीढ़ी के लिए अनुपयोगी है) के आधार पर इसकी आलोचना की जा रही है।

इस दृष्टि से पर्यावरण संरक्षण एवं सम्पोषित विकास की रणनीति पर बल दिया जाने लगा है। सम्पोषित विकास परिवर्तन की ऐसी प्रक्रिया है जिसमें प्राकृतिक संसाधनों का दोहन, निवेश की दिशा, प्रौद्योगिकी के विकास एवं संस्थागत परिवर्तनों की दिशा के मध्य तालमेल हो तथा मानवीय आवश्यकताओं एवं आकांक्षाओं को पूरा करने की वर्तमान एवं भावी क्षमताओं में वृद्धि हो।

प्राकृतिक संसाधनों के प्रति यह अविवेकपूर्ण दृष्टिकोण कि प्राकृतिक संसाधन असीमित है जो सदैव बनी रहेगी तथा उनके अनियंत्रित उपभोग की वर्तमान प्रवृत्ति ने कई प्रकार की समस्यायें उत्पन्न की हैं जैसे- उर्जा के स्रोतों (कोयला, पेटोलियम) का संकट, जल के स्रोतों की कमी, जल प्रदूषण, पर्यावरण का प्रदूषण, विश्व तापमान में वृद्धि, अम्लीय वर्षा में वृद्धि, ओजोन परत का विघटन, नाभिकीय दुर्घटना एवं महासंहार, वनों का कटाव, उपभोक्तावादी संस्कृति एवं अपव्यय, मानव स्वास्थ्य की प्रतिकूल दशाएं, इत्यादि।

इन समस्याओं के निदान हेतु विविध प्रयास किये जा रहे हैं, जैसे- जल की उचित वितरण व्यवस्था का विकास, भूमिगत जल का विवेकपूर्ण उपयोग, वृक्षारोपण, अपशिष्ट जल का शोधन, वर्षा जल का संग्रहण, पर्यावरण की नैतिकता का विकास, पर्यावरण संरक्षण अधिनियमों का निर्माण, जनचेतना का प्रयास, जैव प्रविधिकी को प्रोत्साहन, समुन्नत प्रौद्योगिकी का निरंतर विकास, इत्यादि। पर्यावरण पर मनुष्य के प्रभाव से उत्पन्न तथा भविष्य में होने वाले दूरगामी दुष्परिणाम के प्रति व्याप्त चिन्ता के परिणामस्वरूप वैश्विक स्तर पर अनेक अन्तर्राष्ट्रीय समझौते किये गये तथा विविध लेख, पुस्तकें एवं रिपोर्ट प्रकाशित की गई हैं जिनमें पर्यावरण संरक्षण एवं दुष्प्रभावों पर नियंत्रण के विविध सुझाव प्रतिपादित किये गये हैं। प्राकृतिक संसाधनों एवं सम्पदाओं के उपयोग एवं प्रबंधन की नीति में समय-समय पर बदलाव किये जाते रहे हैं। जैसे सामाजिक वानिकी की नीति का क्रियान्वयन, सार्वजनिक एवं निजी भागीदारी पर आधारित प्रबंधन, समुदायों की सहभागिता को प्रोत्साहन देने की रणीनीति, इत्यादि। प्रकृति एवं मानव के सम्बन्धों को सहजीवी बनाकर भावी विकास प्रारूप को संतुलित एवं समन्वित बनाने की सतत आवश्यकता है।

13.8 उदारीकरण, निजीकरण एवं वैश्वीकरण के प्रभाव

24 जुलाई, 1991 की तिथि भारतीय अर्थव्यवस्था के इतिहास में एक उल्लेखनीय तिथि मानी गई है क्योंकि इस तिथि को भारत सरकार ने आर्थिक उदारीकरण, निजीकरण एवं वैश्वीकरण की नीति को अपनाकर चार दशक पुराने सामाजिक आर्थिक विकास प्रारूप को महत्वपूर्ण रूप से परिवर्तित करने का सूत्रपात किया। प्रो० बी० के० डे० ने इस घटना को भारतीय अर्थव्यवस्था के इतिहास में एक मूक क्रांति की संज्ञा दी। प्रो० डे ने आर्थिक उदारीकरण की निम्न विशेषताएँ बताई 1. गैर नियंत्रक एवं गैर लाइसेंसीकरण 2. गैर नौकरशाहीकरण 3. अराष्टीयकरण एवं निजीकरण 4. अन्तर्राष्ट्रीयकरण भू-आर्थिक यथार्थ में लचीलापन 5. प्रतिस्पर्धा का अन्तर्राष्ट्रीयकरण 6. वित्तीयकरण 7. प्रौद्योगिकी आक्रमण 8. सूचना क्रांति 9. संचार क्रांति 10. अन्तर्राष्ट्रीय संगठन 11. नई दक्षता का अभ्युदय एवं विविधता 12. गुणात्मक संबद्धता 13. समय व्यय सूचीकरण 14. संगठनात्मक पुनर्संरचनाकरण तथा 15. मानवीय प्रशासन।

निजीकरण वह प्रक्रिया है जिसमें सामाजिक आर्थिक विकास के लक्ष्य को पूर्ति में राज्य की वजाय बाजार की शक्तियों को अधिक महत्वपूर्ण माना गया। निजीकरण के प्रवर्तकों ने यह तर्क प्रतिपादित किया कि जनकर्मी स्वार्थी होते हैं, वे जनहित की बजाय निजी हितों को प्राथमिकता देते हैं तथा वे जोखिम को टालते हुए अपनी जीवनवृत्ति का

संवर्धन करते रहते हैं। अतः सरकारी एवं सार्वजनिक क्षेत्र के कार्यों को निजी क्षेत्र में सौंप दिया जाना चाहिए ताकि कार्यक्षमता में वृद्धि हो सके तथा साथ ही जनहित में कार्य किया जा सके। इस दृष्टिकोण के आधार पर भारत में 1991 के पश्चात सार्वजनिक क्षेत्र के उद्यमों को निजी क्षेत्र में परिवर्तित करते हुए निजीकरण को प्रोत्साहित करने की नीति अपनाई गई।

वैश्वीकरण एक बहुप्रचलित प्रक्रिया है जिसे विविध रूपों में परिभाषित किया गया। आक्सफोर्ड शब्दकोष के अनुसार वैश्वीकरण का सर्वप्रथम प्रयोग 1952 में शिक्षा के क्षेत्र में मानव अनुभवों के समग्र दृष्टिकोण हेतु किया गया किन्तु 1980 के दशक से अर्थशास्त्रियों एवं अन्य समाजवैज्ञानिकों ने इस अवधारणा का व्यापक उपयोग किया। आर्थिक दृष्टि से वैश्वीकरण का आशय है राष्ट्रीय सीमाओं की बाधाओं को कम करना एवं समाप्त करना ताकि वस्तु, पूँजी, सेवा एवं श्रम का प्रवाह निर्विघ्न रूप में हो सके। समाज वैज्ञानिक दृष्टि से वैश्वीकरण की प्रक्रिया में व्यक्तियों की तीव्र गतिशीलता के परिणामस्वरूप बढ़ती अन्तःक्रिया, सूचना प्रौद्योगिकी क्रांति, सामाजिक आर्थिक एवं राजनीतिक प्रक्रियाओं में राज्य के हस्तक्षेप से मुक्ति, इत्यादि पहलू शामिल हैं। गाय ब्रेनबांट ने यह निष्कर्ष प्रतिपादित किया कि वैश्वीकरण की प्रक्रिया में न सिर्फ विश्व व्यापार का खुलना, संचार के तीव्र साधनों का विकास करना, वित्तीय बाजार का अन्तर्राष्ट्रीय, बहुराष्ट्रीय कम्पनियों के बढ़ते महत्व, जन प्रवास, व्यक्ति, वस्तु, पूँजी, आंकड़े एवं विचार की बढ़ती गतिशीलता, आदि पहलू शामिल हैं बल्कि संक्रमण, बीमारियाँ एवं प्रदूषण का वैश्विक प्रसार भी शामिल है।

इन तीनों (उदारीकरण, निजीकरण एवं वैश्वीकरण) प्रक्रियाओं का परिणाम सकारात्मक एवं नकारात्मक दोनों रूपों में परिलक्षित होता है। सकारात्मक परिणाम यह है कि इन प्रक्रियाओं ने रोजगार के नये विकल्पों के जरिये लोगों के जीवन में खुशियाँ लाई है तथा जीवन शैली एवं संस्कृति को गतिशील बनाया है। वैज्ञानिक एवं प्रौद्योगिकी उन्मेषों ने जीवन को सुखद एवं आरामदायक बना दिया है। उदाहरणार्थ 1991 में भारत में महज 10 प्रतिशत लोगों के पास टेलिवीजन था जिसकी आवृत्ति बढ़कर 2000 में 75 प्रतिशत हो गई। मोबाइल, कम्प्यूटर, इंटरनेट के उपयोग में भी क्रमशः वृद्धि परिलक्षित होती है। स्वचालित मशीनों के द्वारा रूपये की निकासी ने रूपयों के लेन देन को आसान बनाया है। सेवा क्षेत्रों में निजी प्रतियोगिताओं के परिणामस्वरूप आम लोगों को प्राप्त होने वाले अवसर एवं विकल्प बढ़े हैं।

दूसरी ओर इन प्रक्रियाओं के नकरात्मक परिणाम भी उत्पन्न हुए हैं। इन प्रक्रियाओं पर आधारित विकास का ढाँचा कम्प्यूटर एवं रोबोट जैसी आधुनिक प्रौद्योगिकी द्वारा संचालित होने के कारण श्रम विस्थापक है जिसमें श्रम, नियोजन एवं रोजगार के अवसर सीमित एवं विशेषीकृत हो गए हैं। निजी विकास प्रक्रिया ने सामाजिक आर्थिक विषमता की खाई को अधिक बढ़ाया है। बहुराष्ट्रीय कम्पनियों ने देश के कुटीर उद्योगों को रौंद दिया है। ये प्रक्रियाएँ वस्तुतः स्वावलम्बी बनाने की बजाय पराश्रयता एवं आर्थिक-सांस्कृतिक नव साम्राज्यवाद की ओर ले जाने वाली हैं। इन प्रक्रियाओं ने दुर्बल समूहों विशेषकर जनजातीय समाज के समक्ष कई नई चुनौतियाँ एवं समस्यायें उत्पन्न की हैं जैसे— वृहद् उद्योगों एवं परियोजनाओं की स्थापना हेतु जनजातियों को अपने परम्परागत भूस्वामीत्व खोने की चुनौती, कृषि एवं गैर कृषि उत्पादों को प्रतिस्पर्द्धात्मक बनाने की चुनौती, वन संपदा पर अपने परम्परागत अधिकार को खोने की चुनौती, मुक्त बाजार व्यवस्था में प्राप्त सरकारी अनुदान एवं सहायता को खोने की चुनौती, बेरोजगारी के बढ़ने की चुनौती, उपभोक्तावादी संस्कृति के विस्तार के कारण परम्परागत संस्कृति के क्षरण की चुनौती, इत्यादि। बाजार आधारित विकास के विविध नकारात्मक परिणामों के परिप्रेक्ष्य में प्रसिद्ध अर्थशास्त्री मकबूल उल हक ने यह

निष्कर्ष दिया कि विकास का वह ढाँचा जिसमे भौतिक विकास को ही आधारभूत माना जाय एवं व्यक्ति को केन्द्र न बनाया जाय वह वगैर आत्मा का विकास कहा जायेगा।

डेविड हेल्ड एवं एँथनी मैक्ग्रियू (2001) ने यह प्रतिपादित किया कि वैश्वीकरण के परिणाम की विवेचना तीन स्वरुपों में परिलक्षित होती हैः (अ) अतियुक्ति वैश्वीकरणवादी जिनकी मान्यता यह है कि समसामयिक आर्थिक वैश्वीकरण की प्रक्रिया ने राष्ट्र राज्य की संप्रभुत्ता एवं स्वायत्तता पर ग्रहण उत्पन्न किया है (ब) संशयवादी जिसकी दृष्टि में वैश्विक अन्तःनिर्भरता की गहनता को अतिरंजित करके पेश किया गया है तथा (स) रुपान्तरणवादी जो यह प्रदर्शित करते हैं कि वैश्वीकरण ने किस प्रकार क्षेत्रीय पुनर्गठन एवं आर्थिक, राजनीतिक, सैन्य एवं सांस्कृतिक शक्तियों की पुनर्रचना की है।

पीयर फीस एवं पाल हिर्स्क (2005) ने वैश्वीकरण परिणाम विमर्श के निम्न तीन प्ररुप बतायाः सकारात्मक, तथस्थ एवं नकारात्मक। सकारात्मक प्ररुप में नव उदारवादियों (मिल्टन फ्रीडमैन, सैच्स, इत्यादि) ने यह दर्शाया कि वैश्वीकरण की प्रक्रिया आर्थिक सम्पन्नता एवं अवसरों की वृद्धि, स्त्रोतों के सक्षम वितरण, रोजगार सृजन, जीवन की गुणवत्ता को बढ़ाने में आधारभूत है। वैश्विक गाँव की अवधारणा के जरिए मार्शल मैक्लूहान ने यह प्रतिपादित किया कि वैश्वीकरण की प्रक्रिया ने विश्व के सभी देशों को सामूहिक हितों के लिए एकीकृत किया है। तटस्थ प्ररुप में अन्तराष्ट्रीय वित्तीय संस्थाओं की भूमिका का विश्लेषण वालस्ट्रीट जरनल में प्रकाशित लेखों एवं अन्य पुस्तकों के माध्यम से किया गया, किन्तु वैश्वीकरण के राजनीतिकरण की प्रक्रिया के कारण इसके नहीं बन आर्थिक विश्लेषण तक सीमित रहने का प्ररुप अधिक लोकप्रिय सका। नकारात्मक स्वरुप में वैश्वीकरण के आलोचकों के सरोकार विकसित एवं विकासशीन देशों के परिप्रेक्ष्य में बँटे हुए दिखते हैं जिनमें पर्यावरण प्रदूषण, राष्ट्रीय संप्रभुत्ता का ह्रास, श्रमिकों के शोषण, श्रमिक संघो का कमजोर होना, आर्थिक असमानता में वृद्धि जैसे विविध दुष्परिणामों की विवेचना की गई है। जोसेफ स्टिगलिट्ज एवं एंड्रयू चार्लटन जैसे विचारकों ने वैश्वीकरण के कारण होनेवाले असमान आर्थिक विकास के परिप्रेक्ष्य में इसके नकारात्मक परिणामों को दर्शाया है। नोआम चॉमस्की ने तो यह निष्कर्ष दिया कि वैश्वीकरण की अवधारणा विशिष्ट प्रकार के अन्तरराष्ट्रीय आर्थिक समन्वय को संबोधित करने हेतु शक्तिशाली द्वारा अपनायी गई अवधारणा है जो पूँजीपतियों (धन लगानेवालों) के हितों एवं अधिकारों पर आधारित है एवं जिसमें आमजनों के हित नैमित्तिक हैं।

वैश्वीकरण के परिणामों की विवेचना का एक अन्य स्वरुप है: रचनात्मक प्ररुप, जिसकी मान्यता यह है कि अन्तराष्ट्रीय सहयोग एवं समन्वय के द्वारा समस्याओं का निदान किया जा सकता है किन्तु साथ साथ यह भी एक तथ्य है कि वैश्वीकरण की प्रक्रिया ने विविध नकारात्मक परिणाम उत्पन्न किया है। सन् 2001 में विश्व सामाजिक फोरम की स्थापना के साथ एक वैश्विक आन्दोलन का सूत्रपात भी हुआ है जिसके द्वारा अन्तरराष्ट्रीय समन्वय की कोशिशें जारी हैं। इस नये प्रकार के आन्दोलन को वैश्वीकरण विरोधी आन्दोलन की बजाय वैश्वीकरण विकल्पी आन्दोलन के रुप में सम्बोधित किया गया है जिसमें आर्थिक हितों से आगे जनतांत्रिक मूल्यों के संरक्षण, न्यायपूर्ण आर्थिक वितरण, पर्यावरण पोषण एवं मानवधिकारों की सुरक्षा जैसे लक्ष्य एवं सरोकार शामिल है।

अभ्यास प्रश्न

1. अर्जन की आवश्यकता सम्बन्धी सिद्धान्त किसने प्रतिपादित किया?

अ. मैक्कलिलैंड ब. मैक्स वेबर

स. रमेल्सर द. टायनबी

2. वैश्वीकरण की नीति भारत में किस वर्ष अपनाई गई?

अ. 1985 ब. 1987

स. 1991 द. 1993

3. अपनी आन्तरिक शक्तियों के कारण अपने आप होने वाले परिवर्तन को कहा जाता है:

अ. प्रगति ब. विकास

स. आधुनिकीकरण द. उद्विकास

4. धर्म सुधार आन्दोलन सामाजिक परिवर्तन का निम्नलिखित में से कौन सा कारक है?

अ. आन्तरिक कारक व. वाह्य कारक

स. गैर सामाजिक कारक द. प्रौद्योगिक कारक

5. "प्रवास वस्तुतः वास्तविक कमाई की प्राप्ति की बजाय आकांक्षी कमाई के कारण होता है।" यह कथन किसका है?

अ. आर्थर लेविस ब. फिन्डले

स. रेनिस द. टोडारो

13.9 सारांश

इन निष्कर्षों के आधार पर यह समीचीन है कि हम सामाजिक-आर्थिक विकास का ऐसा वैकल्पिक प्रारूप विकसित करें जो श्रम के विस्थापन एवं विषमताओं को कम करने के साथ-साथ स्वावलम्बन की ओर अग्रसरित करे।

13.10 अभ्यास प्रश्न के उत्तर

वस्तुनिष्ठ प्रश्नों के उत्तर:- 1. अ, 2. स, 3. द, 4. अ, 5. द

13.11 13.11 निबंधात्मक प्रश्न

1. सामाजिक परिवर्तन के स्रोत एवं कारकों की विवेचना कीजिए।

2. नगरीकरण क्या है? नगरीकरण के परिणामों की विवेचना कीजिए।

3. प्रवास क्या है? प्रवास के विभिन्न स्वरूप एवं कारण बताइये।

4. उद्योगिकरण से आपका क्या आशय है? उद्योगीकरण से उत्पन्न सामाजिक समस्याओं पर प्रकाश डालिये।

5. उदारीकरण, निजीकरण एवं वैश्वीकरण की प्रक्रिया ने भारतीय समाज एवं अर्थव्यवस्था को किस रूप में प्रभावित किया है।

13.12 संदर्भ सूची

1- Bremen, J. (1985) Of Peasants, Migrants and Paupers: Rural Labour Circulation and Capitalist Production in Western India, Oxford University Press: New Delhi.

2- Fei, JCH and Ranis, G. (1961) Theory of Economic Development, American Economic Review, No. 3.

3- Fiss, Peer and Hirsch, Pal (2005) “The Discourse of Globalization : Framing and Sensemaking of an Emerging Concept", American Sociological Review, • Vol 70, No 1, Feb 2005, pp. 29-52.

4- Findley, S. (1977) Planning for Internal Migration: A Review of Issues and Policies in Developing Countries, U.S. Development of Commerce, Bureau of the Census, Washington DC.

5- Giddens, Anthony (1998) Sociology, Polity Press, Cambridge.

6- Held, David and McGrew, Anthony (2001) "Globalization" an article in Joel Krieger (ed) Oxford Companion to Politics University Press, New York. of the World, Oxford

7- Jetley, S. (1987) "Impact of Male Migration on Rural Females", Economic and Political Weekly, Vol. 22, No. 44

8- Johnson, H.M. (1983) Sociology, Allied Publishers Pvt. Ltd., New Delhi.

इकाई-14 वैश्वीकरण और मानव विकास

इकाई विवरण

14.1 प्रस्तावना

14.2 उद्देश्य

14.3 वैश्वीकरण: अर्थ ,परिभाषा, प्रकार

- **14.3.1 राजनीतिक वैश्वीकरण**
- **14.3.2 आर्थिक वैश्वीकरण**
- **14.3.3 सामाजिक वैश्वीकरण**
- **14.3.4 सांस्कृतिक वैश्वीकरण**
- **14.3.5 पर्यावरणीय वैश्वीकरण**

14.4 मानव विकास –प्रमुख सूचकांक एवं उनके मापक

14.5 वैश्वीकरण का मानव विकास पर प्रभाव

- **14.5.1 सकारात्मक प्रभाव**
- **14.5.2 नकारात्मक प्रभाव**
- **14.5.3 भारतीय परिप्रेक्ष्य में वैश्वीकरण और मानव विकास**

14.6 वैश्वीकरण: चुनौतियाँ एवं अवसर

14.7 सारांश

14.8 शब्दावली

14.9 स्वमूल्यांकित प्रश्न

14.10 संदर्भ ग्रंथ सूची

14.11 निबंधात्मक प्रश्न

14.12 सहायक पाठ्य सामग्री

14.1 प्रस्तावना

वैश्वीकरण और मानव विकास, दोनों ही मनुष्य के जीवन की गुणवत्ता को बढ़ाने का दावा करते हैं; हालाँकि, इन दोनों का मार्ग भिन्न है। वैश्वीकरण में जहाँ मुक्त व्यापार, न्यूनतम सरकार और मूल्य-तटस्थता की प्रवृत्ति देखने को मिलती है, वहीं इसका प्रमुख लक्ष्य दुनिया भर में वस्तुओं, सेवाओं, पूँजी और ज्ञान के मुक्त संचार के माध्यम से *उत्पादन की संभावनाओं* तथा *उपभोक्ता विकल्पों* को बढ़ाना है। वैश्वीकरण के समर्थक कहते हैं कि वैश्वीकरण से मजदूरी, ब्याज और अन्य कारकों की कीमतें सभी देशों में समान होने लगती हैं। वास्तविकता यह है की यह केवल पूँजी पर कुछ हद तक होता है; मजदूरी में अभी भी बहुत अंतर बना हुआ है।

इसके विपरीत, मानव विकास केवल आर्थिक वृद्धि पर निर्भर नहीं करता, बल्कि मनुष्य के समग्र कल्याण पर ज़ोर देता है। यह शिक्षा, स्वास्थ्य, पोषण, जीवन प्रत्याशा और सामाजिक सुरक्षा जैसे पहलुओं के विस्तार की पैरवी करता है। ऐसे व्यापक मानवीय लक्ष्यों को प्राप्त करने के लिए एक *सक्रिय और हस्तक्षेपकारी सरकार* की आवश्यकता होती है, जो सामाजिक न्याय, समानता और मानव-कल्याण जैसे मूल्यों को प्राथमिकता दे।आज स्थिति यह है कि अंतरराष्ट्रीय संस्थान और पश्चिमी देश *वित्तीय सहायता* तथा *वैश्विक समृद्धि* के नाम पर विकासशील देशों पर नीतिगत शर्तें थोपते दिखाई देते हैं, जबकि स्वयं जिम्मेदारियों से बचते हुए नज़र आते हैं। यह द्वंद्व वैश्विक व्यवस्था में (voice और exit) अंतर को उजागर करता है—जहाँ शक्तिशाली देश निर्देश तो देते हैं, पर दायित्वों से पीछे हट जाते हैं। इस सब के चलते यह व्यापक धारणा विकसित हो रही है कि क्या वैश्वीकरण मानव विकास को बढ़ा रहा है या असमानताओं को गहरा कर रहा है?

विश्व स्तर पर इन परिस्थितियों में सरकार और बाज़ार के बीच संतुलन स्थापित करना अत्यंत आवश्यक है। यही संतुलन बाज़ार को मुक्त एवं सुगम बनाते हुए, उसे *लाभ-केंद्रित* से *मानव-केंद्रित* दिशा में मोड़ सकता है। केवल बाज़ार-प्रधान नीतियाँ अक्सर अमीर और ग़रीब के बीच की खाई को बढ़ाती हैं। इसलिए यह आवश्यक है कि वैश्वीकरण और मानव विकास के उद्देश्यों के बीच निरंतर संवाद, मूल्यांकन और पुनर्निर्धारण होता रहे, ताकि वैश्विक और स्थानीय दोनों स्तरों पर विकास न्यायसंगत, समावेशी और मानवीय बन सके।

14.2 उद्देश्य

इस अध्याय के अध्ययन के उपरांत विद्यार्थी निम्नलिखित उद्देश्यों को प्राप्त कर सकेंगे—

- वैश्वीकरण की अवधारणा को समझना तथा उसके अर्थ, स्वरूप और ऐतिहासिक विकास का सम्यक् ज्ञान प्राप्त करना।
- वैश्वीकरण के विभिन्न प्रकारों आर्थिक, राजनीतिक, सामाजिक, सांस्कृतिक एवं पर्यावरणीय का अध्ययन एवं विश्लेषण कर सकेंगे ।
- मानव विकास की संकल्पना को स्पष्ट रूप से समझना तथा इसे पारंपरिक आर्थिक विकास दृष्टिकोण से भिन्न रूप में पहचान सकेंगे ।
- वैश्वीकरण के मानव विकास पर पड़ने वाले सकारात्मक एवं नकारात्मक प्रभावों का विवेचन कर सकेंगे ।
- भारतीय परिप्रेक्ष्य में वैश्वीकरण और मानव विकास के अंतर्संबंधों का मूल्यांकन कर सकेंगे।
- न्यायसंगत, समावेशी एवं मानव-केंद्रित वैश्वीकरण की आवश्यकता को समझ सकेंगे।
- सतत विकास, सामाजिक न्याय और मानवाधिकारों के संदर्भ में वैश्वीकरण के भविष्य की दिशा पर विचार कर पाएंगे।

14.3 वैश्वीकरण – अर्थ ,परिभाषा, प्रकार

ऐतिहासिक दृष्टि से देखें तो वैश्वीकरण का सर्वप्रथम और सबसे प्राचीन रूप पर्यावरणीय वैश्वीकरण के रूप में सामने आता है। मनुष्य के साथ-साथ विभिन्न जीव–जंतुओं और पौधों का प्रवास, तथा समय-समय पर घटित जलवायु परिवर्तन, ऐसे प्रमुख कारक रहे हैं जिन्होंने विश्व के अनेक क्षेत्रों को सकारात्मक और नकारात्मक—दोनों प्रकार से प्रभावित किया। मानव इतिहास में कई महामारियाँ इसी पर्यावरणीय-जैविक अंतःक्रिया के माध्यम से एक क्षेत्र से दूसरे क्षेत्र में पहुँचीं। उदाहरणस्वरूप—मिस्र (Egypt) से फैला चेचक (स्मॉलपॉक्स) तथा एशिया से उत्पन्न प्लेग ने व्यापक जनहानि कर वैश्विक संपर्कों की जटिलता को उजागर किया।

औद्योगीकरण के पश्चात संचार और यातायात के साधनों के विकास, आविष्कार तथा तीव्र प्रसार ने वैश्विक संपर्कों का दायरा और तीव्रता अभूतपूर्व रूप से बढ़ा दी। वस्तुओं, सेवाओं, विचारों और जनसंख्या का आवागमन सरल और तीव्र हो गया, जिससे वैश्वीकरण की प्रक्रिया अधिक संगठित और संरचित स्वरूप ग्रहण करने लगी।

वर्तमान स्वरूप के वैश्वीकरण की वास्तविक शुरुआत बीसवीं शताब्दी के उत्तरार्ध में विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी के क्षेत्र में हुए उल्लेखनीय अनुसंधानों, विशेष रूप से कंप्यूटिंग, संचार तकनीक, इंटरनेट तथा उपग्रह प्रणाली के विकास से मानी जाती है। इन तकनीकी प्रगतियों ने विश्व को 'वैश्विक गाँव' में परिवर्तित कर दिया और मानव विकास की प्रक्रियाओं को नई दिशा प्रदान की। सरल शब्दों में, वैश्वीकरण विश्व के सभी देशों के बीच बढ़ते हुए अंतरसंबंध और परस्पर निर्भरता को दर्शाता है।

हेल्ड एवं अन्य (1999) के अनुसार, वैश्वीकरण का तात्पर्य विश्वव्यापी संपर्कों को विस्तृत, गहरा और तीव्र बनाना है। इसलिए इसे वैश्विक गाँव (global village) या ' विश्व का संकुचन' जैसे शब्दों से भी परिभाषित किया जाता है। कई अन्य विशेषज्ञ भी वैश्वीकरण को समय और स्थान का संकुचन कहते हैं, क्योंकि आज दूसरों से जुड़ने और लंबी दूरी की यात्रा करने में पहले की तुलना में बहुत कम समय लगता है। डेविड हेल्ड एवं उनके सहयोगियों के अनुसार वैश्वीकरण पर होने वाली अधिकांश चर्चाएँ मूलतः तीन व्यापक सैद्धान्तिक धाराओं में विभाजित की जा सकती हैं। ये धाराएँ वैश्वीकरण की प्रकृति, उसकी तीव्रता तथा राष्ट्र-राज्य पर उसके प्रभाव के विषय में भिन्न-भिन्न दृष्टिकोण प्रस्तुत करती हैं। डेविड हेल्ड के अनुसार, ये तीन प्रमुख धाराएँ हैं - हाइपरग्लोबलिस्ट, संशयवादी, तथा परिवर्तनवादी।

1. **हाइपरग्लोबलिस्ट सिद्धांत (Hyperglobalists)** – हाइपरग्लोबलिस्ट वैश्वीकरण का सबसे आशावादी और अपेक्षाकृत चरम दृष्टिकोण प्रस्तुत करते हैं। उनके अनुसार वैश्वीकरण एक ऐसी प्रक्रिया है जिसके परिणामस्वरूप 'सीमाहीन विश्व' का निर्माण हो रहा है, जहाँ विश्व एक पूर्णतः परस्पर-संबद्ध इकाई तथा वास्तविक वैश्विक अर्थव्यवस्था के रूप में परिवर्तित होता जा रहा है। इस स्थिति में पूँजी, वस्तुएँ, तकनीक और श्रम राष्ट्रीय सीमाओं से परे स्वतंत्र रूप से संचालित होते हैं। परिणामस्वरूप राष्ट्र-राज्य की आर्थिक भूमिका लगभग अप्रासंगिक होती जा रही है और बहुराष्ट्रीय कंपनियाँ तथा वैश्विक बाज़ार प्रमुख शक्ति के रूप में उभर रहे हैं। केनिची ओहमे और थॉमस फ्रीडमैन इस दृष्टिकोण के प्रमुख समर्थक माने जाते हैं।
2. **संशयवादी सिद्धांत (Sceptics)** - संशयवादी विद्वान हाइपरग्लोबलिस्टों के वैश्वीकरण संबंधी दावों पर प्रश्नचिह्न लगाते हैं और उन्हें अतिरंजित मानते हैं। उनके अनुसार जिसे आज 'वैश्वीकरण' कहा जा रहा है, वह

वास्तव में सीमित अंतरराष्ट्रीयकरण और क्षेत्रीयकरण से अधिक नहीं है। आर्थिक गतिविधियाँ आज भी मुख्यतः कुछ विकसित क्षेत्रों जैसे उत्तरी अमेरिका, यूरोप और पूर्वी एशिया तक केंद्रित हैं, जबकि भारत सहित अधिकांश विकासशील देश इस प्रक्रिया में अपेक्षाकृत हाशिये पर हैं। इसके अतिरिक्त, वे इस धारणा को अस्वीकार करते हैं कि राष्ट्र-राज्य अप्रासंगिक हो गए हैं; बल्कि उनका तर्क है कि सरकारें अब भी कराधान, विदेशी निवेश और नियामक नीतियों के माध्यम से महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाती हैं। पॉल हर्स्ट और ग्रेम थॉम्पसन इस दृष्टिकोण के प्रमुख समर्थक हैं।

3. **परिवर्तनवादी सिद्धांत (Transformationalists) -** परिवर्तनवादी सिद्धांत वैश्वीकरण पर चल रही बहस में हाइपरग्लोबलिस्टों की अति-आशावादी दृष्टि और संशयवादियों की नकारात्मकता के बीच एक 'मध्य मार्ग' प्रस्तुत करता है। इस दृष्टिकोण के अनुसार वैश्वीकरण न तो राष्ट्र-राज्य के अधिकारों का अंत करता है और न ही यह कोई अतिरंजित मिथक है, बल्कि यह एक निरंतर चलने वाली, गहन और बहुआयामी परिवर्तनकारी प्रक्रिया है। तकनीकी नवाचार, संचार क्रांति और बढ़ती परस्पर-संबद्धता के कारण राजनीति, अर्थव्यवस्था, समाज और संस्कृति के स्वरूप में महत्वपूर्ण परिवर्तन हुए हैं, किंतु इन परिवर्तनों को एकरूप या सार्वभौमिक नहीं माना जा सकता। परिवर्तनवादी मानते हैं कि राष्ट्र-राज्य समाप्त नहीं हो रहा, बल्कि उसकी भूमिका, कार्य-प्रणाली और शक्ति-संरचना में परिवर्तन आ रहा है। वैश्वीकरण के प्रभाव विभिन्न देशों, क्षेत्रों और सामाजिक समूहों में असमान रूप से प्रकट होते हैं—जैसे भारत में आईटी और सेवा क्षेत्रों का वैश्विक एकीकरण तो तीव्र है, पर सांस्कृतिक और सामाजिक स्तर पर स्थानीय परंपराएँ अब भी सशक्त बनी हुई हैं। डेविड हेल्ड, एंथनी मैकग्रू और एंथनी गिडेन्स इस सिद्धांत के प्रमुख प्रवर्तक माने जाते हैं।

हालाँकि, वैश्वीकरण की प्रक्रिया हमेशा एक ही दिशा में नहीं बढ़ती। जब देश वैश्विक एकीकरण और परस्पर निर्भरता को कम करके **राष्ट्रीय हितों** को प्राथमिकता देने लगते हैं, तो इसे वि-वैश्वीकरण (de-globalization) कहा जाता है। वर्तमान में (राष्ट्रपति ट्रंप के कार्यकाल) अमेरिका की नीतियों में यह स्पष्टतया दृष्टिगोचर होता है। मुख्य रुप से वैश्वीकरण के तीन निम्न प्रकार हैं - राजनीतिक, समाजिक एवं आर्थिक इसके अतिरिक्त कुछ अन्य प्रकार भी हैं–

14.3.1 राजनीतिक वैश्वीकरण (Political Globalization)

डेविड हेल्ड के अनुसार: "वैश्वीकरण विश्वव्यापी परस्पर-संबंधों के विस्तार, गहनता और तीव्रता की प्रक्रिया है।"

एंथनी मैकग्रू के अनुसार: "वैश्वीकरण ऐसी प्रक्रियाओं को दर्शाता है जो महाद्वीपों और क्षेत्रों के पार गतिविधियों, अंतःक्रियाओं और शक्ति के प्रवाह को जन्म देती हैं।"

राष्ट्र-राज्यों के मध्य राजनीतिक सम्बन्धों, कूटनीतिक वार्ताओं और सामूहिक नीतियों के समन्वय का बढ़ना ही राजनीतिक वैश्वीकरण कहलाता है। इसका विस्तार यह दर्शाता है कि राजनीतिक निर्णय लेने की प्रक्रिया एवं अन्य सामूहिक अधिकार अब राष्ट्र-सीमाओं से आगे बढ़कर अंतर्राष्ट्रीय एवं अतिराष्ट्रीय संस्थाओं द्वारा भी प्रभावित किए जा रहे हैं। विद्वानों के अनुसार, राजनीतिक वैश्वीकरण की प्रक्रिया में वैश्विक राजनीतिक परस्पर निर्भरता, नीतिगत

समन्वय और साझा शासन संरचनाएँ विकसित होती हैं। इसकी एक प्रमुख विशेषता यह है कि इसके माध्यम से वैश्विक शासन को बढ़ावा मिला है, जिसके अंतर्गत संयुक्त राष्ट्र , विश्व व्यापार संगठन और अंतरराष्ट्रीय मुद्रा कोष जैसी संस्थाएँ व्यापार, कानून, मानवाधिकार, शांति स्थापना और निवेश से संबंधित नियम एवं नीतियाँ निर्धारित करती हैं। राजनीतिक वैश्वीकरण में क्षेत्रीय सहयोग भी शामिल है। उदाहरणस्वरूप, EU, ASEAN, SAARC और African Union जैसे संगठन नीतियों का समन्वय करते हैं, समझौते लागू करते हैं और रक्षा, अर्थव्यवस्था तथा विकास के लिए सामूहिक तंत्र विकसित करते हैं। इसका लाभ यह है कि इससे एक वैश्विक कानूनी व्यवस्था का निर्माण हुआ, जो युद्ध अपराधों को रोकने, अंतरराष्ट्रीय संघर्षों को नियंत्रित करने और सरकारों को जवाबदेह बनाने में सहायक है। हालाँकि इसका, आलोचनात्मक पक्ष यह है की यह राष्ट्रीय संप्रभुता को कमज़ोर करता है। इसके परिणामस्वरूप शक्तिशाली देश या संस्थाएँ कमजोर राष्ट्रों के आंतरिक मामलों में हस्तक्षेप करने लगते हैं।

14.3.2 आर्थिक वैश्वीकरण (Economic Globalization)

अंतरराष्ट्रीय मुद्रा कोष (IMF) के अनुसार: "वैश्वीकरण का अर्थ वस्तुओं और सेवाओं के सीमा-पार लेन-देन में वृद्धि के माध्यम से देशों के बीच बढ़ती आर्थिक परस्पर-निर्भरता है।"

विश्व बैंक (World Bank) के अनुसार: "वैश्वीकरण व्यक्तियों और कंपनियों को अन्य देशों के निवासियों के साथ स्वैच्छिक आर्थिक लेन-देन की स्वतंत्रता और क्षमता प्रदान करता है।"

"वैश्वीकरण वह परिवर्तन है जिसके अंतर्गत विशिष्ट और पृथक राष्ट्रीय अर्थव्यवस्थाओं की दुनिया से आगे बढ़कर एक ऐसी वैश्विक अर्थव्यवस्था का निर्माण होता है, जिसमें उत्पादन का अंतरराष्ट्रीयकरण हो जाता है और वित्तीय पूँजी देशों के बीच स्वतंत्र रूप से तथा त्वरित गति से प्रवाहित होती है।"
— *(किनाबो, 2004)*

आर्थिक वैश्वीकरण केवल देशों के बीच बढ़ती आर्थिक परस्पर-निर्भरता तक सीमित नहीं है, बल्कि यह 'गहन एकीकरण' को दर्शाता है, जिसमें उत्पादन, वितरण और उपभोग एक समेकित वैश्विक बाज़ार के रूप में संगठित होते हैं। शीत युद्ध के बाद नव-उदारवादी नीतियों—जैसे उदारीकरण, निजीकरण, विनियमन-मुक्त बाजार और मुक्त व्यापार—ने इस प्रक्रिया को तीव्र किया। बहुराष्ट्रीय कंपनियाँ जैसे एप्पल, टोयोटा, HSBC और स्पेस-एक्स विभिन्न देशों में उत्पादन, निवेश और आपूर्ति शृंखलाएँ संचालित करती हैं।

आर्थिक वैश्वीकरण के अंतर्गत मुक्त व्यापार, **प्रत्यक्ष विदेशी निवेश (FDI),** वैश्विक मूल्य शृंखलाएँ, आउटसोर्सिंग और पूँजी का त्वरित सीमा-पार प्रवाह शामिल हैं। इसके परिणामस्वरूप विकासशील देशों में रोज़गार के अवसर बढ़े हैं और उपभोक्ताओं को सस्ते तथा विविध उत्पाद उपलब्ध हुए हैं, किंतु साथ ही श्रम-शोषण, असमानता, राष्ट्रीय संप्रभुता के क्षरण और विकसित देशों में रोज़गार ह्रास जैसी गंभीर चुनौतियाँ भी उत्पन्न हुई हैं। इस प्रकार आर्थिक वैश्वीकरण विश्व अर्थव्यवस्था को एकीकृत करता है, पर इसके लाभ और हानियाँ असमान रूप से वितरित होती हैं।

14.3.3 सामाजिक वैश्वीकरण (Social Globalization)

एंथनी गिडेन्स (Anthony Giddens): "वैश्वीकरण सामाजिक संबंधों की वह तीव्रता है जिसमें दूरस्थ स्थान एक-दूसरे से इस प्रकार जुड़ जाते हैं कि स्थानीय घटनाएँ दूर घटने वाली घटनाओं से प्रभावित होती हैं।"

रोलैंड रॉबर्टसन (Roland Robertson): वैश्वीकरण का अर्थ है विश्व का संकुचन तथा लोगों में पूरे विश्व के एक इकाई होने की चेतना का विस्तार ।

सामाजिक वैश्वीकरण सामाजिक वैश्वीकरण, जिसे समाजशास्त्रीय वैश्वीकरण भी कहा जाता है, समाजों के आपसी एकीकरण और परस्पर जुड़ाव की प्रक्रिया को संदर्भित करता है। इसे सांस्कृतिक वैश्वीकरण से अलग समझना आवश्यक है, क्योंकि संस्कृति जीवन-शैली और मूल्यों से जुड़ी होती है, जबकि समाज उन लोगों का समूह है जो परस्पर संपर्क में रहते हैं। आज ऐसा प्रतीत होता है कि हम अलग-अलग समाजों के बजाय एक साझा वैश्विक समाज में रह रहे हैं। परंपरागत रूप से समाजों की स्पष्ट भौगोलिक सीमाएँ थीं और दूरी का महत्त्व था। किंतु वैश्वीकरण के साथ यह स्थिति बदल गई है। जान ए. स्कोल्टे (2005) ने इस परिवर्तन को 'अतिभौगोलिकता' (supraterritoriality) या 'अक्षेत्रीयकरण' (deterritorialization) कहा, जिसमें सामाजिक संबंध अब भौगोलिक सीमाओं से बंधे नहीं रह गए हैं। मोबाइल फोन, इंटरनेट और हवाई यात्रा ने स्थान और दूरी की अवधारणा को बदल दिया है। डेविड हार्वे (1990, 2009) ने इस प्रक्रिया को 'समय–स्थान संकुचन' (time/space compression) कहा। इसका अर्थ है कि सूचना, संपर्क और लेन-देन अब लगभग तात्कालिक हो गए हैं, जिससे जीवन की गति तेज़ हो गई है। घटनाएँ, यात्राएँ और सामाजिक-आर्थिक गतिविधियाँ पहले की तुलना में कहीं अधिक शीघ्र संपन्न होती हैं। सामाजिक वैश्वीकरण का संबंध सांस्कृतिक समरूपीकरण से भी जुड़ता है, जहाँ लोग एक-सी वस्तुएँ उपभोग करते हैं, समान मीडिया देखते हैं और वैश्विक ब्रांडों व हस्तियों का अनुसरण करते हैं। हालाँकि, इसे कई विद्वान 'सांस्कृतिक साम्राज्यवाद' के रूप में भी देखते हैं, जिसमें शक्तिशाली राष्ट्र कमजोर समाजों पर अपनी संस्कृति थोपते हैं। इसके प्रतिउत्तर में स्थानीयकरण, बहुसंस्कृतिवाद, भाषाई-सांस्कृतिक पुनरुत्थान, धार्मिक पहचान और राष्ट्रवाद का पुनर्जागरण भी देखने को मिलता है।

अंततः सामाजिक वैश्वीकरण के दो प्रमुख तत्व माने जाते हैं—**उपभोक्तावाद** और **व्यक्तिवाद ।** वैश्विक ब्रांडों और विज्ञापन ने गहरा मनोवैज्ञानिक प्रभाव डाला है, जिसे मार्क्सवादी चिंतकों ने **'वस्तु-पूजा'** (commodity fetishism) कहा है। इस प्रकार सामाजिक वैश्वीकरण समाजों को अधिक जुड़ा हुआ बनाता है, लेकिन साथ ही नई असमानताओं और पहचान-संकटों को भी जन्म देता है।

14.3.4 सांस्कृतिक वैश्वीकरण (Cultural Globalization)

सांस्कृतिक वैश्वीकरण से आशय विभिन्न संस्कृतियों के बीच सीमाओं से परे स्वतंत्र, निर्भीक और तीव्र अंतःक्रिया से है। तकनीकी प्रगति, विशेषतः सूचना एवं संचार प्रौद्योगिकी, ने सामाजिक प्रक्रियाओं को उनके राष्ट्रीय और भौगोलिक दायरों से बाहर निकाल दिया है। इसके परिणामस्वरूप परस्पर-निर्भरता, एकीकरण और सूचना प्रवाह ने राष्ट्रीय संस्कृतियों के स्थान पर उपभोक्तावाद-आधारित एक वैश्विक संस्कृति को बढ़ावा दिया है। उत्पादन, उपभोग, रुचियाँ, मूल्य, विश्वास और अर्थ अब किसी एक राष्ट्र तक सीमित नहीं रहे। आधुनिक मीडिया, सोशल मीडिया और डिजिटल संचार सांस्कृतिक वैश्वीकरण के प्रमुख वाहक हैं। इसे कई विद्वान 'मीडिया साम्राज्यवाद' की संज्ञा भी देते हैं। साइबर स्पेस ने सामाजिक जीवन को इस हद तक प्रभावित किया है कि आज समाज की स्थिति धन से अधिक सूचना और संचार की पहुँच पर निर्भर हो गई है, जिससे राष्ट्रीय सीमाएँ धुंधली पड़ती जा रही हैं और नए प्रकार के सामाजिक संबंध उभर रहे हैं।

सांस्कृतिक वैश्वीकरण को लेकर विद्वानों में मतभेद हैं। सैमुअल पी. हंटिंगटन के अनुसार, उभरती विश्व व्यवस्था में संघर्ष का आधार विचारधारा या अर्थव्यवस्था नहीं, बल्कि संस्कृति और सभ्यता होंगी; उनके शब्दों में, "विश्व राजनीति सांस्कृतिक रेखाओं के अनुरूप पुनर्संरचित हो रही है।" इसके विपरीत, जान नेडरवीन पीटरसे 'संकरण (Hybridization)' की अवधारणा प्रस्तुत करते हैं, जिसके अनुसार संस्कृतियों का आपसी मिश्रण राष्ट्रवाद को कमजोर करता है और सांस्कृतिक शुद्धता के दावों को चुनौती देता है। वहीं, बहुराष्ट्रीय कंपनियों के प्रभाव से उत्पन्न सांस्कृतिक एकरूपता को 'मैकडोनल्डीकरण' या 'मैकवर्ल्ड' कहा गया है, जो वैश्विक पूँजीवादी संस्कृति की सर्वव्यापकता को दर्शाता है।

अर्जुन अप्पादुराई सांस्कृतिक वैश्वीकरण को सांस्कृतिक समरूपीकरण (homogenization) और सांस्कृतिक प्रवाह (cultural flows) के संदर्भ में देखते हैं। उनके अनुसार, अमेरिका जैसे प्रभुत्वशाली देश टेलीविजन, सिनेमा और मीडिया के माध्यम से अपनी संस्कृति का प्रसार करते हैं, जिससे स्थानीय और आदिवासी संस्कृतियों का क्षरण होता है और एक वैश्विक संस्कृति का उदय होता है। उदाहरणस्वरूप, डिज़्नी संस्कृति, उपभोक्तावाद, पंक म्यूज़िक, तथा वैश्विक जीवन-शैलियों का प्रसार। प्रवासन के कारण लोग ट्रांसनेशनल पहचान विकसित कर रहे हैं। इस प्रकार सांस्कृतिक वैश्वीकरण एक जटिल, बहुआयामी और विरोधाभासी प्रक्रिया है, जो एक ओर सांस्कृतिक विविधता को चुनौती देती है, तो दूसरी ओर नए सांस्कृतिक रूपों और पहचानों को जन्म देती है।

14.3.5 पर्यावरणीय वैश्वीकरण (Ecological Globalization)

पर्यावरणीय वैश्वीकरण से तात्पर्य उस धारणा से है जिसके अनुसार सम्पूर्ण विश्व को एक परस्पर-संबद्ध पारिस्थितिक तंत्र (interconnected ecosystem) के रूप में समझा जाना चाहिए। इसका मूल तर्क यह है कि पर्यावरणीय समस्याएँ जैसे वैश्विक ताप, जलवायु परिवर्तन, ओज़ोन परत का क्षरण, समुद्र-स्तर में वृद्धि, हिमनदों का पिघलना, सुनामी आदि राष्ट्रीय सीमाओं में बँधी नहीं होतीं, बल्कि इनका प्रभाव वैश्विक स्तर पर पड़ता है। इसलिए राष्ट्र-राज्य अकेले इन समस्याओं का समाधान नहीं कर सकते; इसके लिए सामूहिक और वैश्विक सहयोग अनिवार्य है।

वैश्वीकरण की प्रक्रिया ने पर्यावरणीय खतरों को वैश्विक स्वरूप प्रदान किया है। औद्योगीकरण, तकनीकी विकास और लाभ-आधारित अति-उपभोग ने प्रकृति की सहनशील सीमाओं को पार कर दिया है। विकसित देशों द्वारा संसाधनों के अत्यधिक दोहन का दुष्प्रभाव विकासशील और अल्प-विकसित देशों—विशेषकर दक्षिणी और द्वीपीय राष्ट्रों—पर अधिक पड़ता है। इससे उत्तर–दक्षिण विभाजन और गहरा हुआ है तथा पर्यावरणीय असुरक्षा, संसाधन-संकट और भविष्य में जल, वन और कृषि भूमि को लेकर संघर्ष की आशंकाएँ बढ़ी हैं। इस संदर्भ में कहा गया है कि "अर्थव्यवस्था और पारिस्थितिकी अब स्थानीय से लेकर वैश्विक स्तर तक कारण–परिणाम के एक निर्बाध जाल में गुँथ चुकी हैं।"

इन वैश्विक पर्यावरणीय चुनौतियों के समाधान हेतु अंतरराष्ट्रीय समझौते और गैर-राज्य अभिनेताओं की भूमिका बढ़ी है। ओज़ोन परत की रक्षा के लिए CFCs पर प्रतिबंध, जलवायु परिवर्तन से निपटने हेतु क्योटो प्रोटोकॉल और पेरिस जलवायु समझौता, तथा Greenpeace जैसे INGOs की सक्रियता इसके प्रमुख उदाहरण हैं। **'अर्थ आवर'** जैसे वैश्विक अभियान यह दर्शाते हैं कि पर्यावरणीय संकट अब केवल सरकारी नीति का विषय नहीं, बल्कि वैश्विक नागरिक चेतना का प्रश्न बन चुका है। इस प्रकार पर्यावरणीय वैश्वीकरण यह स्पष्ट करता है कि आज कोई भी संकट पृथक नहीं है, बल्कि सभी संकट आपस में गहराई से जुड़े हुए हैं।

14.4 मानव विकास – प्रमुख सूचकांक एवं उनके मापक

मानव विकास की अवधारणा को विशेष महत्व तब प्राप्त हुआ जब यह स्पष्ट हुआ कि केवल आर्थिक वृद्धि या औद्योगीकरण से मानव कल्याण सुनिश्चित नहीं किया जा सकता। अनेक विकसित देशों में उच्च जीडीपी, तीव्र औद्योगीकरण और भौतिक समृद्धि के बावजूद सामाजिक असमानता, भावनात्मक असुरक्षा, शांति का अभाव तथा मानव गरिमा से जुड़ी समस्याएँ बनी रहीं। पारंपरिक विकास दृष्टिकोण जहाँ सकल घरेलू उत्पाद (GDP), आय और उत्पादन-वृद्धि पर अत्यधिक बल देता है, वहीं मानव विकास दृष्टिकोण आर्थिक वृद्धि को केवल एक **साधन** मानता है, जबकि मानव कल्याण को साध्य के रूप में स्वीकार करता है।

मानव विकास की अवधारणा का सैद्धांतिक विकास महबूब-उल-हक के नेतृत्व में हुआ, जो अमर्त्य सेन की **क्षमता दृष्टिकोण (Capability Approach)** से गहराई से प्रभावित थी। इस दृष्टिकोण के अनुसार विकास का अर्थ केवल आय में वृद्धि नहीं, बल्कि मानव क्षमताओं का विस्तार, विकल्पों का विस्तार, स्वतंत्रताओं की वृद्धि तथा मानव अधिकारों की पूर्ति है। मानव विकास इस बात पर केंद्रित है कि लोग क्या बनने और क्या करने में सक्षम हैं।

मानव विकास के प्रमुख आयामों में दीर्घ एवं स्वस्थ जीवन (जीवन प्रत्याशा), ज्ञान तक पहुँच (शिक्षा) और गरिमापूर्ण जीवन स्तर शामिल हैं। इसके अतिरिक्त लैंगिक समानता, सामाजिक समावेशन, राजनीतिक स्वतंत्रता और मानव सुरक्षा को भी मानव विकास के महत्वपूर्ण आयाम माना जाता है।

इन आयामों को मापने के लिए संयुक्त राष्ट्र विकास कार्यक्रम (UNDP) द्वारा विभिन्न सूचकांकों का विकास किया गया है, जिनमें प्रमुख हैं— मानव विकास सूचकांक (HDI), लैंगिक विकास सूचकांक (GDI), लैंगिक सशक्तिकरण मापक (GEM) तथा बहुआयामी गरीबी सूचकांक (MPI)। ये सूचकांक विकास को एक व्यापक, मानव-केंद्रित और बहुआयामी दृष्टिकोण से समझने में सहायक हैं।

प्रमुख सूचकांक एवं मापदंड

	सूचकांक	उद्देश्य	प्रमुख मापदंड
1.	मानव विकास सूचकांक (Human Development Index – HDI)	किसी देश में मानव विकास के औसत स्तर को मापना	1. जीवन प्रत्याशा (स्वास्थ्य) 2. शिक्षा (औसत एवं अपेक्षित स्कूली वर्ष) 3. प्रति व्यक्ति GNI (PPP)
2.	लैंगिक विकास सूचकांक (Gender Development Index – GDI)	पुरुषों और महिलाओं के बीच मानव विकास में अंतर को मापना	HDI के ही तीन आयामों को पुरुष-महिला पृथक आँकड़ों के साथ मापता है
3.	लैंगिक सशक्तिकरण मापक (Gender Empowerment Measure – GEM)	राजनीतिक व आर्थिक क्षेत्रों में महिलाओं की भागीदारी को मापना	1. संसद में महिलाओं की भागीदारी 2. उच्च पदों पर महिलाएँ

			3. आय में हिस्सेदारी
4.	बहुआयामी गरीबी सूचकांक (Multidimensional Poverty Index – MPI)	गरीबी को केवल आय नहीं बल्कि जीवन स्थितियों के आधार पर मापना	1. स्वास्थ्य (पोषण, बाल मृत्यु दर) 2. शिक्षा (स्कूली शिक्षा के वर्ष, नामांकन) 3. जीवन स्तर (स्वच्छ पेयजल, स्वच्छता, आवास, बिजली , ईंधन, संपत्ति)
5.	वैश्विक भुखमरी सूचकांक (Global Hunger Index – GHI)	देश और क्षेत्र स्तर पर भुखमरी के स्तर को व्यापक रूप से मापना और ट्रैक करना।	1. अल्पपोषण (Malnutrition) 2. बाल नाटापन (Child Stunting) 3. बाल क्षीणता (Child Wasting) 4. बाल मृत्यु दर (Child Mortality Rate)
6.	लैंगिक असमानता सूचकांक (Gender Inequality Index – GII)	लैंगिक असमानता के *हानिकारक परिणामों* को मापना। यह GEM का आधुनिक और अधिक प्रचलित संस्करण है।	1. **प्रजनन स्वास्थ्य:** मातृ मृत्यु दर, किशोर प्रजनन दर। 2. **सशक्तिकरण:** संसद में सीटों का प्रतिशत, माध्यमिक या उच्चतर शिक्षा प्राप्त जनसंख्या। 3. **श्रम बाजार:** श्रम बल में भागीदारी दर।

14.5 वैश्वीकरण का मानव विकास पर प्रभाव

14.5.1 सकारात्मक प्रभाव

अक्सर आलोचनाओं का शिकार बनने के बावजूद, वैश्वीकरण ने आर्थिक, सामाजिक, तकनीकी और संस्थागत स्तर पर ऐसे व्यापक अवसर उत्पन्न किए हैं, जिनसे मानव जीवन की गुणवत्ता में उल्लेखनीय सुधार हुआ है। इस प्रक्रिया ने स्वास्थ्य, शिक्षा, आजीविका और सशक्तिकरण को गहराई से प्रभावित करते

हुए लोगों की क्षमताओं और विकल्पों का विस्तार किया है। मानव विकास पर इसके प्रमुख सकारात्मक प्रभाव निम्नलिखित हैं—

1. वैश्विक आपूर्ति श्रृंखलाओं तथा आईटी, वित्त और सेवा क्षेत्र के विस्तार से, विशेषकर विकासशील देशों में, बड़े पैमाने पर रोजगार सृजन हुआ है। बहुराष्ट्रीय कंपनियों के आगमन से पूँजी, तकनीक और प्रबंधन कौशल का हस्तांतरण हुआ, जिससे आय और उत्पादकता में वृद्धि हुई। प्रत्यक्ष विदेशी निवेश (FDI) ने औद्योगिकीकरण को गति देने के साथ-साथ बेहतर मजदूरी और कार्यस्थल मानकों को भी प्रोत्साहित किया है।
2. शिक्षा के क्षेत्र में वैश्वीकरण ने डिजिटल माध्यमों के जरिए विश्व-स्तरीय पाठ्य सामग्री और ऑनलाइन पाठ्यक्रमों को व्यापक रूप से सुलभ बनाया है, जिससे शिक्षा अधिक लोकतांत्रिक हुई है। स्वास्थ्य क्षेत्र में वैश्विक वैक्सीन अनुसंधान, दवाओं के विकास और चिकित्सा तकनीकों के आदान-प्रदान से रोग नियंत्रण और उपचार क्षमता में सुधार हुआ है।
3. वैश्विक श्रम बाजार, मानवाधिकार मानदंडों और एनजीओ नेटवर्कों ने महिलाओं, आदिवासियों, दिव्यांगों और अल्पसंख्यक समुदायों के अधिकारों और अवसरों को सशक्त किया है। साथ ही, पेरिस समझौता, सतत विकास लक्ष्य (SDGs), अंतर्राष्ट्रीय न्याय और **#मी टू (MeToo)** जैसे वैश्विक आंदोलनों ने जलवायु परिवर्तन, महामारी और सामाजिक असमानताओं से निपटने हेतु वैश्विक सहयोग और सामाजिक न्याय को मजबूत किया है।
4. तकनीकी नवाचार और सूचना क्रांति जैसे मोबाइल तकनीक, इंटरनेट बैंकिंग (UPI), ई-कॉमर्स और डिजिटल मार्केटिंग ने **डिजिटल समावेशन**, उद्यमिता और कृषि उत्पादकता में क्रांतिकारी परिवर्तन किए हैं।

14.5.2 नकारात्मक प्रभाव

वैश्वीकरण ने मानव विकास को केवल अवसर ही नहीं दिए, बल्कि नई असमानताएँ, असुरक्षाएँ और संरचनात्मक संकट भी उत्पन्न किए हैं। मानव विकास के दृष्टिकोण से देखें तो वैश्वीकरण ने क्षमता-विस्तार के साथ-साथ नई सीमाएँ और जोखिम भी पैदा किए हैं।

1. वैश्वीकरण का सबसे गंभीर दुष्परिणाम आय और अवसरों की असमानता का बढ़ना है। वैश्विक अर्थव्यवस्था में लाभ मुख्यतः विकसित देशों **(ग्लोबल नार्थ)** और बहुराष्ट्रीय कंपनियों तक सीमित रहा, जबकि विकासशील एवं गरीब देश **(ग्लोबल साउथ)** कच्चे माल, सस्ते श्रम और अनौपचारिक रोजगार तक सीमित रह गए।
2. तकनीकी वैश्वीकरण ने जहाँ सूचना और ज्ञान तक पहुँच बढ़ाई, वहीं **डिजिटल विभाजन** (Digital Divide) को भी गहरा किया। शहरी–ग्रामीण, अमीर–गरीब और विकसित–विकासशील देशों के बीच इंटरनेट, डिजिटल कौशल और तकनीकी अवसंरचना की असमान उपलब्धता ने शिक्षा, स्वास्थ्य और रोजगार के अवसरों को असमान बना दिया।

3. मुक्त व्यापार और बहुराष्ट्रीय कंपनियों की प्रतिस्पर्धा के कारण स्थानीय कुटीर उद्योग, लघु एवं मध्यम उद्योग गंभीर संकट में आ गए। विशेष रूप से कृषि और हस्तशिल्प आधारित समुदाय वैश्वीकरण के दबाव में हाशिये पर चले गए।
4. स्थायी नौकरियों के स्थान पर अस्थायी, अनुबंध आधारित और **गिग इकोनॉमी** का विस्तार हुआ, जिसमें श्रमिकों को सामाजिक सुरक्षा, पेंशन और स्वास्थ्य सुविधाएँ नहीं मिलतीं।
5. सांस्कृतिक वैश्वीकरण के कारण स्थानीय भाषाएँ, परंपराएँ और जीवन-शैलियाँ कमजोर हो रही हैं। उपभोक्तावादी और पश्चिमी संस्कृति के प्रसार से सांस्कृतिक समरूपीकरण (homogenization) बढ़ा है।
6. औद्योगिक विस्तार, अंधाधुंध संसाधन दोहन और उपभोगवादी जीवन-शैली ने जलवायु परिवर्तन, प्रदूषण और जैव विविधता ह्रास को बढ़ावा दिया है। पर्यावरणीय संकट का प्रभाव सबसे अधिक गरीब और विकासशील देशों पर पड़ा है, जिनके पास अनुकूलन की क्षमता कम है।
7. वैश्वीकरण और नव-उदारवादी नीतियों के तहत कई देशों में कल्याणकारी राज्य की भूमिका कमज़ोर हुई है। आम नागरिकों की मानव विकास से जुड़ी बुनियादी आवश्यकताएँ शिक्षा, स्वास्थ्य और सामाजिक सुरक्षा प्रभावित हुई हैं।
8. वैश्विक श्रम बाजार ने कुशल मानव संसाधन को विकसित देशों की ओर आकर्षित किया, जिससे ब्रेन ड्रेन की समस्या उत्पन्न हुई।
9. वैश्वीकरण के कारण पहचान की राजनीति, राष्ट्रवाद, नस्लवाद और आप्रवासन-विरोधी भावनाएँ बढ़ रही हैं।
10. अंतरराष्ट्रीय वित्तीय संस्थाओं, बहुराष्ट्रीय कंपनियों और वैश्विक बाज़ारों के प्रभाव से नीतिगत संप्रभुता सीमित हुई है और लोकतांत्रिक निर्णय-प्रक्रिया भी प्रभावित हुई है।

14.5.3 भारतीय परिप्रेक्ष्य में वैश्वीकरण और मानव विकास

भारत में 1991 के आर्थिक सुधारों और वैश्वीकरण की प्रक्रिया ने मानव विकास को गहराई से प्रभावित किया है। उदारीकरण, निजीकरण और वैश्विक एकीकरण के बाद शिक्षा, स्वास्थ्य, कौशल विकास और आय के नए अवसर उत्पन्न हुए, विशेषतः आईटी और सेवा क्षेत्र के विस्तार ने रोजगार, शहरी विकास और वैश्विक संपर्क को बढ़ावा दिया। प्रवासी भारतीयों (NRIs) से प्राप्त **रेमिटेंस** ने घरेलू आय, उपभोग और निवेश को सशक्त किया, जबकि मानव विकास संकेतकों जैसे जीवन प्रत्याशा, साक्षरता और आय में आंशिक सुधार देखने को मिला। साथ ही, डिजिटल तकनीक और वैश्विक ज्ञान प्रवाह ने सामाजिक परिवर्तन और नए विकास क्षेत्रों को जन्म दिया। हालांकि, वैश्वीकरण के लाभ समान रूप से वितरित नहीं हुए; शहरी–ग्रामीण अंतर, क्षेत्रीय विषमताएँ, जनजातीय समाजों का हाशियाकरण, पर्यावरणीय संकट और सामाजिक न्याय व लैंगिक समानता से जुड़ी चुनौतियाँ बनी रहीं। कृषि, लघु उद्योगों और पारंपरिक आजीविकाओं पर दबाव बढ़ा, जिससे असमानताएँ उजागर हुईं। इस प्रकार, भारतीय संदर्भ में वैश्वीकरण मानव विकास के लिए अवसर और चुनौतियाँ दोनों लेकर आया है।

14.6 वैश्वीकरण: चुनौतियाँ एवं अवसर

वैश्वीकरण एक जटिल और बहुआयामी प्रक्रिया है, जिसने समकालीन विश्व को अवसरों और चुनौतियों दोनों की एक विविधता प्रदान की है। जहाँ एक ओर इसने वैश्विक अर्थव्यवस्था, प्रौद्योगिकी और संस्कृति के एकीकरण द्वारा अभूतपूर्व प्रगति के द्वार खोले हैं, वहीं दूसरी ओर इसने गहरी असमानताएँ, असुरक्षाएँ और संकट भी पैदा किए हैं। इसकी चुनौतियों और संभावित समाधानों को निम्नलिखित बिंदुओं में समझा जा सकता है:

1. **आर्थिक असमानता एवं गरीबी में वृद्धि -** वैश्वीकरण का लाभ असमान रूप से वितरित हुआ है। इसने धनी और गरीब देशों के बीच, साथ ही देशों के भीतर धनी और गरीब वर्गों के बीच की खाई और चौड़ी हुई है। वैश्विक पूँजीवाद ने पूँजी के संकेन्द्रण को बढ़ावा दिया है, जबकि अनियमित श्रम बाजारों ने असुरक्षा पैदा की है। WTO में भारत के ऊपर बनने वाला दबाव इसका उदाहरण है की कैसे विकसित देश एवं बहुराष्ट्रीय कंपनियां अपने मुनाफे के लिए वैश्विक दक्षिण के राष्ट्रों पर दबाव बनाते हैं।

   राष्ट्रीय और वैश्विक स्तर पर प्रगतिशील कर प्रणाली लागू कर तथा सार्वभौमिक स्वास्थ्य, शिक्षा और बेरोजगारी भत्ता जैसी सामाजिक सुरक्षा योजनाओं को मजबूत कर ही वैश्विक शक्तियों के कुप्रभाव से बचा जा सकता है। विकासशील देशों के लिए निष्पक्ष व्यापार समझौते होने चाहिए, जो उनके कृषि और उभरते उद्योगों की रक्षा कर सकें।
2. **सांस्कृतिक पहचान का संकट एवं साम्राज्यवाद -** पश्चिमी, विशेष रूप से अमेरिकी, उपभोक्तावादी संस्कृति के वर्चस्व ने स्थानीय भाषाओं, परंपराओं और मूल्यों को हाशिए पर धकेल दिया है। इस 'सांस्कृतिक साम्राज्यवाद' से एकरूपता का खतरा पैदा हो गया है। नयी पीढ़ी समेत सभी वर्गों के समक्ष सोशल मीडिया का न्यायपूर्ण उपयोग एक बहुत बड़ी चुनौती बनकर उभर रहा है। कहा जा रहा है की डेटा ही नया तेल है और कुछ कंपनियां अपने मुनाफे के लिए अल्गोरिथम से सभी की पसंद और विचारों को प्राभावित कर रहे हैं। स्थानीय कला, भाषा और सांस्कृतिक विरासत को बढ़ावा देने वाली राष्ट्रीय नीतियाँ अपनाकर, वैकल्पिक एवं स्थानीय मीडिया प्लेटफॉर्म्स को सशक्त बनाकर जो वैश्विक मुख्यधारा मीडिया के वर्चस्व को संतुलित कर सकें। तथा संकरण' (Hybridization) को स्वीकार करते हुए पारस्परिक सम्मान के आधार पर सांस्कृतिक विनिमय को प्रोत्साहित करना होगा।
3. **राष्ट्र-राज्य की सीमित सत्ता एवं शासन की चुनौती -** बहुराष्ट्रीय निगम, अंतर्राष्ट्रीय वित्तीय संस्थान और गैर-राज्य अभिकर्ताओं का उदय राष्ट्र-राज्य की संप्रभुता और नीति-निर्माण की क्षमता को सीमित कर रहे हैं। समाधान के रूप में संयुक्त राष्ट्र, विश्व स्वास्थ्य संगठन आदि जैसी वैश्विक संस्थाओं को अधिक लोकतांत्रिक और प्रतिनिधित्वपूर्ण बनाना होगा।पूँजी प्रवाह, कराधान और पर्यावरण मानकों के लिए सशक्त वैश्विक नियामक ढाँचे का विकास।
4. **पर्यावरणीय क्षरण एवं जलवायु परिवर्तन -** उत्पादन और उपभोग के वैश्विक मॉडल ने प्राकृतिक संसाधनों के अति-दोहन, प्रदूषण और जलवायु परिवर्तन को तेज किया है, जिसका बोझ विकासशील तथा गरीब देशों को अधिक वहन करना पढ़ रहा है। नवीकरणीय ऊर्जा और टिकाऊ उत्पादन पद्धतियों में शोध

एवं विकास को प्राथमिकता, पेरिस समझौते जैसे करारों पर अमल के लिए सामूहिक प्रतिबद्धता और जवाबदेही तंत्र और मजबूत बनाना होगा। सबसे महत्त्वपूर्ण यह है की पर्यावरणीय क्षति के लिए निगमों और देशों की वित्तीय जिम्मेदारी तय करनी होगी।

5. **श्रमिक अधिकारों का हनन एवं सामाजिक असुरक्षा -** वैश्विक प्रतिस्पर्धा के दबाव में, श्रम कानूनों में ढील दी जाती है, जिससे अस्थायी रोजगार, कम मजदूरी और कार्यस्थल सुरक्षा के निम्न मानक देखे जाते हैं। अंतर्राष्ट्रीय श्रम संगठन (ILO) के मानकों को अपनाने और लागू करने के लिए हर संभव दबाव बनाना होगा। बहुराष्ट्रीय कंपनियों को अपनी पूरी आपूर्ति श्रृंखला में श्रमिक अधिकारों के लिए कानूनी रूप से उत्तरदायी बनाना पड़ेगा। तकनीकी बेरोजगारी और आय अस्थिरता से निपटने के लिए UBI सार्वभौमिक बुनियादी आय जैसे मॉडल पर विचार करना होगा।

इन सभी चुनौतियों के बावजूद वैश्वीकरण ने मानव समाज के लिए अनेक महत्त्वपूर्ण अवसर भी सृजित किए हैं, जिनका प्रभाव आर्थिक, सामाजिक, तकनीकी और सांस्कृतिक सभी क्षेत्रों में स्पष्ट रूप से दिखाई देता है। व्यापार और निवेश के विस्तार के माध्यम से आर्थिक विकास को गति मिली है, जिससे अनेक विकासशील देशों में रोज़गार के अवसर बढ़े हैं और लाखों लोगों को गरीबी से बाहर निकलने का अवसर प्राप्त हुआ है। ज्ञान एवं प्रौद्योगिकी के वैश्विक प्रसार ने चिकित्सा, शिक्षा और कृषि जैसे क्षेत्रों में उन्नत तकनीकों तक व्यापक पहुँच संभव बनाई है, जिससे जीवन-स्तर में सुधार हुआ है। वैश्वीकरण ने जलवायु परिवर्तन, आतंकवाद, महामारी और खाद्य असुरक्षा जैसी साझा वैश्विक चुनौतियों से निपटने के लिए अंतरराष्ट्रीय सहयोग और सामूहिक कार्रवाई की क्षमता को भी सुदृढ़ किया है। इसके साथ ही सांस्कृतिक आदान–प्रदान ने विभिन्न समाजों और संस्कृतियों के बीच संवाद, समझ और सहिष्णुता को बढ़ावा दिया है। सूचना प्रौद्योगिकी और सामाजिक मीडिया के विस्तार ने मानवाधिकार, लैंगिक न्याय और पर्यावरण संरक्षण से जुड़े वैश्विक आंदोलनों को नई ऊर्जा प्रदान की है, जिससे हाशिए पर स्थित समूहों के सशक्तिकरण और वैश्विक नागरिक चेतना के विकास को बल मिला है।

निष्कर्षतः वैश्वीकरण अपरिहार्य है, परंतु इसकी दिशा और परिणाम मानव-निर्मित हैं। एक न्यायसंगत, नियम-आधारित और समावेशी वैश्वीकरण की ओर बढ़ना, जो केवल बाजार की शक्तियों पर नहीं, बल्कि मानव कल्याण, सामाजिक न्याय और पर्यावरणीय स्थिरता के मूल्यों पर केंद्रित हो, ही भविष्य की मुख्य चुनौती एवं अवसर है। इसके लिए राष्ट्रीय स्तर पर दृढ़ नीतियों और वैश्विक स्तर पर प्रभावी सहयोग दोनों की आवश्यकता है।

अभ्यास प्रश्न

1. वैश्वीकरण का मूल उद्देश्य क्या है?

A. राज्य की भूमिका का पूर्ण उन्मूलन
B. वस्तुओं, सेवाओं, पूँजी और ज्ञान का मुक्त प्रवाह
C. केवल सांस्कृतिक एकरूपता स्थापित करना
D. राष्ट्रीय अर्थव्यवस्थाओं को अलग-थलग करना

2. मानव विकास दृष्टिकोण के अनुसार आर्थिक वृद्धि को कैसे देखा जाता है?

A. अंतिम लक्ष्य के रूप में
B. केवल औद्योगिक विस्तार के रूप में
C. मानव कल्याण प्राप्त करने के साधन के रूप में
D. राज्य नियंत्रण के विकल्प के रूप में

3. अमर्त्य सेन का 'क्षमता दृष्टिकोण' किस पर केंद्रित है?

A. केवल आय और उपभोग पर
B. मानव स्वतंत्रताओं और क्षमताओं के विस्तार पर
C. औद्योगिक उत्पादन पर
D. सांस्कृतिक समरूपीकरण पर

4. मानव विकास सूचकांक (HDI) में निम्नलिखित में से कौन-सा आयाम शामिल नहीं है?

A. जीवन प्रत्याशा
B. शिक्षा
C. राजनीतिक स्थिरता
D. प्रति व्यक्ति आय

5. 'डिजिटल विभाजन' से क्या तात्पर्य है?

A. डिजिटल तकनीक का पूर्ण अभाव
B. तकनीक और इंटरनेट तक असमान पहुँच
C. केवल साइबर अपराध
D. डिजिटल मीडिया का विस्तार

6. न्यायसंगत वैश्वीकरण का प्रमुख आधार क्या होना चाहिए?

A. केवल बाजार शक्तियाँ
B. बहुराष्ट्रीय कंपनियों का हित
C. मानव कल्याण, सामाजिक न्याय और पर्यावरणीय स्थिरता
D. न्यूनतम सरकारी हस्तक्षेप

14.7 सारांश

इस इकाई में वैश्वीकरण और मानव विकास के बीच जटिल एवं बहुआयामी संबंधों का विश्लेषण किया गया है। वैश्वीकरण जहाँ मुक्त व्यापार, पूँजी, तकनीक और ज्ञान के वैश्विक प्रवाह को बढ़ावा देता है, वहीं मानव विकास मानव-कल्याण, समानता और क्षमताओं के विस्तार पर केंद्रित है। अध्ययन से स्पष्ट होता है कि वैश्वीकरण ने रोजगार, शिक्षा, स्वास्थ्य, तकनीकी नवाचार और वैश्विक सहयोग के नए अवसर प्रदान किए हैं, किंतु साथ ही आर्थिक असमानता, सांस्कृतिक क्षरण, पर्यावरणीय संकट, श्रमिक असुरक्षा और राष्ट्र-राज्य की संप्रभुता पर प्रश्न भी खड़े किए हैं। मानव विकास सूचकांक (HDI), लैंगिक असमानता सूचकांक (GII), बहुआयामी गरीबी सूचकांक (MPI) जैसे मापक यह दर्शाते हैं कि विकास को केवल आर्थिक वृद्धि से नहीं आँका जा सकता। भारतीय परिप्रेक्ष्य में 1991 के बाद वैश्वीकरण ने आईटी, सेवा क्षेत्र और रेमिटेंस के माध्यम से मानव विकास को गति दी, किंतु क्षेत्रीय, सामाजिक और पर्यावरणीय विषमताएँ बनी रहीं। निष्कर्षतः, मानव-केंद्रित, न्यायपूर्ण और सतत वैश्वीकरण ही विकास का वांछनीय मार्ग है।

14.8 शब्दावली

1. नव-उदारवाद – मुक्त बाजार, निजीकरण और न्यूनतम राज्य की विचारधारा
2. सांस्कृतिक साम्राज्यवाद – प्रभुत्वशाली संस्कृतियों का अन्य समाजों पर प्रभाव
3. ब्रेन ड्रेन – कुशल मानव संसाधन का विकसित देशों की ओर पलायन
4. सतत विकास – वर्तमान आवश्यकताओं की पूर्ति करते हुए भविष्य को सुरक्षित रखना
5. प्रत्यक्ष विदेशी निवेश (FDI) – जब कोई विदेशी कंपनी या व्यक्ति किसी अन्य देश में उत्पादन, सेवा या अवसंरचना में दीर्घकालिक निवेश करता है।

6. उपभोक्तावाद (Consumerism) – ऐसी सामाजिक-आर्थिक प्रवृत्ति जिसमें उपभोग को सुख, पहचान और सफलता का प्रमुख आधार माना जाता है।
7. व्यक्तिवाद (Individualism) – वह विचारधारा जो व्यक्ति की स्वतंत्रता, आत्मनिर्णय और व्यक्तिगत हितों को समाज से ऊपर रखती है।
8. वस्तु-पूजा (Commodity Fetishism) – मार्क्सवादी अवधारणा, जिसके अनुसार वस्तुओं को सामाजिक संबंधों से अलग कर उन्हें स्वयं में मूल्यवान मान लिया जाता है।
9. अर्थ आवर (Earth Hour) – पर्यावरण संरक्षण के प्रति जागरूकता बढ़ाने हेतु वैश्विक अभियान, जिसमें निर्धारित समय के लिए बिजली बंद की जाती है।
10. क्षमता दृष्टिकोण (Capability Approach) – अमर्त्य सेन द्वारा प्रतिपादित दृष्टिकोण, जिसके अनुसार विकास का अर्थ मानव क्षमताओं, विकल्पों और स्वतंत्रताओं का विस्तार है।
11. #मी टू (MeToo) आंदोलन – लैंगिक उत्पीड़न और यौन हिंसा के विरुद्ध वैश्विक सामाजिक आंदोलन, जिसने महिलाओं की आवाज़ को अंतरराष्ट्रीय स्तर पर मजबूती दी।
12. डिजिटल समावेशन (Digital Inclusion) – सभी वर्गों तक इंटरनेट, डिजिटल तकनीक और ऑनलाइन सेवाओं की समान पहुँच सुनिश्चित करने की प्रक्रिया।
13. ग्लोबल नार्थ (Global North) – आर्थिक रूप से विकसित देश, जैसे अमेरिका, यूरोप, जापान आदि, जो वैश्विक संसाधनों पर अधिक नियंत्रण रखते हैं।
14. ग्लोबल साउथ (Global South) – विकासशील और अल्प-विकसित देश, जैसे भारत, अफ्रीकी और लैटिन अमेरिकी राष्ट्र, जो ऐतिहासिक रूप से असमानताओं का शिकार रहे हैं।
15. गिग इकोनॉमी (Gig Economy) – ऐसी अर्थव्यवस्था जिसमें अस्थायी, अनुबंध आधारित और प्लेटफॉर्म-आधारित रोजगार (जैसे Uber, Zomato) प्रमुख होते हैं।
16. रेमिटेंस (Remittances) – प्रवासी श्रमिकों या प्रवासी भारतीयों द्वारा अपने देश भेजी गई धनराशि, जो घरेलू आय और विकास में योगदान देती है।

14.9 अभ्यास प्रश्न के उत्तर

1.B, 2. C, 3. B, 4. C, 5. B, 6. C

14.10 संदर्भ ग्रंथ सूची

1. Held, D. et al. (1999). *Global Transformations*
2. Sen, A. (1999). *Development as Freedom*
3. UNDP. *Human Development Reports*
4. Giddens, A. *The Consequences of Modernity*
5. World Bank & IMF Reports
6. https://helpfulprofessor.com/types-of-globalization/

14.11 निबंधात्मक प्रश्न

1. वैश्वीकरण और मानव विकास के संबंधों का समालोचनात्मक विश्लेषण कीजिए।
2. मानव विकास के प्रमुख सूचकांकों की विवेचना कीजिए।
3. भारतीय परिप्रेक्ष्य में वैश्वीकरण: अवसर एवं चुनौतियाँ।
4. वैश्वीकरण की आलोचनाएँ और वैकल्पिक दृष्टिकोण स्पष्ट कीजिए।
5. सतत विकास लक्ष्यों (SDGs) और वैश्वीकरण के अंतर्संबंध पर चर्चा कीजिए।

14.12 सहायक पाठ्य सामग्री

1. UNDP Human Development Report (नवीनतम संस्करण)
2. WHO, UNICEF एवं ILO की आधिकारिक वेबसाइटें
3. शैक्षणिक जर्नल: *World Development*, *Third World Quarterly*